पूज्य डॉ० अवस्थी को
विमोचन अवसर पर
शिष्य की भेंट
[illegible]
१४-२-९६

डॉ० मोहन अवस्थी डी०लिट्०
पूर्व प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
८/४ बैंक रोड, इलाहाबाद-२११००२

पूज्यवर डॉ० अवस्थी को
विमोचन अवसर पर
शिष्य की भेंट
[illegible]
१४-२-९५

डॉ० मोहन अवस्थी डी०लिट्०

पूर्व प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

८/४ बैंक रोड, इलाहाबाद-२११००२

पूज्यवर डॉ० अवस्थी को

विमोचन अवसर पर

शिष्य की भेंट

[illegible]

१४.२.९५

डॉ० मोहन अवस्थी डी०लिट्०

पूर्व प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

५/४ बैंक रोड, इलाहाबाद–२११००२

आत्मसंघर्ष

की

कविता

और

मुक्तिबोध

आत्मसंघर्ष की कविता
और
मुक्तिबोध

डॉ० हंसराज त्रिपाठी
एम० ए० (हिन्दी) पी-एच० डी०
प्रवक्ता हिन्दी विभाग
मुनीश्वरदत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रतापगढ़
(अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद)

मानस प्रकाशन
विवेकनगर प्रतापगढ़
२३०००१

Aatmasangharsa Ki Kavita
Aur
Muktibodh
(A Criticism of the poetry of Muktibodh)

संस्करण	प्रथम १९८५ (इन्दिरा गांधी बलिदान वर्ष)
प्रकाशक	मानस प्रकाशन विवेक नगर प्रतापगढ़ (अवध)
मुद्रक	माधो प्रिंटिंग वर्क्स, २४२, पुराना बेरहना, इलाहाबाद
आवरण	(डिजाइन) इम्पैक्ट इलाहाबाद (मुद्रक) इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स, इलाहाबाद
मूल्य	पचास रुपये मात्र 50/-

परम अभिव्यक्ति अनिवार

आत्मसम्भवा

के अन्वेषी

को

सादर !

धरित्री व नक्षत्र
तारागण
रखते हैं निज-निज व्यक्तित्व
रखते हैं चुम्बकीय शक्ति, पर
स्वयं के अनुसार
गुरुत्व-आकर्षण-शक्ति का उपयोग
करने में असमर्थ।

रचने वाली बुद्धि और सोचने वाली मनीषा
की मूर्त प्रतिमा
लेखन की प्रेरणा को !

प्रथम प्रति आस्था पूर्वक

अभिव्यक्ति के खतरे—भूमिका के स्थान पर

हृदय में वह किसी के सुलगती रहती
उलझ कर, मुक्तिकामी श्याम गहरी भीड़ में चलती
उतर कर, आत्मा के स्याह घेरे में
अचानक इस हस्तक्षेप करती है
सिखाती सीखती रहती,
परखती, बहस करती और ढोती बोझ
मेहनत से, / जमीनें साफ करती है !!

'आत्मसंघर्ष की कविता और मुक्तिबोध' लिखते समय लेखक के समक्ष गजानन माधव मुक्तिबोध के काव्य का सुनसान बियाबान में व्याप्त सन्नाटा, घुप्प अँधेरा, आसमानी स्लेट पट्टी पर चिन्ता के गणित अंक, हॉरर और संत्रास, इतिहास की तरह आया है। उग्रवादी आतंक, स्वर्ण मन्दिर में सेना का प्रवेश, विदेशी आयुधों का एकत्रीकरण, स्वर्गीया प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी की हत्या, पूरे देश में कर्फ्यू की भयानक वारदात, विमान दुर्घटना में आतंकवादियों की साजिश, पत्रकारों एवं नेताओं की हत्या का सिलसिला तथा हरचन्द सिंह लोंगोवाल की हत्या ने मुक्तिबोध की कविता की पृष्ठभूमि को समझने में इतिहास दृष्टि एवं भौगोलिक वातावरण का कार्य किया है। भारतीय प्रजातंत्र के समक्ष उत्पन्न गम्भीर संकट तथा मँहगाई, बेरोजगारी एवं अराजकता की वृद्धि के साथ ही जार्ज आरवेल के उपन्यास का १९८४, भारतीय इतिहास का विगत वर्ष बन गया है। जब से इस कृति के लिखने की धारणा बनी तब से बार-बार कितने अँधेरे और उजाले के भयानक द्वन्द्व-समाज और देश की घटनाओं ने मुक्तिबोध के काव्य सन्दर्भ से जुड़कर लेखक के मन में भव्य भावोद्दण्ड गति की झंझावाती परिस्थितियों का रूप धारण कर जिन्दगी को 'हाहा-हूती' कर दिया है। टूट-टूटकर जुड़ते हुए, जीवन संघर्ष की मानसिक हार और जीत के क्रम में विद्वान आचार्यों एवं कृतिकार समीक्षकों की रचनाओं से प्रकाश रश्मियाँ पाकर लेखन की प्रक्रिया आसान होने पर जो बन सका है वह यह कृति है तथा जो नहीं लिखा जा सका है उसे 'अनुभूति की धरोहर मानकर' छायावादोत्तर हिन्दी कविता की सहयात्रा का पाथेय बनाना चाहता हूँ।

आत्मसंघर्ष की कविता के उलझे प्रतीक, बिखरे बिम्ब, टूटे जीवन सन्दर्भ एवं निविड़ तम-श्याम वातावरण में दुर्गम पठार, 'पहाड़' और 'समुन्दर' की यात्रा और भी कठिनतर होती गई है जब 'उसे पढ़ते-पढ़ते अँतड़ियों में बल पड़ जाने' का खतरा सुनाई पड़ा है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी सदृश गम्भीर चिन्तक जब मुक्तिबोध

की कविता के यथार्थ बोध एवं 'जीवन की गति-जीवन के स्वर' में चीख-चिल्लाहट सुनकर 'हट-जा'—'भाग-जा' की शिक्षा देता हो तथा मुक्तिबोध का 'काव्य-व्यक्तित्व' अपने को 'हम हैं गुजर गये जमाने के चेहरे' के सम्मुख लहू-लुहान पंख नोचे पटके पक्षी की तरह फड़-फड़ाकर मौत की घड़ियों का इन्तजार करे तो ऐसी कविता के सम्बन्ध में सामान्य लेखक एवं प्राध्यापकीय दृष्टि के अध्येता का कुछ लिखना 'अभि-व्यक्ति का खतरा' मोल लेना है। वर्षों से नयी कविता और मुक्तिबोध, अज्ञेय, भारती, रघुवीर सहाय आदि की कृतियों को पढ़ते पढ़ाते सोचते सोचवाते समय जो पदचिह्न दिखाई पड़े हैं उन्हीं को अपने अध्ययन का आरम्भिक चरण मानकर जो कुछ लिखा जा सका है वह वर्तमान कृति के रूप में हिन्दी के सुविज्ञ पाठकों, अध्यापकों और विद्यार्थियों के सम्मुख श्रद्धा एवं स्नेहपूर्वक प्रस्तुत है।

'कविता के नये प्रतिमान' के केन्द्र में स्थित मुक्तिबोध तथा विद्वान कृतिकार के मूल्यबोध के 'आत्मसंघर्ष' को उधार की तरह लेकर लेखक ने मुक्तिबोध की कविता का अध्ययन आरम्भ किया है। 'नये मूल्यों की खोज और प्रतिष्ठा' का डॉ० नामवर सिंह का समीक्षा-संघर्ष इस समीक्षा-कृति की प्रथम प्रेरणा है जिसे डॉ० राम विलास शर्मा की कृति 'नयी कविता और अस्तित्ववाद' से जोड़कर लेखक ने अपने अधीत विषय तथा निर्णय को और भी साफ करने का प्रयास किया है। इसी क्रम में डॉ० इन्द्रनाथ मदान, डॉ० रमेश कुन्तल मेघ डॉ० रघुवंश, डॉ० जगदीश गुप्त, डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० शिवकुमार मिश्र, डॉ० रमाशंकर तिवारी, डॉ० सम्भुनाथ सिंहआदि समीक्षकों की कृतियों एवं लेखों से यथास्थान सहायता ली गई है। इनके अतिरिक्त तारसप्तक के कवियों, अध्येताओं तथा प्रयोगवाद और नयी कविता के सुविज्ञ आचार्यों की 'मनीषा' और 'प्रज्ञा' के प्रति लेखक श्रद्धावनत एवं कृतज्ञ है।

मुक्तिबोध की कविता पर जितनी बार दृष्टि गई है उतने नवीन आवर्त एवं रूपबोध के नये आयाम दिखाई पड़े हैं जिन्हें किसी आग्रह अथवा 'वाद' से मुक्त रख-कर प्रस्तुत कृति में स्थान दिया गया है। सैद्धान्तिक प्रतिपत्ति अथवा 'बेहतर चाहिये' की जिज्ञासा ने मन को आगे चलने की प्रेरणा दी है किन्तु अपनी उपलब्धि के सम्बन्ध में 'कुछ पा सकने' अथवा 'देने की क्षमता' के सम्बन्ध में स्वयं लेखक का कुछ कहना बेमानी है। प्रयोगवाद और नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में मुक्तिबोध की रचनाओं के समझने में यदि यह कार्य सहायक बन सका तो लेखक अपने उद्देश्य में सफल होगा। विद्यार्थियों और मुक्तिबोध के पाठकों को कुछ दे सकना लेखक के लिये 'पा सकना' है।

काव्य-शिल्प, बिम्ब-विधान, काव्य-भाषा, जीवन-दर्शन तथा मूल्यबोध के

सन्दर्भ में समीक्ष्य काव्य की कुछ पंक्तियाँ बार-बार दुहराई गई हैं तथा समीक्षकों के उद्धरण भी स्थल-स्थल पर प्रयुक्त हुए हैं, जिनसे लेखक की असमर्थता और सम्पूर्ण को ग्रहण न कर सकने की विवशता को नतसिर स्वीकार कर 'यह' हिन्दी अध्येता आगे चलता है। खोज-ग्रहण--ग्रहण-खोज की हिन्दी विद्यार्थी से अध्यापक बनने तक की प्रक्रिया ने यदि कहीं अतिरिक्त आत्मविश्वास एवं तर्क का रूप लिया है तो इसके लिये भी लेखक के 'आत्म-व्यक्तित्त्व' का दूसरा रूप ही दोषी है जो सम्पूर्ण कृति में अवसर अनवसर प्रकट हुआ है। आरम्भ से अन्त तक तथा 'अँधेरे में' से सम्बन्धित परिशिष्ट में भी लेखक का यह दावा नहीं है कि उसने मुक्तिबोध की सम्पूर्ण 'अर्थवत्ता' प्राप्त की है किन्तु जितना वह पा सका है उसे ही वह 'विनत-प्रणत-आत्मस्थ' सर्जक का मूल्यवान प्रसाद मानकर 'इन्हें-देने उन्हें-देने' का नाटक करके आत्म-सन्तोष का अनुभव करता है। 'संस्कारमयी गहरी विवेक चेतना' के अभाव तथा 'अर्थ-खोजी उद्दाम मन' की चंचलता से लेखक को संघर्ष करना पड़ा है जिसमें 'पराजय' और 'जय' को एक दूसरे का पूरक मानकर, लेखक-मन की 'अभावात्मक' स्थिति को छिपाना बेमानी है तथा प्रकट न होने देना युग-बोध।

आज की इस भीषण मँहगाई तथा अभावात्मक एवं मूल्यहीन लेखन के युग में 'लिखे' को 'प्रकाशित' देखने में किसे प्रसन्नता का अनुभव नहीं होगा और फिर 'लेखक' के स्थान पर अपने महत्त्वहीन 'नाम' को दूसरी बार छपे रूप में देखकर यदि कहीं 'छद्म-अहं' भी मन को आक्रान्त करने लगे तो उसकी रक्षा सुधी पाठक, विद्वान समीक्षक एवं सजग अध्येता कर सकेंगे ऐसा मेरा विश्वास है भले ही वह बाद में टूट जाय। लेखन, प्रकाशन, प्रेस की प्रति तैयार करने से लेकर प्रूफ संशोधन एवं 'वस्तु' को पुस्तक के आकार तक लाने में जिस 'अव्यक्त' की प्रेरणा साथ है उसके उपादानों के प्रति आभार प्रदर्शन के बिना पूर्व-अभिव्यक्ति का यह कार्य अपूर्ण होगा अतः उस लेखनप्रेरणा को प्रथम प्रति ही भेंट कर दी गई है। श्री त्रिलोचन शास्त्री, डॉ० एन० के० देवराज, गुरुवर डॉ० मोहन अवस्थी तथा डॉ० निर्मला जैन का लेखक आभारी है जिनसे उसे सदा प्रोत्साहन मिला है। अपने प्राचार्य डॉ० आशुतोष, गुरु डॉ० मत्स्येन्द्र शुक्ल तथा बन्धु गण डॉ० लक्ष्मी प्रपन्न शर्मा, प्रो० ए० पी० मिश्र, डॉ० राम चरित्र सिंह, श्री ओम प्रकाश खण्डेलवाल (प्रतापगढ़), डॉ० जनार्दन उपाध्याय (फैजाबाद), डॉ० सभापति मिश्र (इण्डिया-इलाहाबाद) के प्रति भी लेखक आदर, स्नेह एवं आस्था सहित कृतज्ञता प्रेषित करता है। अंत में गुरुजन के प्रति लेखक श्रद्धावनत है जिनके आशीर्वाद का यह फल है।

विवेक नगर—प्रतापगढ़   हंसराज त्रिपाठी
जन्माष्टमी—७-९-८५ ई०

अनुक्रम

संक्षिप्त जीवन-रेखा : विराट् शून्य

गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म महाराष्ट्रीय कुलकर्णी ब्राह्मण परिवार में १३ नवम्बर १९१७ ई० को श्योपुर जिला ग्वालियर में हुआ था। यहाँ इनके पिता श्री माधव मुक्तिबोध पुलिस इंसपेक्टर पद पर नियुक्त थे। 'मुक्तिबोध' इनकी वंश-परम्परा में चला आता उपनाम है जो किसी पूर्वज द्वारा लिखे गये इसी नाम के ग्रंथ के कारण जुड़ा है। बालक गजानन का आरम्भिक जीवन बड़े सुख विलासिता और लाड़-प्यार में बीता था। पिता [श्री माधव मुक्तिबोध] तथा माता श्रीमती पार्वती बाई की पहले की दो सन्तानों के जीवित न रह पाने के उपरान्त तीसरी सन्तान रूप में पुत्र का जन्म विशेष प्रसन्नता का सूचक था और इस सन्तान के प्रति अतिरिक्त वात्सल्य भी स्वाभाविक ही था।[1] उन दिनों मध्य प्रदेश में ग्रामीण क्षेत्र में नियुक्त इंसपेक्टर अपने क्षेत्र के राजा की तरह दबदबे वाला सम्मानित व्यक्ति होता था। पुलिस अधिकारी के रूप में रोबीले, दबंग, सिद्धान्त-प्रिय एवं धर्म भीरु पिता तथा ईसागढ़ बुन्देल खण्ड के उच्चवर्गीय ब्राह्मण कृषक परिवार में जन्मी माता के पूजा-पाठ, शिक्षा दीक्षा एवं आराधना का प्रभाव कुलीन संस्कार रूप में बालक मुक्तिबोध पर पड़ा।

इनके पितामह श्री गोपाल राव भी पुलिस विभाग में दफादार थे जिन्होंने अपने पुत्र को भी उसी विभाग में सेवा-कार्य के लिए प्रेरित किया होगा। कड़ियल स्वभाव, सिद्धान्तप्रियता तथा गम्भीरता इन्हें पिता एवं पितामह से मिली थी जो इन्हें विशेष स्नेह देते थे। आस्था, धैर्य, विश्वास माता के संस्कार से एवं बुआ अत्ताबाई के अनुशासन एवं बन्धन की प्रतिक्रिया रूप में गोपनीयता एकाकीपन और अपराध-बोध जैसी भावना सतत् संघर्षशील जुझारू एवं जिद्दी व्यक्तित्व निर्मित करने वाली परिस्थितियों में प्रमुख हैं। शैशवावस्था की सुविधायें तथा उनके विपरीत पिता के अवकाश ग्रहण करते ही आर्थिक विपन्नता का सतत् दबाव एवं अभावग्रस्तता ने मुक्तिबोध के किशोर मन में आत्मसंघर्ष का रूप लिया। इनकी माता पार्वती बाई उस समय की कक्षा ६ उत्तीर्ण थीं जो मुन्शी प्रेमचन्द की कहानियाँ, उपन्यास तथा हरिनारायण आप्टे की कृतियों का अध्ययन विशेष रूप से करती थीं। उच्चवर्गीय ब्राह्मण परिवार के नगरीय जीवन से जुड़कर अपने पिता के घर के ग्रामीण संस्कार को पार्वती बाई ने पूर्णतः भुला दिया था।

---

१. मुक्तिबोध (सं० लक्ष्मणदत्त गौतम) शरद माधव मुक्तिबोध का निबन्ध—

अनुक्रम

संक्षिप्त जीवन-रेखा : विराट् शून्य

गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म महाराष्ट्रीय कुलकर्णी ब्राह्मण परिवार में १३ नवम्बर १९१७ ई० को श्योपुर जिला ग्वालियर में हुआ था। यहाँ इनके पिता श्री माधव मुक्तिबोध पुलिस इंसपेक्टर पद पर नियुक्त थे। 'मुक्तिबोध' इनकी वंश-परम्परा में चला आता उपनाम है जो किसी पूर्वज द्वारा लिखे गये इसी नाम के ग्रंथ के कारण जुड़ा है। बालक गजानन का आरम्भिक जीवन बड़े सुख विलासिता और लाड-प्यार में बीता था। पिता [श्री माधव मुक्तिबोध] तथा माता श्रीमती पार्वती बाई की पहले की दो सन्तानों के जीवित न रह पाने के उपरान्त तीसरी सन्तान रूप में पुत्र का जन्म विशेष प्रसन्नता का सूचक था और इस सन्तान के प्रति अतिरिक्त वात्सल्य भी स्वाभाविक ही था।[1] उन दिनों मध्य प्रदेश में ग्रामीण क्षेत्र में नियुक्त इंसपेक्टर अपने क्षेत्र के राजा की तरह दबदबे वाला सम्मानित व्यक्ति होता था। पुलिस अधिकारी के रूप में रोबीले, दबंग, सिद्धान्त-प्रिय एवं धर्म भीरु पिता तथा ईसागढ़ बुन्देल खण्ड के उच्चवर्गीय ब्राह्मण कृषक परिवार में जन्मी माता के पूजा-पाठ, शिक्षा दीक्षा एवं आराधना का प्रभाव कुलीन संस्कार रूप में बालक मुक्तिबोध पर पड़ा।

इनके पितामह श्री गोपाल राव भी पुलिस विभाग में दफादार थे जिन्होंने अपने पुत्र को भी उसी विभाग में सेवा-कार्य के लिए प्रेरित किया होगा। कड़ियल स्वभाव, सिद्धान्तप्रियता तथा गम्भीरता इन्हें पिता एवं पितामह से मिली थी जो इन्हें विशेष स्नेह देते थे। आस्था, धैर्य, विश्वास माता के संस्कार से एवं बुआ अत्ताबाई के अनुशासन एवं बन्धन की प्रतिक्रिया रूप में गोपनीयता एकाकीपन और अपराध-बोध जैसी भावना सतत् संघर्षशील जुझारू एवं जिद्दी व्यक्तित्व निर्मित करने वाली परिस्थितियों में प्रमुख हैं। शैशवावस्था की सुविधायें तथा उनके विपरीत पिता के अवकाश ग्रहण करते ही आर्थिक विपन्नता का सतत् दबाव एवं अभावग्रस्तता ने मुक्तिबोध के किशोर मन में आत्मसंघर्ष का रूप लिया। इनकी माता पार्वती बाई उस समय की कक्षा ६ उत्तीर्ण थीं जो मुन्शी प्रेमचन्द की कहानियाँ, उपन्यास तथा हरिनारायण आप्टे की कृतियों का अध्ययन विशेष रूप से करती थीं। उच्चवर्गीय ब्राह्मण परिवार के नगरीय जीवन से जुड़कर अपने पिता के घर के ग्रामीण संस्कार को पार्वती बाई ने पूर्णतः भुला दिया था।

---

१ मुक्तिबोध (स०   गौतम शरद माधव मुक्तिबोध का निबन्ध

बालक मुक्तिबोध की आरम्भिक शिक्षा उज्जैन के अपर प्राइमरी स्कूल में आरम्भ हुई किन्तु पिता के स्थानान्तरण के साथ ही मिडिल स्तर तक की शिक्षा कई विद्यालयों एवं स्थानों में रहकर उन्होंने प्राप्त की। पिता के सेवा-कार्य से मुक्त होने के बाद ये अपनी निःसन्तान बुआ अत्ताबाई के पास रह रहे थे जो एम० टी० हास्पिटल उज्जैन में रॉयल नर्स के रूप में नियुक्त थीं। यहीं उनकी माध्यमिक शिक्षा हुई। अपनी बुआ के पास रहते हुए मुक्तिबोध ने किशोरावस्था के प्रथम प्रेम का भी अनुभव किया था जो उनके गीतों की रोमानी संवेदना के रूप में प्रकट हुआ है। शांताबाई से उनका आरम्भिक परिचय और प्रेम यहीं हुआ था जिसे परिवार की कुलीनता आदि रूढ़ियों को चुनौती देकर मुक्तिबोध ने अन्तर्जातीय विवाह के रूप में स्वीकार किया। कवि के परवर्ती जीवन पर इस घटना का बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा और वह अपने परिवार से प्रायः असंपृक्त रहने लगा। इसी असंपृक्तता की व्यापक परिणति उनके विद्रोही जीवन में एकान्तप्रियता के रूप में देखी जाती है।

मुक्तिबोध ने इन्ट्रेन्स की परीक्षा १९३० में उत्तीर्ण की और कुछ वर्षों के अन्तराल के बाद होल्कर कालेज इन्दौर से बी० ए० की परीक्षा १९३८ ई० में उत्तीर्ण की।

मुक्तिबोध की कविता-यात्रा का आरम्भ उज्जैन के विद्यार्थी जीवन से हुआ जहाँ माखन लाल चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन के रोमानी गीतों का विशेष प्रभाव था। यह समय प्रगतिवादी चेतना के उद्भव के पूर्व का समय है जबकि छायावाद की रोमानियत भी धीरे-धीरे छूटने लगी थी। किशोर कवि मुक्तिबोध ने अपने सहपाठी वीरेन्द्र कुमार जैन एवं प्रभाग चन्द्र शर्मा के साथ विरह और करुणा के गीत लिखना आरम्भ किया किन्तु मार्क्सवादी चेतना तथा टॉल्सटॉय, गोर्की आदि कृतिकारों की मानवतावादी जीवन-दृष्टि से प्रभावित होकर जीवन की गति, जीवन के स्वर से युक्त 'आत्मसंघर्ष की कविता' बन गयी। रात में देर तक घूमना, बीड़ी सिगरेट पीना, अधिक चाय पीना आदि ऐसी आदतें हैं जो उज्जैन में ही पड़ीं। बाल्यावस्था का मित्र शान्ताराम उज्जैन में चौकीदारी करता था जिसके साथ जाकर बस्ती से बाहर एकान्त में अँधेरे में बैठना किशोर गजानन की आदत बन गई।

होल्कर कालेज इन्दौर से बी० ए० की परीक्षा १९३८ ई० में उत्तीर्ण करने के बाद मुक्तिबोध वहाँ के माडर्न स्कूल में अध्यापक बन गये। इब्सन, बर्नार्ड शॉ, रस्किन, मार्क्स, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि साहित्यकारों की कृतियों का व्यापक अध्ययन मुक्तिबोध ने इन्हीं दिनों किया जो आगे चलकर कामायनी के अध्ययन की प्रेरणा बनी। धीरे-धीरे अध्ययन मनन और चिन्तन से मुक्तिबोध का लेखक परिपक्व होने

सगा जो उनकी समीक्षाकृति में पूर्ण होकर प्रकट हुआ। वर्गसाँ के अध्येता डॉ० नारायण विष्णु जोशी महात्मा गांधी से प्रभावित होकर १९४० ई० में समाज सेवा की भावना से मण्डी शुजालपुर आये। यहाँ श्री 'शारदा शिक्षा सदन' की स्थापना करके डॉ० जोशी ने इस पिछड़े समाज में नव-चेतना का दीप जलाया। आगरा में समृद्ध जीवन व्यतीत करने वाले युवक श्री नेमिचन्द्र जैन जोशी के इस कार्य में सहयोगी बने। प्रभाकर माचवे भी इस समय यहीं आ गये थे। श्री जैन आगरे में मार्क्सवाद के अध्येता तथा अंग्रेजी साहित्य के विद्वान श्री प्रकाश चन्द्र गुप्त के निकट सम्पर्क में रह चुके थे। जैन, माचवे एवं मुक्तिबोध का यह त्रिगुट शुजालपुर की गम्भीर चिन्तन रेखा से बढ़कर मालवा एवं बरार तक छा गया और 'तारसप्तक' की वैचारिक पृष्ठभूमि इन्हीं युवकों की मानसिक उपज बनी। श्री जोशी से वर्ग साँ गांधी मार्क्स एवं रसेल पर मुक्तिबोध की घण्टों बहसें होती थीं। इसी प्रकार जब नेमिचन्द्र जैन एवं प्रभाकर माचवे से इनका वैचारिक आदान-प्रदान होता था तो वाद-विवाद कई घण्टे चलता था। इन दिनों का उल्लेख करते हुए श्री शमशेर बहादुर सिंह लिखते हैं कि—"धीरे-धीरे शुजालपुर के बौद्धिक वातावरण पर मार्क्सवाद छा गया। शाम को विद्वतापूर्ण भाषण होते। स्त्रियों की भी क्लासें लगतीं। डॉ० जोशी ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की सभी स्थापनायें स्वीकार कर लीं। मुक्तिबोध के उत्साह का पूछना क्या! वह तो जिस स्थिति को अपनाते थे पूरे प्राण पण से। X X X प्रयोग-वादियों में इसको लाने का सबसे अधिक उद्योग मुक्तिबोध ने ही किया।"[1]

मंडी शुजालपुर के बौद्धिक वातावरण में रोमानी संवेदना के भावुक कवि ने प्रयोगवाद और नयी कविता के पुरोधा का रूप लिया। बाल्जाक, फ्लावेयर, दास्तो-वास्की के साथ ही मुक्तिबोध ने एडलर, युङ्ग, फ्रायड, रसेल को भी खूब पढ़ा था। तारसप्तक की कविताओं की मूल प्रेरणा का स्थान शुजालपुर है जहाँ माचवे और नेमिचन्द्र जैन ने तारसप्तक की प्रकाशन योजना तैयार की थी। नेमिचन्द्र जैन लिखते हैं कि उनकी बहस भाषा, लय, शिल्पविधि आदि पर विस्तार में मुक्तिबोध से होती थी। उस समय की मुक्तिबोध की कुछ कविताएँ श्री जैन की समझ में भी नहीं आती थी किन्तु आगे चलकर ये मुक्तिबोध की काव्य-प्रवृत्ति से परिचित हो गये।

सन् १९४२ ई० मुक्तिबोध के जीवन का महत्वपूर्ण वर्ष है किन्तु दो विपरीत घटनायें इसी समय घटीं। 'तारसप्तक' की प्रकाशन योजना का साकार रूप इसी समय सामने आया तो इसके विपरीत मण्डी शुजालपुर के शिक्षा सदन के बन्द होते ही जीविका की गम्भीर समस्या ने मुक्तिबोध को वास्तविकता की सही सतही जमीन पर

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० सं० १५

झकेल दिया जहाँ टूटने पर भी असीम धैर्य एवं सहने की क्षमता उनमें आई। शुजालपुर के विद्यालय के बन्द होने पर मुक्तिबोध उज्जैन आकर रहने लगे जहाँ उन्होंने प्रगतिशील लेखकों के फासिज्म विरोधी अधिवेशन का संयोजन १९४४ ई० में किया जिसकी अध्यक्षता श्री राहुल सांकृत्यायन ने की। उज्जैन एवं मण्डी शुजालपुर में रहकर कविता और साहित्य-साधना के माध्यम से मुक्तिबोध अत्यन्त लोकप्रिय हो गये और इनकी घनिष्टता हरिनारायण व्यास, श्याम परमार आदि नवयुवक कवियों से हुई। नये रचनाकारों की घनिष्टता मुक्तिबोध से शीघ्र हो जाती थी।

१९४३-४४ ई० से मुक्तिबोध के जीवन में स्थान-परिवर्तन का क्रम आरम्भ हुआ और जीवन के अन्तिम दिनों तक चलता रहा। जीविका की तलाश में ही मुक्तिबोध १९४५ में वाराणसी गये जहाँ पार्सल बनाने से लेकर 'हंस' के सम्पादकीय लिखने तक के कार्य श्री त्रिलोचन शास्त्री के साथ करते रहे। मात्र एक वर्ष कार्य करने के बाद किसी आपसी मतभेद के कारण १९४६ ई० में वे 'हंस' के सम्पादकीय विभाग से त्याग-पत्र देकर जबलपुर लौट आये। यहाँ जैन हाई स्कूल तथा हितकारिणी सभा द्वारा संचालित विद्यालय में अध्यापन करते हुए भी वे स्थायी रूप से वे जम नहीं सके। उनका विद्रोही स्वभाव तथा न झुकने वाला कड़ियल व्यक्तित्व परिस्थितियों की चोट सहते सहते इतना प्रखर हो गया था कि वे किसी भी सेवा-कार्य में सहनशील बनकर नहीं रह सके।

विभिन्न माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापन करने के साथ-साथ स्वतन्त्रता पूर्व के इन वर्षों में मुक्तिबोध ने जबलपुर से निकलने वाले समाचार-पत्र 'जय हिन्द' में कार्य करना आरम्भ किया। श्री बसंत पुरोहित के सम्पादन में निकलने वाले साम्यवादी पत्र 'समता' के प्रकाशन में भी मुक्तिबोध का सक्रिय सहयोग रहा करता था। जबलपुर में इन दिनों 'हिन्दू-मुस्लिम' दंगे का बड़ा जोर था और कर्फ्यू के समय आधीरात अकेले में मुक्तिबोध अपने निवास स्थान पर आते थे। 'अँधेरे में' की भयंकर वारदातें, संत्रास, दहशत एवं हॉरर के दृश्य इन्हीं दिनों जीवनानुभव के रूप में उनके मानस में आये थे जो आगे चलकर 'चम्बलघाटी', 'स्वप्नकथा' आदि रचनाओं में प्रकट हुए। कई नौकरियों से जुड़ने और टूटने का 'सिल-सिला' इनकी कविताओं की 'अपूर्व जीवनानुभूति', 'प्राणभुति की समस्त मग्नता' रूप में आया है।

१९४७ ई० में देश की स्वतन्त्रता के साथ नये युग का अभ्युदय हुआ किन्तु कवि मुक्तिबोध के जीवन की विषम परिस्थितियाँ तथा चरम संघर्ष के दिन भी यही थे 'जब घनी काली पट्टी' तथा गम्भीर वारदातें कविता की प्रेरणा बनीं। १९४७ ई० में मुक्तिबोध जबलपुर से नागपुर आकर आकाशवाणी के समाचार विभाग में संवाद-

दाता के रूप मे कार्य करने लगे। नागपुर की नौकरी के समय मे ही ये तिलक की प्रतिमा' के सामने वाली शुक्रवारी की गली मे रहकर विभिन्न कविताओ मे लोकमान्य तिलक का चित्र खींचते रहे। नागपुर में जब इम्प्रेस मिल के मजदूरों पर गोली चली थी तो मुक्तिबोध एक संवाद-दाता रूप में वहाँ उपस्थित थे। विभिन्न कविताओं में में चौराहा, घण्टा घर, कत्थई बुजुर्ग गुम्बद, सैनिकों का रूट मार्च, द्वितीय विश्वयुद्ध तथा स्वतन्त्रता के पूर्व की विभिन्न घटनाओं का प्रभाव है जो पत्रकार रूप में उन्होंने जबलपुर, नागपुर, भोपाल आदि स्थानों में रहकर प्राप्त किया था। श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र ने इन्हें आकाशवाणी भोपाल बुलाकर इनका स्थानान्तरण सूचना विभाग के सहायक के स्थान पर करवाया और दो पत्रिकाओं की प्रकाशन योजना इसी समय बनी किन्तु इतने स्वच्छन्द एवं मार्क्सवादी कवि का पत्रकार रूप में शासन से जुड़ना असम्भव था। श्री कृष्णानन्द सोख्ता के तिलिस्मी और सनसनी खेज पत्र नया खून में इन दिनों मुक्तिबोध का विशेष सहयोग रहा करता था। इनके सुरुचिपूर्ण लेखो को देखकर ही पाठकों में 'नया खून' के प्रति विशेष रुचि बढ़ी और इस सनसनी खेज पत्र ने आगे चलकर निर्धनों के पक्षधर पत्र के रूप में लोकप्रियता प्राप्त की।

पत्रकारिता, अध्यापन, सम्पादन तथा आकाशवाणी में रहकर कार्य करते छोड़ते त्याग-पत्र देते हुए इन्होंने जीवन की गम्भीर परिस्थितियों से संघर्ष करना सीखा जो आगे चलकर 'आत्मसंघर्ष की कविता' को समझने में सहायक बना। इस निबन्ध संग्रह में मुक्तिबोध ने मध्यमवर्गीय युवक एवं कवि की भूमिका में कार्य करने वाले व्यक्तित्व की जो छायायें हैं ये सब इनकी अपनी हैं, अपने जीवन से ही ग्रहण की गयी हैं। अभावग्रस्तता एवं निर्धनता के साथ-साथ स्वतन्त्रता के बाद भी 'संदेहास्पद समझा गया' रचनाकार मौत की सजा का शिकार होता है और लम्बी बीमारी तथा भयंकर 'मेनेन्जाइटिस' का शिकार होना भविष्य की सूचना है। 'एक साहित्यिक की डायरी' के निबन्ध तथा चाँद का मुँह टेढ़ा है की अधिकांश कवितायें नागपुर एवं जबलपुर में ही लिखी गई जो उन्हें कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा का धनी रचनाकार सिद्ध करती हैं। १९५३ ई० में जब नरेश मेहता आकाशवाणी नागपुर में सेवा करने आये तो यहाँ इनका परिचय गजानन माधव मुक्तिबोध से हुआ और यह गहरी मित्रता में परिवर्तित हुआ। अपने मित्रों की प्रेरणा से मुक्तिबोध ने १९५४ ई० में नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० किया जिससे कहीं प्राध्यापक बन सकें। एम० ए० करते ही उन्हें दिग्विजय कालेज राजनाद गाँव में हिन्दी प्राध्यापक पद पर नियुक्ति मिली जो उनके जीवन के अन्त तक चलती रही।

१९५६ से ६१ ई० तक का समय मुक्तिबोध की साहित्यिक साधना का

उत्कृष्टतम वर्ष है। 'अँधेरे में' एक स्वप्न कथा, चम्बलघाटी आदि बड़ी कविताओं के अतिरिक्त 'आत्मसंघर्ष की कविता तथा अन्य निबन्ध', 'नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' में संकलित विद्वतापूर्ण निबन्ध इन्हीं दिनों लिखे गये। राजनाद गाँव की नौकरी से सन्तुष्ट रहने के कारण इनकी सर्जना एवं चिन्तन ने गम्भीर रूप लिया। जीवन भर अभावों से संघर्ष करने वाले रचनाकार ने जब किंचित् मुक्ति पाई तो एक ऐसा तूफान आया कि उनकी जिन्दगी को ही ले गया। गुमनाम पत्रकारिता, प्रगतिशील आन्दोलन आदि के साथ स्वतन्त्रता से पूर्व विदेशियों का विरोध तथा स्वतन्त्रता के बाद भी अन्याय, दमन तथा अत्याचार का विरोध करते-करते उनका पार्थिव शरीर ऐसा टूटा कि उन्हें मेनिंजाइटिस तथा ब्रेन टी० बी० हो गई। गम्भीर चिन्तन एवं भयानक खौफनाक वारदातों ने उन्हें अन्तिम दिनों में अर्द्ध विक्षिप्त-सा बना दिया था। श्री हरिशंकर परसाई ने लिखा है कि इन दिनों उन्हें नींद कम आती थी। कभी कभी नींद में चौंककर जगने पर वे दुःस्वप्न का उल्लेख करते थे। खौफनाक वातावरण की परिणति से उनका मस्तिष्क पूर्णतः जर्जर हो गया और कभी कभी जैसी सामान्य वस्तु खो जाने पर भी वे इतने भयभीत होते थे कि जैसे कोई भयानक साजिश उनके विरुद्ध हो रही हो।

फरवरी १९६४ ई० में उन पर पहली बार पक्षाघात का आक्रमण हुआ और साथ ही मस्तिष्क की सोथ युक्त टी० बी० के कारण बेहोशी की हालत में उन्हें भोपाल के हमीदिया अस्पताल में भर्ती किया गया। मध्य प्रदेश सरकार के सक्रिय सहयोग तथा चिकित्सा के सारे खर्च की व्यवस्था के बाद भी अप्रेल-मई में उनकी बीमारी कुछ ही ठीक हो सकी। अपनी कविताओं में जिस 'गर्दनतोड़' का उल्लेख उन्होंने किया है वही बीमारी उन्हें हुई यह कैसा संयोग था। जिन्दगी और मौत का संघर्ष भोपाल के हमीदिया अस्पताल में चला और जून १९६४ में तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री के आर्थिक सहयोग से उन्हें दिल्ली लाया गया। यहाँ के अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान में उनकी चिकित्सा देश के माने जाने चिकित्सकों द्वारा की गई किन्तु ११ सितम्बर १९६४ को छायावादोत्तर युग का यह जाज्वल्यमान नक्षत्र अँधेरे से संघर्ष करते-करते अपने पार्थिव शरीर को त्यागकर चिर निद्रा में सो गया।

१९२०-६४ ई० तक की मुक्तिबोध की जीवन रेखा के विभिन्न मोड़, आवर्त और तूफानी वातावरण में अग्रसर होती गई, जो उनकी काव्य कृतियों में विभिन्न रूप में विद्यमान है। जितना ही वे कविता में टूटे, बिखरे और संत्रस्त हैं उतना ही वे जीवन भी टूटते रहे। अभावों से संघर्ष उनकी 'जीवन-रेखा' का पर्याय बना और अन्त में संघर्ष ही जीत गया किन्तु इससे वे कभी न हारे हैं, न हारेंगे। कुल मिलाकर उनके विराट व्यक्तित्व को निर्मित करने की यही घटनायें हैं।

---

१. आवेग-त्वरित काल-यात्रा : आत्मसंघर्ष की कविता

सत्य के गर्वीले
अन्याय न सह, मित्र
संघर्ष करता हुआ तू जीवन का चित्र खींच
मिथ्या की हत्या कर, बुद्धि के, आत्मा के विष भरे तीरों से
खींच चित्र मानव का प्राणों के रुधिर की लकीरों से

× × ×

बिखरा कर नीले-नीले स्फुलिंग समूह
वह बनती है अकस्मात्
विराट मनुष्य-रूप
नहीं जान पाता कि छूकर, मुझमें समा गई कि
उसमें समा गया मैं
सुनहली काँपती-सी सिर्फ एक लहर रह जाती है।

—भूरी भूरी खाक धूल

आवेग त्वरित काल-यात्री मुक्तिबोध की कविता-यात्रा 'लघु-मानव' की जिजीविषा से सम्बन्धित-यात्रा तथा उसकी अस्मिता की गवाह व्यथा-कथा है। जीवन के संघर्ष में लहूलुहान व्रणाहत काया, स्रवित रक्त के बिन्दु तथा नियति की गहरी चोट सहन करता हुआ आत्मसंघर्षशील प्राणी युग-युग, प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल यात्रा करता है। आज की कविता उसी मानव की अनुभूतियों की समवाय है।

> अँधेरे औ उजाले के भयानक द्वन्द्व ?
> की सारी व्यथा जीकर।
> गुथन, उलझाव के नक्शे बनाने
> भयंकर बात मुँह से / निकल आती है।
> भयंकर बात स्वयं प्रसूत होती है।[१]

आधुनिकता का वास्तविक अभ्युदय वादों की कविता का है, जब छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नकेनवाद आदि नामों से युक्त कर कविता से वाद का स्थायी सम्बन्ध जोड़ा जाता है। कविता का जन्म सामाजिक यथार्थ की सांस्कृतिक परिस्थितियों से मानसिक प्रक्रिया के रूप में होता है। यद्यपि आधुनिकता का आगमन भारतेन्दु युग में ही हो चुका था किन्तु काव्य-भाषा, शैली, शिल्प-विधान, रूप-विधान आदि के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन ईसा की बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में होने के कारण छायावाद युग को इस चेतना का प्रथम चरण कहा जाना चाहिए। विदेशी शासन की प्रतिक्रिया, अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार,[२] तथा क्रान्तिदर्शी भावों के उन्मेष के साथ 'बार-बार गर्जन-वर्षण है मूसलाधार' से चेतना का अंकुर हिन्दी कविता मे उगा।

भारतेन्दु-युग में जन्मी आधुनिक कविता द्विवेदी-युग में किशोरी तथा छायावाद-युग में युवती हो गयी, जिसका शृंगार करने के लिए राकेश उस पार से इस पार आने लगा। उस नवोढ़ा वधू के मन में अब भी प्रलय-निशा की हलचल पुरातन संस्कारों की तरह विद्यमान रही। जड़ीभूत मान्यताओं का हिमाच्छादन धीरे-धीरे कविता से हटने लगा। नवीन काव्य रूपों एवं गीतों की बनस्पतियाँ शीतल जल से मुख धोती हुई चैतन्य हुईं तथा स्वच्छन्दता की आभा ग्रहण करने लगी। भारतीय संस्कृति की धरती विदेशी शासन के नैशांधकार की हलचल अब तक झेल रही थी। किसी निर्मोही की बाट जोहते-जोहते भारतश्री दमयन्ती-सी तरु के नीचे सोती रही किन्तु नल-सा निष्ठुर अव्यक्त प्रिय अभी तक नहीं लौटा। दीपकों के जलाने-बुझाने

---

१ चाँद का मुँह टेढ़ा है (अन्तःकरण का आयतन) मुक्तिबोध पृ० ११० सं० तृतीय

२ हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास। —डॉ० मोहन अवस्थी

का क्रम सतत चलता रहा, देहली द्वार पर गिराये जाने वाले कुसुमों का अम्बार लग गया, प्रतीक्षा के कितने युग बीते किन्तु वह छाया का अव्यक्त नहीं आया—नही ही आया। उसकी सौन्दर्य-मयी सृष्टि-प्रकृति में एक अव्यक्त चेतना देखी गयी। विजन-वन-वल्लरी पर सोती सुहाग भरी शेफालिका का कानन विदेशी शासन के ताप से वीरान होने लगा, असहयोग आन्दोलन का पतझड़ भी आया, किन्तु वसन्त सुमनो की काल्पनिक अनुभूति दूर-देशस्थ प्रिय को पास बुलाने में असमर्थ रही।

छायावादी कविता का मांसल सौन्दर्य-बोध, सूक्ष्म इन्द्रिय संवेदन, आवेग-युक्त मानसिकता, संवेगात्मक हाव-भाव, लौकिकता एवं अलौकिकता की संश्लिष्ट चेतना की प्रतिक्रिया प्रगतिवादी कविता के रूप में सामने आयी। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक-छायावाद-युग के उत्तरार्द्ध में ही आदर्श के स्थान पर यथार्थ का आगमन होने लगा था। पल्लव के माध्यम से आधुनिकता की सौन्दर्यमयी कल्पना का स्वागत करने वाले पन्त ने "द्रुत झरो जगत के जीर्ण-पत्र" लिखकर युगान्त की घोषणा की। कोलाहल की अवनी को छोड़कर 'खग-विश्राम 'क्षितिज बेला' तक मानसिक एवं काल्पनिक यात्रा करने वाला कवि वास्तविकता की खुरदरी जमीन पर आकर योगी नहीं विजयी की तरह जीने की कामना करने लगा।[१]

छायावाद-युग की आदर्शमयी व्यंजना प्रगतिवादी कवियों के लिए दूरारुढ़ कल्पना बन जाने से त्यागी गयी। युग की हुंकार को स्वीकार करने वाले निराला ने १९२२ ई० में ही 'बादल राग' कविता के माध्यम से नवीन यथार्थ अपनाया था। युगीन यथार्थ जब पन्त की दृष्टि में अनिवार्य हो गया तो 'युग-पथ' ग्राम्या, स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि आदि कृतियों में वे प्रगतिवाद की ओर मुड़े। यदि प्रसाद जीवित होते तो वे भी इस नवीनता को स्वीकार करते। महादेवी ने भी नीहार रश्मि एवं नीरजा की सर्जना के बाद 'दीपशिखा' की भूमिका में विस्तार से यथार्थवाद और आदर्शवाद की तुलनात्मक व्याख्या करते हुए कल्पना के कुहाँसे को त्यागकर यथार्थ को स्वीकार कर वेदना से समझौता कर लिया।

माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', अंचल, दिनकर, सुमन आदि कलाकारों ने भी काव्य के क्षेत्र में प्रवेश करते समय छायावादी शिल्प-विधि अपनाकर परम्परा को आगे बढ़ाया किन्तु हुंकार, परशुराम की प्रतीक्षा, हिमतरंगिणी, माता, क्वासि आदि कृतियों में प्रगतिवादी शिल्पविधि का समवेत प्रभाव देखा जाता है। प्रयोगवादी काव्यधारा के नियामक अज्ञेय की 'चिन्ता' भग्नदूत, इत्यलम् पूर्वा में

---

१. है रुको जहाँ पर धार शिलाएँ तोड़ो,
पीयूष चन्द्रमाओं का पकड़ निचोड़ो,
योगियों नहीं विजयी के सदृश जियो रे

दिनकर

तथा गिरिजा कुमार माथुर एवं भारती पर भी छायावाद का परम्परित प्रभाव देखा जाता है। प्रगतिवादी कविता में क्रान्ति, विद्रोह, आक्रोश एवं स्थूल दृष्टि का अभ्युदय रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के गीतों में देखा गया किन्तु इनका भी पूर्व संस्कार बच्चन, नीरज की तरह छायावादी था।

अंग्रेज-प्रभुओं के शोषण से आक्रान्त महाजनी सभ्यता का शिकार होरी अब साहित्य का हीरो बन गया। आजीवन चलने वाले शोषण के शिकंजे से मुक्त न होने के कारण सामान्य जन विद्रोही और क्रान्तिकारी बन गया। फलतः कविता में 'मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' का स्वर गुञ्जरित होने से कविता प्रगतिवादी हो गयी।

द्वितीय महासमर का काल सम्पूर्ण संसार के लिए उल्लेखनीय है जिसमें कि राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति आदि में परिवर्तन होने के कारण वैश्विक चेतना में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। विराट के स्थान पर लघु का महत्त्व, यथार्थ की तुलना में अतियथार्थ का अंकुरण, भावुकता के स्थान पर तार्किकता एवं बौद्धिकता का उन्मेष आत्मचिंतन के नवीन स्तर की खोज के रूप में सामने आया। मनोवैज्ञानिक संघर्ष, आत्मिक प्रक्रिया तथा नवीन काव्य-शिल्प के प्रयोग से प्रगतिवाद के बाद की कविता को हम आत्मसंघर्ष की कविता कहना चाहते हैं। आत्मसंघर्ष की दूसरी प्रक्रिया कविता के माध्यम से आत्मान्वेषण की प्रक्रिया है जिसे नयी कविता के शलाका पुरुष ने 'राहों का अन्वेषण' कहा था। आरम्भ से ही विवादास्पद नाम-प्रयोगवाद रचनाकारों और समीक्षकों के लिए सीधे टकराव का कारण बना और इसका क्षेत्र 'प्रतीक' एवं 'आलोचना' नामक पत्रिकाएँ बनीं। अज्ञेय ने अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा था—"इससे यह परिणाम न निकाला जाय कि वे कविता के किसी एक स्कूल के कवि हैं या कि साहित्य-जगत के किसी गुट अथवा दल के सदस्य या समर्थक हैं। X X X वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं—राही नहीं, राहों के अन्वेषी।"[1]

अज्ञेय के इस कथन की हँसी उड़ाते हुए आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने 'राहों के अन्वेषी' प्रयोगवादियों को स्कूल से लौटे हुए ऐसे बच्चों की तरह माना है जो अपने घर का रास्ता भूल गए हों।[2] अज्ञेय तथा उनके समर्थक रचनाकारों द्वारा 'प्रयोग' शब्द के बार-बार प्रयोग किये जाने के कारण आचार्य वाजपेयी ने इस नवीन काव्य-प्रवृत्ति को 'प्रयोग वाद' की संज्ञा दी। 'वाद' या स्कूल का विरोध करते हुए अज्ञेय ने पहले ही भूमिका में कहा था कि - "संग्रहीत कवि सभी ऐसे होंगे जो

---

१. तार सप्तक — अज्ञेय (विवृत्ति और पुनरावृत्ति)।
२. आधुनिक साहित्य—नन्द दुलारे वाजपेयी, पृ० सं० ७०।

कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं —जो यह दावा नहीं करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं।''[1] 'दिनकर' की दृष्टि में प्रयोगवादी हिन्दी कविता का परिवेश अब तक की समस्त परम्पराओं और मूल्यों के विपरीत 'सुर्रियलिस्टिक' कला की तरह है जिसका अर्थ केवल निरर्थकता हो सकता है। डॉ० शिव प्रसाद सिंह ने प्रयोगवाद को छायावादी कविता के विकास का चरण कहा, प्रगतिवाद जिसके बीच की कड़ी है। डॉ० शम्भुनाथ सिंह इसे प्रगतिवादी काव्य चेतना की अगली कड़ी मानते हैं। इन स्थापनाओं तथा मत-मतान्तरों के मूल में नयी काव्य-धारा के विरोध का संस्कार विद्यमान है। जैसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'छायावाद' की उत्कृष्टता को नकारा था, उसी प्रकार इन समीक्षकों द्वारा समकालीन कविता की नवीन प्रवृत्तियों का विरोध किया गया।

'आत्मसंघर्ष की कविता' मुक्तिबोध द्वारा सृजित कविता है जिसमें प्रयोगवाद, नयी कविता, समसामयिक-कविता आदि का समन्वय है। उन्होंने 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' लिखकर स्वयं को 'नयी कविता' नाम का समर्थक करार दिया। अज्ञेय भी यही नाम स्वीकार करते हैं, किन्तु मुक्तिबोध की आत्म संघर्ष झेलने की दुहरी प्रक्रिया के कारण इन नामों के विवाद से बचकर हम इसे 'आत्म संघर्ष'-की कविता कहते हैं। प्रयोगवाद के सम्बन्ध में मुक्तिबोध लिखते हैं कि तथाकथित प्रयोगवाद की कोई विशेष व्याख्या नहीं की जा सकती, साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में ही उसे देखा सकता है। यह निश्चित है कि प्रयोगवादी कवितायें तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति के विरुद्ध व्यक्ति द्वारा की गयी भावनात्मक प्रतिक्रियायें हैं।[2] मुक्तिबोध द्वारा प्रयोगवाद के जो लक्षण बताये गये उनमें 'व्यक्ति द्वारा की गयी भावनात्मक प्रतिक्रिया' प्रमुख है। यदि भावनात्मक प्रतिक्रिया को ही मौलिक सृजन की संज्ञा दी जाती हो तो ऐसी कविताओं में स्वस्थ सर्जना-दृष्टि का अभाव परिलक्षित होने लगता है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने प्रयोगवादी काव्य को ''वास्तविक सृजन और क्रान्ति दर्शिता के बदले सामान्य मनोरंजन और शैली प्रसाधन''[3] की कविता कहा है।

समीक्ष्य सन्दर्भ में इस युग की कविता के लिये प्रयुक्त नामों में 'नयी कविता' नाम अधिक प्रचलित रहा।[4] डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने कहा है कि, ''नयी-कविता नाम

---

१. तार सप्तक (विवृत्ति और पुनरावृत्ति)—भूमिका, अज्ञेय पृ० ११।
२. नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र—मुक्ति बोध, पृ० ६१। संस्करण—१९७१।
३. आधुनिक साहित्य—नन्द दुलारे वाजपेयी, पृ० ९५।
४. धर्म युग—६ अगस्त १९६७, पृ० १८।

(नन्द दुलारे वाजपेयी का निबन्ध)

के पीछे एक इतिहास है। सन् १९४३ ई० में जब एक नये प्रकार और नये ढंग की कविताएँ अज्ञेय के सम्पादकत्व में 'तार सप्तक' में प्रकाशित हुईं तो उनके रूप-शिल्प सम्बन्धी नये प्रयोगों को देखकर × × × हिन्दी के कतिपय आलोचकों ने इस नयी काव्य धारा का नाम ही 'प्रयोगवाद' रख दिया। × × × इधर कुछ दिनों में इन कवियों ने अपनी कविताओं के साथ 'प्रयोगवादी' विशेषण न लगाकर उन्हें 'नयी कविता' कहना आरम्भ किया है।"[1] डॉ० सिंह की दृष्टि में 'नयी कविता' प्रयोगवाद की विरासत है। डॉ० रघुवंश ने भी 'प्रयोगवाद' और नयी कविता में घनिष्ट संबन्ध स्थापित करते हुए उपलब्धि की दृष्टि से 'नयी कविता' 'प्रयोगशील' कविता से आगे विकसित माना है। गिरिजा कुमार माथुर ने भी 'नयी कविता' नाम 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' दोनों प्रवृत्तियों के लिये उपयुक्त माना है। नयी कविता हम उसे मानते हैं जिसमें इन दोनों के स्वस्थ तत्वों का सन्तुलन और समन्वय हो। इन समीक्षकों की दृष्टि में नाम भले बदला हो किन्तु 'नयी कविता' अनन्त है—

नहीं होती, कहीं भी खतम कविता नहीं होती,
कि वह आवेग त्वरित काल-यात्री है,
व मैं उसका नहीं कर्त्ता / पिता-धाता
कि वह कभी दुहिता नहीं होती—

मुक्तिबोध के परिप्रेक्ष्य की कविता की यात्रा अनन्त है क्योंकि उससे सम्बन्धित 'लघु मानव' अनन्त है। उनके अनुसार काव्य कला का विकास प्रत्यक्ष रूप से सांस्कृतिक तथा परोक्ष रूप से मनोवैज्ञानिक एवं आत्मिक प्रक्रिया है। अनिश्चय, दुश्चिन्ता, घबराहट, दहशत, तनाव एवं अन्तर्संघर्ष की प्रवृत्ति की संवाहिका होने के कारण समकालीन कविता का सम्बन्ध कवि के दुहरे आत्म-संघर्ष से होता है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर कवि वाह्य संघर्ष झेलता है तथा मानसिक स्तर पर वह आन्तरिक संघर्ष झेलता है।

कुण्ठा, घुटन, निराशा, अवसाद जैसी मनःस्थितियाँ पहले मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में कवि के मानस में आती है, (पुनः प्रयोगवादी कविता में, एक खास कटान, खास शैली का रूप धारण कर युगीन परिप्रेक्ष्य के अनुरूप शिल्प विधि बन जाती हैं।[2] नयी कविता की दोनों प्रक्रियाओं से जुड़े हुए आत्म-संघर्ष के कारण प्रयोग और नयेपन की तुलना में 'आत्मसंघर्ष' की संज्ञा अधिक समीचीन लगती है।

समकालीन हिन्दी कविता के सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवेश पर दृष्टि डालना इसकी मूल प्रवृत्ति का साक्षात्कार है। आत्म-संघर्ष की कविता में सांस्कृतिक

---

१. आलोचना—जनवरी ५७, पृ० ६।
२. नयी कविता का आत्म-संघर्ष। —मुक्तिबोध

पृष्ठ-भूमि का ह्रास विदेशी मतवादों का व्यापक प्रभाव तथा नये जीवन मूल्यों के अनुरूप विकसित नयी-प्रतिमा के बिम्बों की मात्रा है।

प्रयोगवाद वास्तव में शिल्पगत प्रयोग का आन्दोलन है जिसमें द्वितीय विश्व-युद्धोत्तर हिन्दी कविता के विकासात्मक चरण के चिह्न हैं। जब प्रवर्तक ने ही इस नाम को उपयुक्त नहीं माना तो उस नाम के लिए इतना आग्रह क्यों? 'वाद' सिद्धान्त का सूचक भले हो किन्तु काव्य-धारा की अभिधा इसमें ध्वनित नहीं होती। 'तार-सप्तक' के सातों कवियों का साथ-साथ आना 'बाईचांस' या 'परचांस' होने पर भी एक बार नहीं तीन-चार बार प्रकाशन पूर्व-निर्मित योजना का ही प्रतिफल है। इन कवियों में वैचारिक अथवा राजनीतिक मतभेद या सामान्य मान्यताओं में मतैक्य न होने पर भी 'प्रयोग' के 'स्तर पर समानता तथा शिल्प एवं काव्य-भाषा के क्षेत्र में निश्चित दिशा परिलक्षित होती है।

'आत्मसंघर्ष की कविता' नाम का औचित्य इसलिए भी है कि स्वदेशी और विदेशी संस्कृति का संघर्ष, पुरातनता और नवीनता का संघर्ष, पाश्चात्य एवं पौर्वात्य दार्शनिक मान्यताओं का संघर्ष इसी युग में देखा गया। छायावादोत्तर युग पर मार्क्स, कामू, काफ्का, कीर्केगार्द, रशल, सार्त्र, अरविन्द, गांधी, कान्ट आदि के प्रभाव के परिणामस्वरूप विभिन्न मान्यताओं से आया हुआ सैद्धान्तिक संघर्ष नवलेखन मे तनाव का विषय बना।[१] प्रवृत्ति एवं शिल्पगत आन्दोलन के स्तर पर जिसे प्रयोगवाद और 'नयी कविता' नामों से जाना जाता है, मुक्तिबोध की 'आवेग-त्वरित काला-यात्रा' का सम्बन्ध उसी कविता से है जिसकी मुख्य प्रेरणा आत्म-संघर्ष है।

गजानन माधव मुक्तिबोध का उन्मेष तार-सप्तक के प्रकाशन के समय हुआ। सात संकलित कवियों में प्रथम स्थान दिये जाने के कारण उनकी प्रमुखता प्रमाणित है। 'तार-सप्तक' नाम चाहे जिसने सुझाया हो किन्तु सप्तक के प्रकाशन की योजना प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन एवं मुक्तिबोध के मन की उद्भावना है। माधव कालेज उज्जैन एवं मण्डी शुजालपुर के शारदा-शिक्षा सदन में इन रचनाकारों का साथ हुआ था। 'नयी कविता का आत्म-संघर्ष' में विवेचित संदर्भित विषय मुक्तिबोध की विवीक्षा का मुख्य विषय है।

नयी कविता के सम्बन्ध में फैली हुई धारणाओं प्रतिवादों एवं नवीन

---

१. सच तो यह है कि आज के कवि को एक साथ तीन क्षेत्रों में संघर्ष करना है— × × ×
(१) तत्त्व के लिए संघर्ष (२) अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिये संघर्ष (३) दृष्टि विकास का संघर्ष।

—नयी कविता का आत्म-संघर्ष—मुक्तिबोध, पृ० ३

स्थापनाओं का श्रेय यद्यपि 'अज्ञेय' को दिया जाता है किन्तु मुक्तिबोध में [illegible] अज्ञेय की तुलना में अधिक स्पष्ट है। "निराला और मुक्तिबोध ने अपनी [illegible] कविता को बचा लिया, पंत तथा अज्ञेय ने अपने को बचा लिया [illegible] बलि दे दी और ब्रेख्त ने दोनों को बचा लिया राजकमल ने दोनों को [illegible]।" मुक्तिबोध के सम्बन्ध में डॉ० मदान द्वारा व्यक्त धारणा उनके [illegible] की सूचक है। मुक्तिबोध की कविता-यात्रा उनके जिए गए जीवन [illegible] इस परिभाषा द्वारा परिलक्षित होती है—"नयी कविता वैविध्यमय [illegible] आत्म-चेतस् व्यक्ति की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है। चूंकि आज का [illegible] विषम है, आज की सभ्यता ह्रास-ग्रस्त है इसलिए आज की कविता [illegible] स्वाभाविक है।"[2] इस परिभाषा में निरूपित संघर्ष, जीवन की विषमता [illegible]-ग्रस्तता ध्यातव्य है। इस आधार पर 'आवेग-त्वरित काल-यात्रा' अर्थात् मुक्तिबोध की कविता-यात्रा के सैद्धान्तिक-पक्ष-संवेदनात्मक प्रतिक्रिया से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी दृष्टि में कविता क्रिया नहीं प्रतिक्रिया है, जिसमें परिस्थितियों की [illegible] के साथ-साथ जीवन की विसंगतियाँ हैं। सपाट बयानी को अपनाने [illegible] संवेदनात्मक ज्ञान को 'ज्ञानात्मक संवेदन' का रूप न दे पाने की [illegible] अथवा पुरानी परिपाटी ग्रस्त भाषा द्वारा नये-युग की समस्याओं को [illegible] की असमर्थता है। आज की सर्जना का मूल स्वर तनाव का है। मुक्तिबोध में यह तनाव सर्वाधिक है। नयी कविता के रचनाकारों की सर्जना के विभिन्न [illegible] अधुनातन समीक्षा के लिए भी एक गम्भीर संकट पैदा करते हैं।

जीवन को सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास से जोड़ना भी उनकी कविता में पाया जाता है। उनके समानधर्मा-रचनाकार 'अज्ञेय', 'माचवे', 'जैन', गिरिजा कुमार माथुर', 'शमशेर', रघुवीर सहाय आदि की कविताओं में भी [illegible] की प्रवृत्ति आत्म-संघर्ष या मानसिक यातना का कारण बनी है।[3] 'नयी कविता' [illegible] के दूसरे व्याख्याता डॉ० जगदीश गुप्त द्वारा दी गयी परिभाषा इस प्रकार है—"नयी कविता आन्तरिक अनुशासन से युक्त अनुभूति जन्य सघन लयात्मक शब्दार्थ है, जिसमें सह-अनुभूति उत्पन्न करने की यथेष्ट क्षमता निहित रहती है।[4] गुप्त जी की [illegible] आया हुआ सहज आन्तरिक अनुशासन मुक्तिबोध के असहज तनाव के [illegible]

---

१. 'मुक्तिबोध' (सं० लक्ष्मण दत्त गौतम) इन्द्रनाथ मदान का निबन्ध।
२. नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबन्ध—मुक्तिबोध, (पृ० [illegible])
३. नयी कविता के विभिन्न कवियों की अपनी शैलियाँ हैं इन शैलियों का [illegible] अनवरत हो रहा है।
नयी कविता का आत्मसंघर्ष/मुक्तिबोध, पृ० [illegible]
४. नयी कविता : अंक ५-६ / पृ० ६०—६१।

है। डॉ० गुप्त ने 'सह-अनुभूति' उत्पन्न करने की प्रवृत्ति को समीक्ष्य परिभाषा से जोड़ना चाहा है किन्तु शुक्ल जी द्वारा स्थापित रसात्मकता के विरुद्ध उन्होंने रिझाने की अपेक्षा खिझाने की प्रक्रिया को नयी कविता की अनिवार्यता बताया है। गुप्त जी के लक्षण कविता के सार्वकालिक लक्षण हो सकते हैं, किन्तु छायावादोत्तर-युग की प्रवृत्ति का परिचय उनकी इस परिभाषा से नहीं होता है।

कविता अथवा नयी कविता के स्वरूप-विकास पर चर्चा करते समय गुप्त जी की परिभाषा की मीमांसा के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परिभाषा पर भी ध्यान देना समीचीन है—"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। इसी रस-दशा की अभिव्यक्ति के लिये मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं।"[१] डॉ० गुप्त की परिभाषा का 'अनुभूतिजन्य लयात्मक शब्दार्थ' शुक्ल जी की 'मुक्तावस्था-रस-दशा' के निकट है। इसी प्रकार 'शब्द-विधान' तथा शब्दार्थ में भी किंचित अन्तर है। 'अनुभूति', 'रस-दशा' का अभिनव रूपान्तर है। रसानुभूति 'रस-दशा' अथवा 'सहानुभूति' मात्र के अन्तर से 'नयी कविता' को पहचानने में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती। डॉ० नगेन्द्र ने भी यही प्रश्न उठाया है कि नयी कविता में 'नया' क्या है। कविता के सन्दर्भ में नयी पुरानी की जगह अच्छी बुरी या इससे भी आगे कविता अकविता का भेद अधिक सार्थक प्रतीत होता है। बिहारी और पन्त, घनानन्द और गिरिजा कुमार माथुर तथा अज्ञेय और रत्नाकर के रूपज्ञान और संवेदनों में अन्तर भेद और सार्थकता प्रकट करता है।[२]

'प्रयोगवाद' नयी कविता, समकालीन कविता 'स्वातंत्र्योत्तर कविता' आदि नये नाम एवं नयी प्रवृत्तियों की स्वीकृति छायावाद-युग के बाद की हिन्दी कविता के लिए प्रचलित है। छायावादोत्तर काल की प्रगति-प्रयोगवादी काव्यधारा से 'नयी कविता अकविता' तक की हिन्दी कविता की व्यापक परिणति को हम मनोवैज्ञानिक आधार पर पृथक मानते हैं। इस मनःस्थिति की कविता में व्याप्त तनावपूर्ण संघर्ष को उसके परिभाषाकारों ने प्रमुखता प्रदान की है जिसका कारण आत्मसंघर्ष ही है। नयी कविता को पूर्ववर्ती कविता से भिन्न मानने का कारण इसकी विसंगतियाँ, विडम्बनायें, विपरीत स्थितियाँ हैं। 'काव्य के प्रति एक अन्वेषी की दृष्टि' तथा कविता को प्रयोग का माध्यम मानने वाले प्रयोगवादी कवियों में एकात्मकता का सूत्र उतना पुष्ट नहीं है जितना पुष्ट मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष है। राहों के अन्वेषी प्रयोगधर्मी कवियों ने 'सात नहीं साढ़े सात राहें' अपनायी—वह भी अलग-अलग दिशाओं में,

---

१. चिन्तामणि—(भाग १)—कविता क्या है—आचार्य शुक्ल।

२. आलोचक की आस्था—डॉ० नगेन्द्र—पृ० सं० ११।

किन्तु गनीमत है कि इन सबके अलग-अलग खिंचाव के बाद भी गति की जगह ए
स्थिरता की स्थिति (कुछ समय के लिए) कविता में आई जो प्रगतिवादी काव्यान्दोलन
के कारण भंग हो चुकी थी।

कविता में किये गये प्रयोगों की दशा; दिशा तथा सम्भावना से आज का प्रबु
पाठक परिचित हो चुका है। पूर्ववर्ती कविता की तुलना में 'तारसप्तक' के प्रकाशनो-
परान्त अन्वेषण (स्वीकृति) प्रयोग (प्रदत्त) का जो क्रम हिन्दी कविता में चला वह
'नया काव्य' की शैली बनकर जीवन मूल्य कहलाया। मुक्तिबोध की कविता-यात्रा
हिन्दी साहित्य की अधुनातन यात्रा है, जिसमें आवेग-त्वरित काल-यात्री के पदचिह्न
विद्यमान है। उन्होंने कविता को न केवल आत्मिक-मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया कहा अपितु
उसे सांस्कृतिक प्रक्रिया कहा। इन्हीं दोनों प्रक्रियाओं के क्रम में हम समकालीन कविता
की विवीक्षा करना चाहते हैं।

छायावादोत्तर युग की काव्य-प्रवृत्तियों के अनुशीलन के क्रम में प्रथम विचार-
णीय बिन्दु प्रेरक परिस्थितियों का है, जिससे कि पूर्वा पर क्रम में सर्जक के आत्म-
संघर्ष की तीनो स्थितियाँ साकार हुई हैं। दूसरा प्रमुख विषय है नयी काव्य-प्रवृत्ति
की संवाहिका के रूप नें 'नयी कविता' की उपलब्धि।

प्रेरक परिस्थितियाँ—आत्मसंघर्ष की कविता को स्वदेश और विदेश की
वैचारिक मान्यताओं से प्रेरणा मिली है, जिसे कि व्यापक स्तर पर सांस्कृतिक प्रक्रिया
कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक,
परिस्थितियाँ आती हैं, जिनका प्रसार राष्ट्र – समाज—जनमानस में हुआ करता है।
समकालीन कविता की कलात्मक अभिव्यंजना एवं जीवन मूल्यों के अनुरूप चित्रित
प्रतीक, बिम्ब एवं मिथक, प्रयोगवाद की प्रयोगधर्मिता तथा नयी कविता के नयेपन के
आधार हैं। "प्रयोगवादी कविता नयी कविता है और वर्तमान संदर्भ में 'नयी' ही
है। विषय के चयन तथा उसके प्रति प्रतिक्रियालु होने की पद्धति और अभिव्यक्ति की
प्रणाली में प्रयोगवाद नया है।"[1] गिरिजा कुमार माथुर, बालकृष्ण राव, गजानन
माधव मुक्तिबोध आदि कवि एवं समीक्षक छायावाद के उपरान्त की हिन्दी कविता
को नयी कहकर उसके नयेपन के मूल में नये शिल्प-विधान एवं कथ्य को मानते हैं।
डॉ० नामवर सिंह,[2] डॉ० राम बिलास शर्मा नयी कविता को प्रयोगवाद का छद्म रूप
मानकर उसकी नवीनता को प्रयोगवाद की नवता मानते हैं। डॉ० शिवकुमार मिश्र ने[3]
१९५५ ई० के पूर्व की कविता को प्रयोगवाद तथा उसके बाद की कविता को नयी

१. प्रयोगवादी काव्यधारा—डॉ० रमाशंकर तिवारी, पृ० ७।
२. प्रयोगवाद (आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ)—नामवर सिंह।
३. नया हिन्दी काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र।

ठ-भूमि का ह्रास विदेशी मतवादों का व्यापक प्रभाव तथा नये जीवन मूल्यों के रूप विकसित नयी-प्रतिमा के बिम्बों की मात्रा है।

प्रयोगवाद वास्तव में शिल्पगत प्रयोग का आन्दोलन है जिसमें द्वितीय विश्व-ोत्तर हिन्दी कविता के विकासात्मक चरण के चिह्न हैं। जब प्रवर्तक ने ही इस न को उपयुक्त नहीं माना तो उस नाम के लिए इतना आग्रह क्यों? 'वाद' सिद्धान्त सूचक भले हो किन्तु काव्य-धारा की अभिधा इसमें ध्वनित नहीं होती। 'तार-क' के सातों कवियों का साथ-साथ आना 'बाईचांस' या 'परचांस' होने पर भी बार नहीं तीन-चार बार प्रकाशन पूर्व-निर्मित योजना का ही प्रतिफल है। इन ियों में वैचारिक अथवा राजनीतिक मतभेद या सामान्य मान्यताओं में मतैक्य न पर भी 'प्रयोग' के 'स्तर पर समानता तथा शिल्प एवं काव्य-भाषा के क्षेत्र में चत दिशा परिलक्षित होती है।

'आत्मसंघर्ष की कविता' नाम का औचित्य इसलिए भी है कि स्वदेशी विदेशी संस्कृति का संघर्ष, पुरातनता और नवीनता का संघर्ष, पाश्चात्य एवं ीय दार्शनिक मान्यताओं का संघर्ष इसी युग में देखा गया। छायावादोत्तर युग पर ं, कामू, काफ़्का, कीर्केगार्द, रशल, सार्त्र, अरविन्द, गांधी, कान्ट आदि के प्रभाव रिणामस्वरूप विभिन्न मान्यताओं से आया हुआ सैद्धान्तिक संघर्ष नवलेखन में ा का विषय बना।[१] प्रवृत्ति एवं शिल्पगत आन्दोलन के स्तर पर जिसे प्रयोगवाद 'नयी कविता' नामों से जाना जाता है, मुक्तिबोध की 'आवेग-त्वरित काला-यात्रा' म्बन्ध उसी कविता से है जिसकी मुख्य प्रेरणा आत्म-संघर्ष है।

गजानन माधव मुक्तिबोध का उन्मेष तार-सप्तक के प्रकाशन के समय हुआ। संकलित कवियों में प्रथम स्थान दिये जाने के कारण उनकी प्रमुखता प्रमाणित ार-सप्तक' नाम चाहे जिसने सुझाया हो किन्तु सप्तक के प्रकाशन की योजना र माचवे, नेमिचन्द्र जैन एवं मुक्तिबोध के मन की उद्भावना है। माधव कालेज एवं मण्डी सुजालपुर के शारदा-शिक्षा सदन में इन रचनाकारों का साथ हुआ 'नयी कविता का आत्म-संघर्ष' में विवेचित संदर्भित विषय मुक्तिबोध की विवीक्षा का विषय है।

१. नयी कविता के सम्बन्ध में फैली हुई धारणाओं प्रतिवादों एवं नवीन

सच तो यह है कि आज के कवि को एक साथ तीन क्षेत्रों में संघर्ष करना है— × × ×

(१) तत्त्व के लिए संघर्ष (२) अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिये संघर्ष (३) दृष्टि विकास का संघर्ष।

—नयी कविता का आत्म-संघर्ष—मुक्तिबोध, पृ० ३

स्थापनाओं का श्रेय यद्यपि 'अज्ञेय' को दिया जाता है किन्तु मुक्तिबोध की धारणा अज्ञेय की तुलना में अधिक स्पष्ट है। "निराला और मुक्तिबोध ने अपनी बलि देकर कविता को बचा लिया, पंत तथा अज्ञेय ने अपने को बचा लिया लेकिन कविता की बलि दे दी और ब्रेख्त ने दोनों को बचा लिया राजकमल ने दोनों की बलि दे दी।"[१] मुक्तिबोध के सम्बन्ध में डॉ० मदान द्वारा व्यक्त धारणा उनके रचनाकार की महत्ता की सूचक है। मुक्तिबोध की कविता-यात्रा उनके जिए गए जीवन का पर्याय है जो इस परिभाषा द्वारा परिलक्षित होती है—"नयी कविता वैविध्यमय जीवन के प्रति आत्म-चेतस् व्यक्ति की संवेदनात्मक प्रतिक्रिया है। चूँकि आज का वैविध्यमय जीवन विषम है, आज की सभ्यता ह्रास-ग्रस्त है इसलिए आज की कविता में तनाव होना स्वाभाविक है।"[२] इस परिभाषा में निरूपित संघर्ष, जीवन की विषमता तथा ह्रास-ग्रस्तता ध्यातव्य है। इस आधार पर 'आवेग-त्वरित काल-यात्रा' अर्थात् मुक्तिबोध की कविता-यात्रा के सैद्धान्तिक-पक्ष-संवेदनात्मक प्रतिक्रिया से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी दृष्टि में कविता क्रिया नहीं प्रतिक्रिया है, जिसमें परिस्थितियों की विविधताओं के साथ-साथ जीवन की विसंगतियाँ हैं। सपाट बयानी को अपनाने पर भी सम्पूर्ण संवेदनात्मक ज्ञान को 'ज्ञानात्मक संवेदन' का रूप न दे पाने की भाषायी असमर्थता अथवा पुरानी परिपाटी ग्रस्त भाषा द्वारा नये-युग की समस्याओं को वहन न कर पाने की असमर्थता है। आज की सर्जना का मूल स्वर तनाव का है। मुक्तिबोध में यह तनाव सर्वाधिक है। नयी कविता के रचनाकारों की सर्जना के विविध स्तर एवं स्वर अधुनातन समीक्षा के लिए भी एक गम्भीर संकट पैदा करते हैं।

जीवन को सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास से जोड़ना भी उनकी कविता में पाया जाता है। उनके समानधर्मा-रचनाकार 'अज्ञेय', 'माचवे', 'जैन', गिरिजा कुमार माथुर', 'शमशेर', रघुवीर सहाय आदि की कविताओं में भी ह्रासग्रस्त जीवन की प्रवृत्ति आत्म-संघर्ष या मानसिक यातना का कारण बनी है।[३] 'नयी कविता' नाम के दूसरे व्याख्याता डॉ० जगदीश गुप्त द्वारा दी गयी परिभाषा इस प्रकार है—"कविता आन्तरिक अनुशासन से युक्त अनुभूति जन्य सघन लयात्मक शब्दार्थ है, जिसमें सह-अनुभूति उत्पन्न करने की यथेष्ट क्षमता निहित रहती है।[४] गुप्त जी की परिभाषा में आया हुआ सहज आन्तरिक अनुशासन मुक्तिबोध के असहज तनाव के ठीक विपरीत

१. 'मुक्तिबोध' (सं० लक्ष्मण दत्त गौतम) इन्द्रनाथ मदान का निबन्ध।
२. नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबन्ध—मुक्तिबोध, (पृ० १२)
३. नयी कविता के विभिन्न कवियों की अपनी शैलियाँ हैं इन शैलियों का विकास अनवरत हो रहा है।
: नयी कविता का आत्म-संघर्ष/ मुक्तिबोध, पृ० ६०—६१।
४. नयी कविता : अंक ५-६ / पृ० ६०—६१।

है। डॉ० गुप्त ने 'सह-अनुभूति' उत्पन्न करने की प्रवृत्ति को समीक्ष्य परिभाषा से जोड़ना चाहा है किन्तु शुक्ल जी द्वारा स्थापित रसात्मकता के विरुद्ध उन्होंने ही रिझाने की अपेक्षा खिझाने की प्रक्रिया को नयी कविता की अनिवार्यता बताया है। गुप्त जी के लक्षण कविता के सार्वकालिक लक्षण हो सकते हैं, किन्तु छायावादोत्तर-युग की प्रवृत्ति का परिचय उनकी इस परिभाषा से नहीं होता है।

कविता अथवा नयी कविता के स्वरूप-विकास पर चर्चा करते समय गुप्त जी की परिभाषा की मीमांसा के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परिभाषा पर भी ध्यान देना समीचीन है—"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। इसी रस-दशा की अभिव्यक्ति के लिये मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं।"[1] डॉ० गुप्त की परिभाषा का 'अनुभूतिजन्य लयात्मक शब्दार्थ' शुक्ल जी की 'मुक्तावस्था-रस-दशा' के निकट है। इसी प्रकार 'शब्द-विधान' तथा शब्दार्थ में भी किंचित अन्तर है। 'अनुभूति', 'रस-दशा' का अभिनव रूपान्तर है। रसानुभूति 'रस-दशा' अथवा 'सहानुभूति' मात्र के अन्तर से 'नयी कविता' को पहचानने में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती। डॉ० नगेन्द्र ने भी यही प्रश्न उठाया है कि नयी कविता में 'नया' क्या है। कविता के सन्दर्भ में नयी पुरानी की जगह अच्छी बुरी या इससे भी आगे कविता अकविता का भेद अधिक सार्थक प्रतीत होता है। बिहारी और पन्त, घनानन्द और गिरिजा कुमार माथुर तथा अज्ञेय और रत्नाकर के रूपज्ञान और संवेदनों में अन्तर भेद और सार्थकता प्रकट करता है।[2]

'प्रयोगवाद' नयी कविता, समकालीन कविता 'स्वातंत्र्योत्तर कविता' आदि नये नाम एवं नयी प्रवृत्तियों की स्वीकृति छायावाद-युग के बाद की हिन्दी कविता के लिए प्रचलित है। छायावादोत्तर काल की प्रगति-प्रयोगवादी काव्यधारा से 'नयी कविता अकविता' तक की हिन्दी कविता की व्यापक परिणति को हम मनोवैज्ञानिक आधार पर पृथक मानते हैं। इस मनःस्थिति की कविता में व्याप्त तनावपूर्ण संघर्ष को उसके परिभाषाकारों ने प्रमुखता प्रदान की है जिसका कारण आत्मसंघर्ष ही है। नयी कविता को पूर्ववर्ती कविता से भिन्न मानने का कारण इसकी विसंगतियाँ, विडम्बनायें, विपरीत स्थितियाँ हैं। 'काव्य के प्रति एक अन्वेषी की दृष्टि' तथा कविता को प्रयोग का माध्यम मानने वाले प्रयोगवादी कवियों में एकात्मकता का सूत्र उतना पुष्ट नहीं है जितना पुष्ट मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष है। राहों के अन्वेषी प्रयोगधर्मी कवियों ने 'सात नहीं साढ़े सात राहें' अपनायी—वह भी अलग-अलग दिशाओं में,

१. चिन्तामणि—(भाग १)—कविता क्या है—आचार्य शुक्ल।
२. आलोचक की आस्था—डॉ० नगेन्द्र—पृ० सं० ११५।

किन्तु गनीमत है कि इन सबके अलग-अलग खिंचाव के बाद भी गति की जगह एक स्थिरता की स्थिति (कुछ समय के लिए) कविता में आई जो प्रगतिवादी काव्यान्दोलन के कारण भंग हो चुकी थी।

कविता में किये गये प्रयोगों की दशा; दिशा तथा सम्भावना से आज का प्रबुद्ध पाठक परिचित हो चुका है। पूर्ववर्ती कविता की तुलना में 'तारसप्तक' के प्रकाशनोपरान्त अन्वेषण (स्वीकृति) प्रयोग (प्रदत्त) का जो क्रम हिन्दी कविता में चला वह 'नया काव्य' की शैली बनकर जीवन मूल्य कहलाया। मुक्तिबोध की कविता-यात्रा हिन्दी साहित्य की अधुनातन यात्रा है, जिसमें आवेग-त्वरित काल-यात्री के पदचिह्न विद्यमान है। उन्होंने कविता को न केवल आत्मिक-मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया कहा अपितु उसे सांस्कृतिक प्रक्रिया कहा। इन्हीं दोनों प्रक्रियाओं के क्रम में हम समकालीन कविता की विवीक्षा करना चाहते हैं।

छायावादोत्तर युग की काव्य-प्रवृत्तियों के अनुशीलन के क्रम में प्रथम विचारणीय बिन्दु प्रेरक परिस्थितियों का है, जिससे कि पूर्वा पर क्रम में सर्जक के आत्म-संघर्ष की तीनों स्थितियाँ साकार हुई हैं। दूसरा प्रमुख विषय है नयी काव्य-प्रवृत्ति की संवाहिका के रूप में 'नयी कविता' की उपलब्धि।

प्रेरक परिस्थितियाँ—आत्मसंघर्ष की कविता को स्वदेश और विदेश की वैचारिक मान्यताओं से प्रेरणा मिली है, जिसे कि व्यापक स्तर पर सांस्कृतिक प्रक्रिया कहा जा सकता है। इसके अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, परिस्थितियाँ आती हैं, जिनका प्रसार राष्ट्र—समाज—जनमानस में हुआ करता है। समकालीन कविता की कलात्मक अभिव्यंजना एवं जीवन मूल्यों के अनुरूप चित्रित प्रतीक, बिम्ब एवं मिथक, प्रयोगवाद की प्रयोगधर्मिता तथा नयी कविता के नयेपन के आधार हैं। "प्रयोगवादी कविता नयी कविता है और वर्तमान संदर्भ में 'नयी' ही है। विषय के चयन तथा उसके प्रति प्रतिक्रियालु होने की पद्धति और अभिव्यक्ति की प्रणाली में प्रयोगवाद नया है।"[1] गिरिजा कुमार माथुर, बालकृष्ण राव, गजानन माधव मुक्तिबोध आदि कवि एवं समीक्षक छायावाद के उपरान्त की हिन्दी कविता को नयी कहकर उसके नयेपन के मूल में नये शिल्प-विधान एवं कथ्य को मानते हैं। डॉ० नामवर सिंह,[2] डॉ० राम बिलास शर्मा नयी कविता को प्रयोगवाद का छद्म रूप मानकर उसकी नवीनता को प्रयोगवाद की नवता मानते हैं। डॉ० शिवकुमार मिश्र ने[3] १९५५ ई० के पूर्व की कविता को प्रयोगवाद तथा उसके बाद की कविता को नयी

---

१. प्रयोगवादी काव्यधारा—डॉ० रमाशंकर तिवारी, पृ० ७।
२. प्रयोगवाद (आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ)—नामवर सिंह।
३. नया हिन्दी काव्य—डॉ० शिवकुमार मिश्र।

कर इसका क्षेत्र वर्गीकृत करना चाहा है। मुक्तिबोध की
परान्त रूपाकार ग्रहण करने वाली, उनकी शिल्प-विधि से
रे विश्वयुद्ध के बाद की सांस्कृतिक प्रक्रिया से सम्बन्धित
न्दी के तीसरे दशक से आरम्भ हुई क्रान्ति की धारा
वयुद्ध के बाद मठ और दुर्ग को तोड़कर दुर्गम पहाड़ों-पठार
नये महानद बन गई। इस चेतना को विकसित करने का श्रेय
ट्रीय घटनाओं को [illegible] [illegible] [illegible] से
न्द्वात्मक भौतिकवाद का स्वागत, द्वितीय महासमर में
[illegible] [illegible], व्यक्ति-स्वातंत्र्य की प्रवृत्ति, [illegible]
[illegible] से चली आती हुई [illegible] की [illegible]
[illegible] [illegible] है जो [illegible] [illegible] की [illegible]
।

नवीन कविता की अन्य प्रेरणाओं के अन्तर्गत [illegible]
रचनाधर्मिता को स्वीकार किया जा सकता है। डॉ०
योगवाद की पृष्ठभूमि [illegible] [illegible]
सिग्नेचर्स' पत्रिका से जोड़ा है। आडेन, डे, लुइस, स्पेंडर
विश्वयुद्ध के बीच की परिस्थितियों को चित्रित करने वा
आर्थिक स्तर सामान्य एवं निम्न था, अवस्था एवं अनुभव
रचनाकारों ने भी समवेत संकलन प्रकाशित कराये थे।
ई अपवाई तथा स्टीफेन स्पेण्डर आदि का सहयोग इस नवी
।[१]

ाद युग के बाद चिन्तन के क्षेत्र में गम्भीर परिवर्तन का कारण
ानवाद द्वारा लगाया गया विषम प्रश्नवाचक है।[२] एक परम्परि
स्त होने के बाद सूर्य को भास्कर देव न मानकर 'बावरे अहे
ानना शुरू हुआ। उसके प्रति आस्था भी तभी व्यक्त की जायगी
आ जायगा जब वह मन की डुबकी कलौंस को मांजकर,
र करके जायेगा।[३] आस्था में वैचारिक परिवर्तन तथा अन्य
'पदार्थवाद' का परिणाम है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में होने
दिशा निर्दिष्ट की है कि आज अणु-परमाणु का भी अस्तित्व
है। प्रश्नों की एक लम्बी शृंखला यहाँ आकर समाप्त हो

लेखन — डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी।
हिन्दी साहित्य — (अज्ञेय), पृ० सं० १९।
हेरी — अज्ञेय।

जाती है क्यों ? कौन ? क्यों ? के बाद अन्तिम प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है । त. प्रधान वैज्ञानिक दृष्टि, भावुकता के विपरीत जीवनानुभव के द्वारा ग्रहण किये सत्य को कविता मे स्थान देने की प्रक्रिया इसी युग में आई ।

कार्लमार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद युग-एडलर आदि परवर्ती मनोवैज्ञानिकों के मतवाद एवं मिल के उपयोगितावाद के अतिरिक्त समकालीन कविता की प्रेरणाओं में सार्त्र के अस्तित्त्ववाद तथा कामू, काफ्का, कीर्केगार्द आदि की अनीश्वरवादी विचारधाराओं का प्रभाव भी देखा जाता है । डार्विन के विकासवाद ने जड़ से चेतन की प्रामाणिक उत्पत्ति प्रस्तुत की । वनस्पतियाँ—जलचर – थलचर, पुनः बंदर – बनमानुष—मनुष्य का विकास डार्विन की देन है । स्तर के भीतर अनेक स्तर, चेहरे के अन्दर चेहरे, व्यक्तित्व की विभिन्न-ताएँ, ऐसे अन्तर्विरोध तथा सन्देहास्पद तथ्य भी सामने आये ।

प्रयोगवादी कविता की प्रेरक प्रवृत्तियों के रूप में हिन्दी जगत की कतिपय परिस्थितियों का भी उल्लेख किया जा सकता है । 'युगान्त' के माध्यम से छायावाद की समाप्ति को स्वीकार करने वाले 'पन्त' ने 'रूपाभ' के द्वारा प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि निर्मित की । प्रगतिशील लेखक संघ की राजनीतिक एवं साम्यवादी प्रतिबद्धता भी कविता में स्थूल के स्थान पर पुनः चिन्तनपरक सूक्ष्म को जन्म देने लगी । छाया-वादोत्तर काल में ही आदर्श के स्थान पर यथार्थ के प्रति बढ़ते आग्रह के कारण नरेन्द्र शर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, बच्चन, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि कृतिकारों ने यथार्थपरक शैली अपनायी । रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, त्रिलोचन शास्त्री आदि की कविता में व्यक्त यथार्थ-बोध समकालीन कविता की पृष्ठभूमि निर्मित करने में सहायक बना ।

आत्मसंघर्ष की कविता एवं उसकी काव्य प्रवृत्तियाँ

आलोच्यकालीन कविता की सांस्कृतिक प्रक्रिया में समाजवादी यथार्थ का अतिवादी रूप विशेष उल्लेखनीय है । १९३५ ई० के आसपास हिन्दी काव्य में सर्वाधिक परिवर्तनकारी घटनायें घटीं । छायावाद की उत्कृष्टतम कृति 'कामायनी' के प्रकाशन के साथ ही पन्त की रचना युगान्त का प्रकाशन इसी वर्ष हुआ । प्रगतिशील लेखक संघ की लन्दन में स्थापना का यही काल है । क्रान्तिद्रष्टा निराला की कविता मे 'बादल राग', 'वह तोड़ती पत्थर', 'बस एक बार और नाच तू श्यामा' में उनकी विद्रोह की प्रवृत्ति पहले ही परिलक्षित होती है जो अतियथार्थ की ओर झुकाव का आभास देती है । मृगमरीचिका की इन्द्रधनुषी किरण के मद्धिम प्रकाश को छोड़कर कवि अँधेरा-घुप्प-अँधेरा पसन्द करने लगा । विदेशी शासन, पूंजीवाद, निर्धनता का अपकार मिटाने के लिए आई हुई भावना बौद्धिकता से प्रभावित होकर अति यथार्थवाद के रूप में कविता में देखी गई ।

तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध / तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र / तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र / तेरे ह्रास में भी रोग कृमि है उग्र / तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध तुझ पर व्यग्र। ——(तार-सप्तक मुक्तिबोध)

'अपने मस्तिष्क के पीछे अकेले में / गहरे अकेले में / न कह सके जाने वाले अनुभवों के ढेर' को कविता में स्थान देने की छटपटाहट अतियथार्थ की चेतना है 'तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ' कहकर मुक्तिबोध ने महाजनी सभ्यता के अंत का आह्वान किया। कवि का यह अतियथार्थवादी स्वर मार्क्सवादी प्रक्रिया का प्रतिक्रियात्मक स्वर है। परतंत्र भारत के निर्धनों की टीस, करुणा और संत्रास का स्वर तनाव एवं प्रतिक्रिया से मिलकर कविता में ध्वनित हुआ—"जो है तेरा आधार-स्तम्भ जिसका विनाश दो दिन ही की / है बात, यातना न जिसकी विश्व को दिया है नया बोध। आज के मंदिर सुख मे रंगीनी में भूली ओ अलका! कुछ तुझे ध्यान भी है कल का / शोषित दल के उठते बल का ?" /

— (तारसप्तक-भारतभूषण)

समसामयिक कविता की अतियथार्थ की अनुभूति छायावाद के उत्तरार्द्ध में ही देखी जाने लगी थी। महादेवी ने भी स्वीकार किया है कि "नये युग के यथार्थबोध को वहन करने में सूक्ष्म भाव असमर्थ रहे।" पन्त और निराला की कविता का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। १९३६ से १९४३ ई० के बीच ऐसी अनेक कवितायें लिखी गई जिन पर विश्व की प्रमुख घटनाओं की छाया देखी जाती है।[१] प्रगतिवादी कविता के यथार्थ की अगली कड़ी के रूप में आया अति यथार्थ जर्मनी के तानाशाह हिटलर द्वारा आस्ट्रिया पर अधिकार तथा म्यूनिख पैक्ट का प्रभाव कवियो की मानसिकता पर पड़ा। रूस जर्मनी आदि अधिनायकवादी शक्तियों ने मिलकर पोलैण्ड का बँटवारा किया। मुसोलिनी की फासिस्टवादी नीति के कारण इथोपिया का अपहरण किया गया जो नवयुवक कवियों के मन में क्रान्ति का कारण बना। मुक्तिबोध, अज्ञेय, प्रभाकर माचवे की कई कविताओं में इन घटनाओं की प्रतिक्रिया देखी जा सकती है—वस्तुतः छायावादी 'नैतिक विजन' का जादू टूटने पर हृदय और बुद्धि के अलगाव के रूप में मन का अन्तर्द्वन्द्व कविता में आया।

भीतर जो शून्य है / उसका एक जबड़ा है, /
जबड़े में मांस काट खाने के दाँत हैं; /
उनको खा जायेंगे, / तुमको खा जायेंगे। /
भीतर का आदतन क्रोधी अभाव वह / हमारा स्वभाव है

× × ×

(चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध, पृ० सं० १५९)

के नये सिंह इतिहास की आवृत्ति।

यूरोप में फासिज्म का बढ़ता हुआ प्रभाव, स्पेन का गृह-युद्ध, भारत में चलने वाला स्वतन्त्रता आन्दोलन और उस पर अंग्रेजों की दमन नीति का कुचक्र स्वतन्त्रता की चाह वाले भारतवासियों—विशेषकर बुद्धिजीवियों के मन में वितृष्णा का कारण बना। विश्व के रंगमंच पर घटने वाली इन घटनाओं ने हिन्दी कविता पर सीधे प्रभाव डाला।

सन् १९३० ई० के आसपास कांग्रेस में ही अन्दर-अन्दर दो विचारधारायें पनपने लगी थीं। महात्मा गांधी के समर्थन करने पर भी सुभाषचन्द्र बोस के मुकाबले कांग्रेस अध्यक्ष पद के चुनाव में पट्टाभिसीतारमैय्या की हार इसका प्रमुख उदाहरण है। देश के नवयुवकों में विदेशी शासन के विरुद्ध कुछ कर गुजरने की लालसा से ही सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज बनायी। स्वाधीनता की उत्कट लालसा कवियों के अधैर्य अकुलाहट, संत्रास तथा घुटन का कारण बनी। द्वितीय विश्व युद्ध के समय का भीषण अर्थसंकट, मँहगाई तथा बंगाल के अकाल ने रहा-सहा धैर्य भी तोड़ना शुरू कर दिया। अब तक कल्पना में जीने वाला पलायनवादी कवि नहीं अपितु समस्याओं को संघर्ष की तरह झेलकर जीवन जीने वाला बुद्धिवादी रचनाकार जन्म ले चुका था। भगतसिंह, खुदीराम बोस, वीरेन्द्रनाथ लाहड़ी, राजगुरु, रामप्रसाद बिस्मिल आदि को दी जाने वाली फांसी की सजायें और यातनायें, जालियाँ वाले बाग का भीषण नरसंहार, लाला लाजपत राय पर लाठियों की चोट और कालान्तर मे उनकी मृत्यु जैसी घटनायें हॉरर, दहशत, भय, कुण्ठा, किंकर्तव्य विमूढ़ता का रूप लेकर कविता में आईं।[१]

> निजत्व माफ है बेचैन / क्या करूँ, किससे कहूँ,
> कहाँ जाऊँ, दिल्ली या उज्जैन ?
>
> चाँ० मु० टेढ़ा है—मुक्तिबोध, २६१

अतियथार्थ का दूसरा रूप मुखर विद्रोह का चुनौती भरा स्वर है। नया कवि निश्चित सीमा तक द्वन्द्व झेलने के बाद शोषक, विरोधी, आततायी को चुनौती देता है—

> ठहर ! ठहर ! आततायी ! जरा सुन ले
> मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा
> रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय,
> मेरी अवहेलना की टक्कर सहार ले—
>
> × × ×
>
> मेरे दृढ़ पौरुष की एक चोट सह ले।[२]

---

१ चांद का मुंह टेढ़ा है (अँधेर में)—मुक्तिबोध

२ तारसप्तक य (जनाह्वान पृ० स० २८०।

भारतीय समाज और राष्ट्र की इन घटनाओं ने जन-सामान्य में 'मैं' से 'हम' होने की धारणा भर दी। विश्व के विभिन्न देशों की घटनाओं ने मार्क्सवादी रंग गाढा किया जो मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे की कविताओं में देखा जाता है।

हे रहस्यमय ध्वंस-महाप्रभु, जो जीवन के तेज सनातन—
तेरे अग्निकणों से जीवन तीक्ष्ण बाण से नूतन सर्जन
हम घुटने पर नाश देवता बैठ तुझे करते हैं वन्दन।[1]

सृजन के क्षण में अन्तर्मन की अपूर्णताएँ ईर्ष्याएँ घुल-धुलकर आत्मसत्य का रूप लेती हैं। पुरातन पर नूतन की विजय 'महामरण' के बाद 'महाजन्म' के उदय सदृश है। आँसू और चिन्ता के क्षण काव्य-व्यक्तित्व का अंग बनकर कुरूपता, वीभत्सता, नग्नता, मलिनता को उजाकर करने लगे।[2] अभंगसहास तथा घृणित आनन्द सदृश उक्तियाँ कविता में आईं। चिर-विद्रूप, मरणके-'उपासक' आत्मान्तक पिशाच को रचनाकार संसार का व्रण मानता है। यह सभी विशेषण अति यथार्थवाद की देन हैं।

व्यक्तिवादी मनोभूमि का विकास

आत्मसंघर्ष की व्यक्तिवादी चेतना आलोच्य कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है। विषम परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ बीसवीं शताब्दी का लघु मानव जिन्दगी के हर मोर्चे पर अपने को निढाल, निष्कवच, निस्त्राण पाता है किन्तु इस जन्म के पूर्व से ही थोपे गये युद्ध को उसे लड़ना है। नयी कविता का लघु-मानव नगण्य अथवा अस्तित्वविहीन नहीं है। सार्त्र की अस्तित्ववादी विचारधारा का प्रभाव समकालीन कविता पर देखा जा सकता है। जीवन की उलझनें, मोड़, अँधेरा, कदम-कदम पर पड़ने वाले चौराहे, सुरंग, तंग घाटी, दो पहाड़ियों के बीच की दूरी तय करने के लिए रस्सी का सहारा व्यक्ति अकेले खोजता है। गहन अँधेरा, ताप की जलन, संत्रास, घुटन, अवसाद की अभिव्यंजना के मूल में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। अपने आत्मबल संबल तथा अस्तित्व पर आज के लघुमानव को विश्वास है। विश्व-वेदना में अपने को सम्मिलित करके वह अपनी उलझनों को कविता के माध्यम से चित्रित करना चाहता है। अपने क्रुद्ध वीर्य की पुकार को सुनाने में किसी युग का कवि इतना तत्पर नहीं देखा जाता है। परिस्थितियों के प्रभाव से कभी यायावर बनकर भ्रमण करता है, कभी अंतर्संघर्ष के कारण निराश होकर भी "आत्महत्या के विरुद्ध" आवाज उठाता है तो कभी 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये' को देखकर अन्तर्मग्नस्तता का शिकार होता है। कविता की केन्द्रापगामिता मन की 'केन्द्रापगामिता' हो जाती है। 'गुधन और

1. वही—मुक्तिबोध—नाशदेवता (द्वि० सं०) पृ० सं० ६२।
2. वही—मुक्तिबोध सूखन क्षण (द्वि० ६४ ६

उन्भाव की कविता के माध्यम से अहं एवं अत्यहं से प्रेरित आज के 'काव्यनायक' ने अपनी मानसिक ग्रंथियों को प्रकट करना चाहा है। वह रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय अवहेलना का अनुभव व्यक्तिगत स्तर पर करता है। दिक् काल प्रहर की चाल को भी मोड़ने की कामना तथा 'मैं' से 'हम' बनने की लालसा व्यक्तिवादी-अहंवादी चेतना की रश्मि है। अपने पूर्ववर्ती प्रगतिवादियों के यथार्थबोध को अति-यथार्थ की सीमा में ग्रहण करने वाला लघुमानव-औसत आदमी अपने को अकेले ही दुनिया के संग्राम में उतारता है।

मैं अपने से ही सम्मोहित, मन मेरा डूबा निज में ही।
मेरा ज्ञान उठा निज में से, मार्ग निकाला अपने से ही॥
मैं अपने में ही जब खोया, तो अपने से ही कुछ पाया।
निज का उदासीन विश्लेषण आँखों में आँसू भर लाया॥[१]

जग से द्रोही होने की अपेक्षा कवि अपने से ही विद्रोही हो गया है। उसके अन्तर से फूटा रक्त-स्रोत फव्वारा बनकर उसे सुख देता है। अपने पर अति-विश्वास के कारण कवि की आत्मग्रस्तता घनीभूत होती जाती है। आत्म-वंचना, जीवन का दर्द झेलने की उद्दाम लालसा, प्रायश्चित्त, क्षोभ, बाहर से जेन्टिलमैन बने रहने की विवशता ने रचनाकार को दुहरा व्यक्तित्व ओढ़ने, दुहरा जीवन जीने को विवश किया है। चेहरे के अन्दर दूसरा चेहरा, तथा व्यक्तित्व का खोखलापन लिए टूट-टूटकर खण्डित व्यक्तित्व वाला कवि अपनी मृत्यु देखता और झेलने की हिम्मत रखता है। निराशा, अन्तर्द्वन्द्व, मनोभग्नता तथा घुटन की अभिव्यक्ति के लिए समकालीन कविता का मिजाज बदल गया है।

जीवन की समग्रता में जीने की दुर्दम लालसा के कारण वह सोचता है,—"इस दुर्भेद्य अँधेरे के उस पार मिलेगा मन का आलम, रुक न जाय सुधि के बाँधो से प्राणों की यमुना का संगम।"[२] अतः वह निस्सीम डगर पर अकेले चलने में विश्वास करता है। उसने मुसाफिरी का जामा पहन रखा है। वीरान, श्मशान और बरसों मकान में रहकर भी उसका विश्वास सत्य से अधिक स्वप्न पर है। यद्यपि यह 'फैण्टेसी' की अनुभूति लगती है—'आदि से अन्त तक / अन्त से अनन्त तक / × × × जीवन के पर्तों की कई तहें खोलकर / पहलदार सत्यों का छाया तन इकहरा था / जीवन का मूल मंत्र सपनों पर ठहरा था ..., ...।[३] जीवन के कार्निवाल में बहुरूपिये की तरह हजारों रूप में प्रस्तुत होने की कवि की कला आज की विवशता है। कविता के

१. तारसप्तक—मुक्तिबोध (अन्तर्दर्शन), पृ० ६७।
२. तारसप्तक—नेमिचन्द्र जैन (आगे गहन अँधेरा है', पृ० सं० २२।
३. तीसरा सप्तक—कुँवर नारायण वक्तव्य, पृ० सं० १५।

हर मनोरंजक रूप में किसी न किसी सतह पर एक अनुभूत व्याख्या है और जिसके हर रूप के पीछे उसका अपना एक गम्भीर और असली व्यक्तित्व है। आज की आत्म-संघर्ष की कविता में कवि का सजग सचेत व्यक्तित्व सत्य की संवेदना की भट्ठी में अपने को जलाकर भी उस गहनतम अनुभूति को अभिव्यक्ति का रूप देता है। जीवन की अनन्त यात्रा की तरह नये कवि का आत्म-संघर्ष भी अनन्त है।

तनाव की अन्तिम स्थिति में टूटता हुआ कवि समकालीन परिवेश से जुड़ने का अनुभव करता है। क्षणभंगुर जीवन की अस्मिता में विश्वास करने के कारण अपनों को भविष्य के हाथों में सौंपकर भी वह पार्थिव जीवन के आकर्षण से आश्वस्त है। हार, निराशा, कुण्ठा, अंतर्संघर्ष की मनःस्थिति में वह कभी 'प्यार का पल्ला' पकड़ता है तो कभी 'गुनाह का गीत' गाता है। नचिकेता की समस्या से जूझता हुआ आज का कवि मृत्यु का रहस्य जानता है। पथ की खोज के लिए कुंवर नारायण ने आत्मजयी बनकर जो उद्भावना की उसमें 'नयी प्रतिमा' वाला नया रूप झाँकता है। 'अंधायुग' के अश्वत्थामा की तरह समकालीन सर्जना का नायक 'गन्दा कफ़' बासी थूक जैसा मुर्दे के पंजर में फँसा हुआ सूखता जा रहा है। आज के सामान्य व्यक्ति की तरह नयी कविता का काव्य नायक 'बध—केवल बध' को ही मनोग्रंथि की तरह स्वीकार करता है। 'आधुनिक हिन्दी कविता में आत्मरति मृत्यु प्रेम और संकेतों से स्वप्न पूर्ति करने की आदत का कारण घोर अनिश्चय है।[१]

३ – यौन वर्जनाओं की अभिव्यक्ति तथा सौन्दर्य-बोध का नया रूप— प्रयोगवादी काव्यधारा के उन्नायक अज्ञेय की दृष्टि में आज का सामान्य मानव यौनवर्जनाओं का पुञ्ज है। सामाजिक रूढ़ि की लम्बी परम्परा संस्कारों के माध्यम से जीवन का एक पक्ष निर्मित करती है और (आधुनिक जीवन का) दूसरा पक्ष परिस्थितियों के परिवर्तन से असाधारण गति से निर्मित होता चलता है। यही कारण है कि प्रथम पक्ष समकालीन कविता में दुर्बल होता चला गया है तथा आज के मानव का मन यौन कल्पनाओं से आक्रान्त हुआ है।[२] आज के मानव की सौन्दर्य-चेतना, सोचने की दिशा एवं कलात्मक बोध दमित वासनाओं से गम्भीर रूप से प्रभावित है। 'आत्मसंघर्ष की कविता' की प्रतिक्रियात्मक पृष्ठभूमि निर्मित करने वाले संवेग काव्य-व्यक्तित्व को एकांगी, विद्रोही, एकान्तप्रिय, तथा असंयत बनाते हैं। फ्रायड एडलर, युङ्ग आदि मनोविश्लेषणवादी विचारकों की मान्यताओं के अनुसार समकालीन कविता अवचेतन की अभिव्यक्ति है। हीन ग्रंथि का प्रसार-प्रभाव अथवा आत्माभिव्यक्ति की शैली सर्वमान्य काव्य-प्रवृत्ति के रूप में कविता में अपनायी गयी है। व्यक्तिवादी अहं से

---

१. तारसप्तक —(वक्तव्य)—प्रभाकर माचवे।

२. तारसप्तक —(भूमिका) —अज्ञेय।

व्यापक होकर सामाजिक अथवा वर्गगत चेतना के रूप में भी यौन कुण्ठा का परिवर्तित रूप आज की कविता में आया है।

मार्क्सवादी चेतना से पृष्ठभूमि ग्रहण कर, प्रयोगवादी नयी कविता ने अति-यथार्थवाद एवं मनोविश्लेषणवाद की सम्पृक्ति से नया कला-विधान तथा नये युग की नयी प्रतिमा का रूप प्राप्त किया है। प्रतीकवाद के पुरस्कर्ता मेलार्मे तथा बादलेयर की मान्यताओं के अनुसार कविता जीवनानुभूतियों से कही गयी किन्तु हिन्दी प्रयोग-वादी कविता की प्रवृत्ति इससे भिन्न है। असंगत निरर्थक, असम्बद्ध एवं नग्न कथन जीवनानुभूति रूप में समकालीन कविता में आये हैं। 'सुर्रियलिस्ट' कलाकार जिस प्रकार बेतरतीब वस्तुओं रंगों और रेखाओं द्वारा अपने सौन्दर्यबोध को प्रकट करता है उसी प्रकार प्रयोगवादी कवि नग्नता प्रदर्शन को अभिव्यक्ति की ईमानदारी कहता है। सपाट बयानी उसी का एक अंग है—

रवि का प्रकाश / शशि का विकास—पुँसत्व हीन नर का विलास।
ये सूर्य-चन्द्र / नभ वक्ष लुब्ध, /
वे अमित वासना के शिकार /
वे गगनदीन / वे रसिक रुग्ण, पुंसत्वहीन-वेश्या विहार।[१]

अभिव्यंजनावादी क्रोचे के सापेक्ष्य सौन्दर्य बोध को काण्ट ने पूर्णतः मनःस्थिति से जोड़ा है। नया कवि काण्ट की विचारधारा के निकट है इसीलिए उसे असुन्दर भी सुन्दर लगता है। क्रोचे ने वस्तु की सुन्दरता और असुन्दरता का भेद समाप्त किया, काण्ट ने उसे मानसिक अनुभूति से जोड़ा तथा नया कवि उसे कविता का विषय बनाता है।

समकालीन कविता का यौनवर्जनायुक्त अतियथार्थ केवल रंग-रूप-रेखा विहीन असंयत एवं असम्बद्ध प्रतीकों द्वारा नहीं अपितु छायावादी शैली के मांसल बिम्बों द्वारा भी अभिव्यक्ति पाता है। गिरिजा कुमार माथुर, कीर्ति चौधरी आदि की कविताओं मे आभिजात्य सौन्दर्य तथा रोमानियत के चित्रों में भी यौनवर्जना की प्रतिक्रिया तथा संवेगों की परिणित देखी जाती है। यौन कुण्ठा तथा दमितवासना की अभिव्यक्ति की स्वस्थ एवं संयत प्रवृत्ति में नयी कविता का नयापन विद्यमान है—

तुम्हारी देह कनक चम्पे की कली है।
(अज्ञेय)

× × ×

किसी के होठ से पाटल अगर मैंने कभी चूमे।
किसी के नयन के बादल अगर मैंने कभी चूमे। (भारती)

१—तार सप्तक, (मुक्तिबोध), पृ० २३।

आज का कवि 'जूही की कली' के रचनाकार की तरह प्रणय सम्बन्ध की गोपनीयता में विश्वास नहीं करता। वह रश्मि-नीरजा, ग्रंथि-गुञ्जन, आँसू-लहर आदि में निरूपित आकर्षण-समर्पण की तीव्र अनुभूति को वक्रतायुक्त, ध्वन्यात्मक कथन द्वारा नहीं सीधे-सीधे शब्दों में (भले ही उनमें नया अर्थ भरना उसका अभिप्राय हो) कहना चाहता है। पाश्चात्य सौन्दर्यबोध का अनुकरण तथा अशरीरी अभिव्यंजना शैली का अनुकरण भी समकालीन हिन्दी कविता के नयेपन से सम्बन्धित है। स्वच्छन्दतावादी समीक्षकों तथा परम्परावादी आचार्यों ने प्रयोगवाद और नयी कविता की यौनवर्जना को मानसिक अस्वस्थता का परिणाम बताया है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ० शिव प्रसाद सिंह एवं डॉ० शम्भुनाथ सिंह ने प्रयोग के बाहुल्य की तरह नये सौन्दर्य-बोध के प्रति भी अनुदारता अपनायी है।

मुक्तिबोध का रचनाकार नये सौन्दर्यबोध की अतियथार्थवादी शैली में रूपाकार ग्रहण करता देखा जाता है। यौन कुण्ठा की अभिव्यक्ति तथा मानसिक अहं के के बद्धमूल संस्कार के साथ मानवतावादी दृष्टि से व्युत्पन्न मुक्तिबोध अपना निजत्व पृथक रूप में प्रकट करता है—

काठ के पैर / ठूँठ सा तन / गाँठ सा कठिन गोल चेहरा / लम्बी उदास लकड़ी / डाल से हाथ क्षीण / वह हाथ फैल लम्बायमान / दूरस्थ हथेली पर अजीब घोंसला / पेड़ में एक मानवीय रूप में एक ठूँठ।[1]

ठेठ भाषा, सपाट शैली किन्तु अटपटे कथन में आक्रान्त मानव का—भुक्त-भोगी मानव का चित्र मुक्तिबोध के सौन्दर्यबोध का परिचायक है। शमशेर बहादुर सिंह के शब्दों में—'मुक्तिबोध की शक्तिशाली मानवतावादी रोमानियत में अमूर्त का सविस्तार मूर्तीकरण समाजवाद के धरातल पर प्रतिष्ठित किये जाने के कारण एक ऐसी प्रखर स्पष्टता धारण कर लेता है जिसमें भयानक से भयानक विद्रूप से विद्रूप (और कोमल से कोमल भी) फैण्टेसी को हम अपनी साँस में महसूस कर सकते हैं।'[2]

नयी कविता का सौन्दर्यबोध मुख्य रूप से अन्तर्संघर्ष से उत्पन्न हुआ है। नये सौन्दर्यबोध की मार्क्सवादी चेतना में खून का दाग लालिमा रूप में देखा गया है। हथकड़ी, मशाल, चिनगारी को भी मुक्तिबोध ने कविता में स्थान दिया है। बेचैन भावों की अजब तिरछी लकीरों से कटा चेहरा / × × × समूचे जिस्म पर लत्तर झलकते लाल-लम्बे दाग / बहते खून के / जैसे चित्र में /[3] उपर्युक्त काव्य-चित्र नयी

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध।
२. चाँद का मुँह टेढ़ा है—(भूमिका)—शमशेर बहादुर सिंह।
३. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध।

कविता के नये सौन्दर्यबोध का परिचायक है। विद्रूपता आज की हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में अपनायी गई है जिसे अनुकरण रूप में सभी नये कवियों ने प्रयुक्त किया। मुक्तिबोध की फैन्टेसी साठोत्तरी पीढ़ी के अनेक रचनाकारों के लिए मार्गदर्शिका बनी। नया बिम्ब 'कमजोरियों का स्याह जिरह बख्तर पहने / खूँखार सच्चाई की आँखे निकाले हुए दिखाई पड़ता है।' कवि ने इसे संकल्प-धर्मा चेतना का रक्त-प्लावित स्वर कहा है।

प्रयोगवादी कविता का प्रयोग नयी कविता का नयापन, नकेनवाद का प्रपद्य का स्वर तथा युयुत्सावादी कविता, साठोत्तरी कविता, बीटनिक कविता का असंतोष अभिनव सौन्दर्य दृष्टि का परिणाम है। अज्ञेय, माथुर, भारती, शकुन्तला माथुर की रोमानी संवेदना कुण्ठा के रूप में समकालीन कविता में देखी गई। दूसरा वर्ग मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, लक्ष्मी कान्त, सर्वेश्वर, शमशेर आदि रचनाकारों का है जिनके नग्न, विद्रूप, बेलौस चित्र सपाटबयानी के दस्तावेज बने हैं। त्रासद जीवन की समकालीन विसंगतियों से उत्पन्न अवसाद, हताशा तथा अन्तर्संघर्ष की मानसिक यातना कविता—फैन्टेसी में त्रासद प्रभाव लेकर आयी है। मौत की जीभ, काल की भुजा, निराशा का घनान्धकार ऐसे प्रयोग रूप और कलावाद द्वारा भी व्याख्यायित होते हैं। टी० एस० इलियट की वैचारिक दृष्टि से अनुप्राणित स्वातंत्र्योत्तर युग का रचनाकार भाषा-शैली-शिल्प विधि में भी प्रकट हुआ है।

(४) अनुभूति की जटिलता तथा नये मूल्यों की स्थापना—युग की हुंकार को निष्फल न मानकर उसकी माँगों पर चलना रचनाकार की विवशता है। युग के अनुरूप बदलते जीवन-मूल्य सर्जना में बाजारू अभिव्यक्ति के विपरीत स्वस्थ रूप में प्रकट होते हैं। हिन्दी कविता में 'आधुनिकता' की प्रवृत्ति भारतेन्दु युग से ही दिखाई पड़ने लगती है किन्तु लघुमानव की प्रतिष्ठा, बौद्धिकता का विकास, वैज्ञानिक दृष्टि का उदय आज की आधुनिकता है। राष्ट्र; समाज एवं व्यक्ति की समस्या कविता में आने से पूर्व मानसिक संवेगों के रूप में रचनाकार को आन्दोलित करती हैं। नयापन अथवा आधुनिकता की प्रवृत्ति से ही समष्टि के स्थान पर व्यष्टि को स्थान मिला। रचनाकार द्वारा समस्याओं से किया जाने वाला संघर्ष समकालीन कविता में जटिलता का कारण बना। असहज युग की असहज समस्या ने नये मनुष्य को एक ओर निरस्त्र, निष्कवच एवं असहाय किया तो दूसरी ओर उसमें इतना आत्म-विश्वास जागृत किया कि उसे अपने अस्तित्व में आस्था जगी। अनास्था में आस्था का स्वर अनुभूति के स्तर पर जटिल अटपटा तथा विसंगतिमुक्त लगता है। नग्नता और

को अब फैशन के रूप में भी मया है। विद्रूपता, निगेटिव

मे प्रकट होता है । भयानक-खौफनाक वातावरण, हॉरर, संत्रास की स्थितियाँ अनुभूति की जटिलता और तनाव का परिचय कराती हैं । झुलसी आत्मा, झुर्रियों के चित्र, खून के दाग, कालापन, भयानक जङ्गल, घुमावदार सीढ़ियाँ आदि का चित्रण नयी कविता में हुआ है । प्रतीकों की शब्दावली जटिलतर जीवन के निरूपण के लिए कवियों द्वारा अपनायी गई है ।

'गुथन उलझाव के नक्शे', विकृताकृतिबिम्बा कविताओं का उत्स, लघुमानव की महत् से जुड़ने वाली प्रक्रिया है । आत्म-चेतस और विश्व-चेतस के मिलने की प्रक्रिया वाह्य एवं आन्तरिक समस्याओं का एकाकार होना है । आशा-निराशा, जीवन-मरण, अस्मिता-अनस्मिता के दो छोर हैं, जिनके बीच एक रस्सी की तनावयुक्त स्थिति दोनों छोरों को मिलाती है । इसी रस्सी के सहारे कला का प्रदर्शन करता हुआ रचनाकार 'अँधेरे में', 'असाध्य वीणा', 'आत्म हत्या के विरुद्ध', 'आत्मजयी' तथा 'अंधा युग' की सर्जना करता है । 'अँधेरे औ उजाले के भयानक द्वन्द्व की सारी व्यथा' झेलकर 'भयंकर बात' मुंह से निकालने वाला कवि भले इसे 'स्वयं प्रसूत' कहता हो किन्तु इसे कहने में भी अंतड़ियों में बल पड़ने की सम्भावना रहती है ।

(५) **समकालीन कविता में मानव भविष्य के प्रति आस्था**—सार्त्र के अस्तित्ववादी दर्शन तथा कामु, काफ्का, कीर्केगार्द की विचारधाराओं के प्रभाव से कविता में नवीनता देखी जाती है । 'हम नदी के दीप हैं धारा नहीं हैं' की घोषणा अस्तित्व के प्रति आस्था की परिचायक है । 'बात बोलेगी हम नहीं' का रचनाकार गम्भीरतम स्थिति में भी अपनी उपस्थिति का अनुभव करता है । आत्मजयी का नचिकेता, चक्रव्यूह का अभिमन्यु, अंधायुग का अश्वत्थामा, एक कंठ विषपायी का सर्वहुत, संशय की एक रात के राम मानवीय आस्था के प्रतीक हैं ।

प्रतीकों और बिम्बों के / असंवृत रूप में भी रह / हमारी जिन्दगी है यह / जहाँ पर धूल के पूरे गरम फैलाव / पर पसरी लहरती………।[१]

जटिलताओं का अनुभव, संघर्षों में हार, टूटन तथा निराशा की गहन-गुफाओं में आम आदमी अपने को अकेला अनुभव करता है । समष्टि की चेतना के विपरीत व्यष्टि की चेतना, बौद्धिकता के प्रभाव से क्षणवाद एवं अणुवाद एकाकी मानव के प्रति असीम आस्था का परिणाम है । एक काली रात के घुप अँधेरे, सुनसान जंगल में घूमता हुआ मुक्तिबोध का काव्य नायक भयानक परिस्थितियों में गोली, आर्टीलरी, फ्लैग मार्च, लम्बे जुलूस में भी अपना पृथक अस्तित्व रखता है ।

'मरते मनुष्य के बारे में क्या करूँ…क्या करूँ मरते मनुष्य का' × × × एक बार जान-बूझकर चीखना होगा जिन्दा रहने के लिए × × × (रघुवीर

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है,—मुक्तिबोध, पृ० १५२ ।

सहाय) 'यह समाज मर रहा है इसका मरना पहचानो मंत्री' X X x जैसे कथन आत्मसंघर्ष की कविता में आते हैं। समाज की दुश्चिन्ता, तनाव, भाई-भतीजावाद तथा राजनीतिक षड्यंत्र के परिणामस्वरूप 'हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं' हर क्षण अँधियारा गहरा होता जाता है किन्तु 'इस दुर्भेद्य अँधेरे के उस पार मन का आलम मिलेगा' ऐसा नये कवि का विश्वास है। 'बृहत्तर जिज्ञासा', 'सार्थक जीना' खामोशी की अपनी जबान' कवि के अन्तर्द्वन्द्व का परिचय कराती हैं। मुक्तिबोध का कहना है—'मानसिक द्वन्द्व मेरे व्यक्तित्व में बद्धमूल है। यह मैं निकट से अनुभव करता चला आ रहा हूँ कि जिस भी क्षेत्र में हूँ वह स्वयं अपूर्ण है और उसका ठीक-ठीक प्रकटीकरण भी नहीं हो रहा है। फलतः गुप्त अशान्ति मन के अन्दर घर किये रहती है।'[१]

मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, धूमिल, राजकमल चौधरी, श्रीकान्त वर्मा आदि की कविताओं में हत्या, हत्यारा, रक्त का छींटा, फाँसी का फन्दा, बन्दूक, गोली आदि के चित्रण तनाव व दहशत का परिचय देते हैं—

इस उस जमाने के धँसानों में से
उमड़ते हैं अँधेरे के मेघ
मैं एक थमा हुआ मात्र आवेग
रुका हुआ एक जबर्दस्त कार्यक्रम
मैं एक स्थगित हुआ अगला अध्याय /[२]

आवेग-त्वरित काल-यात्रा के ये पदचिह्न न केवल मुक्तिबोध अपितु सम्पूर्ण 'नयी-कविता' के पदचिह्न बनकर जिज्ञासु मन के लिये प्रकाश रेखा बनाते हैं। छायावाद युग के उत्तरार्द्ध में 'रूपाभ' के प्रकाशन काल से आरम्भ नवीनता प्रगतिवाद युग में यथार्थ का सम्बल पाकर मानवतावाद से युक्त हुई। नये जीवन संदर्भ, वैज्ञानिक दृष्टि, तर्क-वितर्क की बौद्धिकता एवं गहन मानसिक संघर्षों का प्रतिनिधित्व करने वाली समीक्ष्य कविता में विविधताओं का होना स्वाभाविक है। युगीन विडम्बनाओं एवं विसंगतियों को झेलकर भी बाहर से संयत दिखाई पड़ने वाले आम-आदमी के मन की तरह समकालीन कविता में भी प्रयोगवाद, नकेनवाद, नयी कविता, साठोत्तरी कविता, अकविता सदृश कई शिल्पगत आन्दोलन आये हैं। आत्मसंघर्ष की कविता आज की परिस्थितियों पर प्रकाश डालती तथा मौन भंग करती है। रीति-कालीन कविता से छायावाद युग तक जड़ीभूत मान्यतायें समीक्ष्य काल में आकर टूट गईं।

१—तार सप्तक—वक्तव्य—मुक्तिबोध
२—चाँद का मुँह टेढ़ा है'''मुक्तिबोध

'स्वातंत्र्योत्तर युग की कविता, साम्प्रतिक कविता, समकालीन कविता आदि नये नामों से जानी जाने वाली यह कविता समस्त शास्त्रीय मान्यताओं के लिए एक चुनौती बनकर आयी है। रस, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति, औचित्य आदि सम्प्रदायों के अतिरिक्त पश्चिम के विभिन्न शास्त्रीय मत भी अब इस कविता के लिये अपूर्ण हो चुके हैं। स्वच्छन्दतावाद, मार्क्सवाद, रूप एवं कलावाद की मिली-जुली प्रक्रिया समीक्ष्य कविता में देखी जाती है। 'मुक्तिबोध' की काव्यचेतना के उद्‌गम और विकास से इन प्रवृत्तियों का सीधा सम्बन्ध है। जब-जब कविता के मूल्यांकन का प्रश्न उठाया जाता है तब-तब इन्हीं प्रवृत्तियों पर आधारित प्रतिमानों के सहारे काव्य-भाषा, बिम्ब-विधान, सपाटबयानी आदि को सराहा-स्वीकारा जाता है। एक लम्बे समय तक युगीन समस्याओं के साथ चलने के कारण आज की कविता यथार्थ से युक्त तथा नये मूल्यों से परिचालित है

२. मुक्तिबोध का काव्य-व्यक्तित्व

[रक्तालोक-स्नात पुरुष एक, रहस्य साक्षात्]

गहरी आंतरिक सम्पन्नताओं का
धवल कैलाश
सामान्यीकरण का वह असामान्यीकरण
अनुभूत सत्यों का समन्वित संगठित हिमशिखर
उसके शिला प्रस्तर से
सहस्रों झर रहे रमणीय
शत निष्कर्ष
शत निर्झर।

भूरी-भूरी खाक धूल

'स्वातंत्र्योत्तर युग की कविता, साम्प्रतिक कविता, समकालीन कविता आदि नये नामों से जानी जाने वाली यह कविता समस्त शास्त्रीय मान्यताओं के लिए एक चुनौती बनकर आयी है। रस, ध्वनि, अलंकार, वक्रोक्ति, औचित्य आदि सम्प्रदायों के अतिरिक्त पश्चिम के विभिन्न शास्त्रीय मत भी अब इस कविता के लिये अपूर्ण हो चुके हैं। स्वच्छन्दतावाद, मार्क्सवाद, रूप एवं कलावाद की मिली-जुली प्रक्रिया समीक्ष्य कविता में देखी जाती है। 'मुक्तिबोध' की काव्यचेतना के उद्गम और विकास से इन प्रवृत्तियों का सीधा सम्बन्ध है। जब-जब कविता के मूल्यांकन का प्रश्न उठाया जाता है तब-तब इन्हीं प्रवृत्तियों पर आधारित प्रतिमानों के सहारे काव्य-भाषा, बिम्ब-विधान, सपाटबयानी आदि को सराहा-स्वीकारा जाता है। एक लम्बे समय तक युगीन समस्याओं के साथ चलने के कारण आज की कविता यथार्थ से युक्त तथा नये मूल्यों से परिचालित है

---

२. मुक्तिबोध का काव्य-व्यक्तित्व

[रक्तालोक-स्नात पुरुष एक, रहस्य साक्षात्]

गहरी आंतरिक सम्भावनाओं का

धवल कैलाश

सामान्यीकरण का वह [illegible]

अनुभूत सत्यों का समन्वित [illegible]

उसके शिला प्रस्तर से

सहस्रों झर रहे रंगीन

शत निर्झर

शत निर्झर।

[illegible]

मुक्तिबोध की कविता का मूल्यांकन करते समय उसमें व्याप्त काव्य-व्यक्तित्व के विविध रूप तथा उनसे सापेक्ष्य सम्बन्ध रखने वाले कलाविधान की अनेकरूपता को सामने रखकर ही कुछ स्थापनायें की जा सकती हैं। दूर की बावड़ी के अतल-अथाह जल की नीलिमा में झाँकता ब्रह्मराक्षस, 'अँधेरे में' प्रकाश पिण्ड की तरह चमकने वाला रक्तालोक स्नात पुरुष, स्याह चेहरे वाला कालावस्त्र काला आदमी, बार-बार चक्कर लगाने वाला काव्य-पुरुष, अँधेरे बन्द कमरे में दहशत का एहसास करता हुआ असहाय व्यक्ति आदि सभी उनके काव्य-व्यक्तित्व के रूप हैं। इन प्रतीकों और बिम्बों के असंवृत्त रूप में विद्यमान रचनाकार की जीवन-यात्रा न तो एक दिन की है और न ही इस पर किसी देवता या अव्यक्त-शक्ति की अहेतुक कृपा दृष्टि ही पड़ी है। उनकी तुलना दूसरे का खून चूसकर लाल-लाल दिखाई पड़ने वाले गुलाब से नहीं अपितु जलकर भी प्रकाश फैलाने वाले उस दीपक से की जाती है जो अपने संचित आत्मबल को अन्तिम विन्दु तक जलाकर अंधकार को भगाने का प्रयास करता है।

मुक्तिबोध की कविता के प्रत्येक शब्द, पद, ध्वनि और उनके क्रम-व्यतिक्रम, संयोग-वियोग से भाषा का जो रूप सामने आया है उसमें 'अणु से अणुतर' मन, गला-जला-पिघला सर्जक अथवा जुड़ा-बना-उठा विराट् रचनाकार झाँकता रहता है। परम-अभिव्यक्ति अनिवार आत्म-सम्भवा का अन्वेषी अचानक बाल्मीकि की तरह कवि नहीं बना है और न ही तुलसी जैसे महान कृतिकार के साथ हुए करिश्मे की तरह उनके साथ कोई करिश्मा हुआ है किन्तु प्रयोगवाद-नयी कविता, अकविता, समानान्तर कविता में फैले हुए रूप एवं शिल्प विधियों के सवालों के दायरे में घिर कर 'एक रहस्य-साक्षात्' हो गया है।

> लाल-लाल कुहरा
> कुहरे में सामने रक्तालोक स्नात पुरुष
> एक रहस्य साक्षात्
> तेजोमय प्रभामय उसका ललाट देख
> मेरे अंग-अंग में अजीब एक थर-थर
> गौर वर्ण, दीप्त दृग, सौम्यमुख
> सम्भावित स्नेह-सा प्रिय रूप /[१]

वे ग्रहण-प्राप्ति-खोज में विश्वास करते हैं अतः सर्जक रूप में सर्वत्र आग्रही हैं—कुछ नया कर दिखाने के।

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—(मुक्तिबोध), पृ० सं० २४७।

मुक्तिबोध की कविता में प्रतिबिम्बित जगत उनके [illegible] जगत का
है [illegible] गली-सड़क चौराहे, भीड़ जंगल, पठार पहाड़ तथा हरियाली,
[illegible], ज्योत्स्ना, कालिमा आदि रंगों का अद्भुत [illegible] देखा जाता है।
कविता की धूमायित-धूमिल प्रकाश-रेखाएं [illegible]
[illegible] एक ऐसा [illegible]
[illegible] मुक्तिबोध के रचनाकार [illegible]
[illegible] लगभग तीन [illegible] दुःख [illegible]
[illegible] की दुर्गम [illegible]

छायावादोत्तर कविता का [illegible] मुक्तिबोध
व्यक्तित्व' से उद्भूत है। रचनाकार का [illegible] प्रकाशित
तो उन कविताओं के मूल्यांकन का [illegible]
उनकी अन्तिम पहचान नहीं बन सकती है। रुग्ण एवं अभावग्रस्त जीवन,
की खोज में सण्डी शुजालपुर, उज्जैन, भोपाल, वाराणसी, भिलाई, नागपुर
ों का भटकाव उनकी अव्यवस्थित-व्यवस्था का प्रसार है। कविता, कहानी,
मीक्षा आदि विधाओं में विद्यमान मुक्तिबोध का रचनाकार साहित्य में बरा-
र देखा जाता है। अमंगल की आशंका, मौत की छाया से डर, राक्षस की
कृति आदि का चित्रण उनके गम्भीर कष्ट सहते व्यक्तित्व का प्रस्तुतीकरण
संघर्ष का प्रकट रूप है, जो रचनाकार के दुहरे संघर्ष का परिचायक है।
नाकार मुक्तिबोध के व्यक्तित्व निर्माण में माधव कालेज उज्जैन का प्रमुख
। अपनी बुआ सत्ताबाई के संरक्षण में रहकर वे इण्टर एवं बी० ए० की
प्राप्त कर रहे थे। इन्हीं दिनों किशोर मन पर प्रेम का प्रथम प्रभाव पड़ा।
दृष्टि से छायावाद युग के गीतों से वे प्रभावित थे और माखन लाल
लकृष्ण शर्मा नवीन, महादेवी वर्मा के गीतों का रोमांटिक भावावेग उनको
प्रभावित करता रहा —

> एक विजय और एक पराजय बीच मेरी शुद्ध प्रकृति /
> मेरा स्व जगमगाता रहता है /
> विचित्र उथल-पुथल में मेरी साँझ मेरी रात /
>> सुबहें व मेरे दिन /
>> नहाते हैं / (तारसप्तक – मुक्तिबोध)

मिक एवं डिग्री कक्षाओं का विद्यार्थीजीवन उनकी कविता का आरम्भिक
स्य का प्रथम रूप है। इस जीवन काल का विभिन्न रूपों में

चित्रण उनकी परवर्ती कविताओं में भी मिलता है। 'एक स्वप्न कथा' मुझे पुकारते हुए पुकार खो गई कहीं, मुझे याद आते हैं - शीर्षक कविताओं में वे सौन्दर्य प्रेम एवं भावुकता से परिचालित देखे जाते हैं। विरह और करुणा की यही पाठशाला जीवन की व्यापक वेदना की आरम्भिक पाठशाला है।

उस शाला का मैं / एक अल्पमति विद्यार्थी / जड़ लेखक हूँ मैं अनुभवी / आयु में यद्यपि प्रौढ़ / बुद्धि से बालक हूँ / मैं एकलव्य जिसने निरखा / ज्ञान के बन्द दरवाजे की दरार से ही / भीतर का महामनोमन्थनशाली मनोज्ञ.......(१)

(चा० मु० टे०—मेरे सहचर मित्र—पृ०९६-९७)

उनके पिता एक रियासत के पुलिस इंस्पेक्टर थे जिनकी प्रिय सन्तान होने के कारण उनकी बाल्यावस्था विलासिता में बीती थी। पिता के सेवामुक्त होने के बाद वह सुख-सुविधाएँ जाती रहीं। बुआ अत्ता बाई का कठोर अनुशासन माता का संस्कार तथा शान्ता बाई के प्रेम ने उनका यह रूप निर्मित किया। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में आया हुआ विराट बरगद इसी समय उज्जैन में अंकुरित हुआ था। इतने छोटे बीज का इतना विशालकाय पेड़, वह भी जमीन न मिलने पर अन्य पेड़ों की डाल अथवा कंकड़-पत्थर से निर्मित पुराने भवन पर जमने के बाद वायु-मण्डल में लटकने वाली जड़ों से भोजन लेकर हरा-भरा रहता तथा मूल से कटकर जीवित रहता है।

अकेले अँधेरे में टहलने की आदत, बीड़ी पीने की लत, चाय पीने की बेसब्री, उन्हें उज्जैन में ही मिली थी।[१] प्राइमरी कक्षाओं का उनका सहपाठी शान्ताराम इन्हीं दिनों यहाँ रात की पहरेदारी करता था। छुटपन में उसके साथ घूम-फिरकर गरीबी का अनुभव, अभावग्रस्तता का एहसास, अकेले रहने की आदतें इसी समय पड़ीं। उज्जैन में ही डॉ० प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन से परिचय हुआ था जो 'मण्डी शुजालपुर आकर अधिक प्रगाढ़ता में बदल गया। १९४१ ई० में आगरा छोड़कर नेमिचन्द्र जैन शुजालपुर आकर रहने लगे थे। डॉ० नारायण विष्णु जोशी इसी ग्रामीण परिवेश के पिछड़े क्षेत्र में समाज-सेवा का व्रत लेकर आये थे। वर्गसाँ का दर्शन डॉ० जोशी का अधीत विषय था। मुक्तिबोध में 'ईमानदार संस्कारमयी

१. मैं उल्का फूल फेंकता मधुर चन्द्र मुख पर
मेरी छाया गिरती है दूर नेब्यूला में
बस तभी तलब लगती है बीड़ी पीने की—
मैं पूर्वाकृति में आ जाता /
बस चाय एक कप मुझे गरम कोई दे दे /

चाँद का मुँह टेढ़ा है—पृ० सं० ११६

चित्रण उनकी परवर्ती कविताओं में भी मिलता है। 'एक स्वप्न कथा' मुझे पुकारते हुए पुकार खो गई कहीं, मुझे याद आते हैं - शीर्षक कविताओं में वे सौन्दर्य प्रेम एवं भावुकता से परिचालित देखे जाते हैं। विरह और करुणा की यही पाठशाला जीवन की व्यापक वेदना की आरम्भिक पाठशाला है।

उस शाला का मैं / एक अल्पमति विद्यार्थी / जड़ लेखक हूँ मैं अनुभवी / आयु में यद्यपि प्रौढ़ / बुद्धि से बालक हूँ / मैं एकलव्य जिसने निरखा / ज्ञान के बन्द दरवाजे की दरार से ही / भीतर का महामनोमन्थनशाली मनोज्ञ.......(१)

(चा० मु० टे०—मेरे सहचर मित्र—पृ०९६-९७)

उनके पिता एक रियासत के पुलिस इंस्पेक्टर थे जिनकी प्रिय सन्तान होने के कारण उनकी बाल्यावस्था विलासिता में बीती थी। पिता के सेवामुक्त होने के बाद वह सुख-सुविधाएँ जाती रहीं। बुआ अत्ता बाई का कठोर अनुशासन माता का संस्कार तथा शान्ता बाई के प्रेम ने उनका यह रूप निर्मित किया। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में आया हुआ विराट बरगद इसी समय उज्जैन में अंकुरित हुआ था। इतने छोटे बीज का इतना विशालकाय पेड़, वह भी जमीन न मिलने पर अन्य पेड़ों की डाल अथवा कंकड़-पत्थर से निर्मित पुराने भवन पर जमने के बाद वायु-मण्डल में लटकने वाली जड़ों से भोजन लेकर हरा-भरा रहता तथा मूल से कटकर जीवित रहता है।

अकेले अँधेरे में टहलने की आदत, बीड़ी पीने की लत, चाय पीने की बेशर्मी, उन्हें उज्जैन में ही मिली थी।[१] प्राइमरी कक्षाओं का उनका सहपाठी शान्ताराम इन्हीं दिनों यहाँ रात की पहरेदारी करता था। छुटपन में उसके साथ घूम-फिरकर गरीबी का अनुभव, अभावग्रस्तता का एहसास, अकेले रहने की आदतें इसी समय पड़ीं। उज्जैन में ही डॉ० प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन से परिचय हुआ था जो 'मण्डी शुजालपुर आकर अधिक प्रगाढ़ता में बदल गया। १९४१ ई० में आगरा छोड़कर नेमिचन्द्र जैन शुजालपुर आकर रहने लगे थे। डॉ० नारायण विष्णु जोशी इसी ग्रामीण परिवेश के पिछड़े क्षेत्र में समाज-सेवा का व्रत लेकर आये थे। वर्ग साँ का दर्शन डॉ० जोशी का अधीत विषय था। मुक्तिबोध में 'ईमानदार संस्कारमयी

---

१. मैं उल्का फूल फेंकता मधुर चन्द्र मुख पर
मेरी छाया गिरती है दूर नेब्यूला में
बस तभी तलब लगती है बीड़ी पीने की—
मैं पूर्वाकृति में आ जाता /
बस चाय एक कप मुझे गरम कोई दे दे /

चाँद का मुँह टेढ़ा है—पृ० सं० ११६

मुक्तिबोध की कविता का मूल्यांकन करते समय उसमें व्याप्त काव्य-व्यक्तित्व के विविध रूप तथा उनसे सापेक्ष्य सम्बन्ध रखने वाले कलाविधान की अनेकरूपता को सामने रखकर ही कुछ स्थापनायें की जा सकती है। दूर की बावड़ी के अनल-अथाह जल की नीलिमा में झाँकता ब्रह्मराक्षस, 'अँधेरे में' प्रकाश पिण्ड की तरह चमकने वाला रक्तालोक स्नात पुरुष, स्याह चेहरे वाला कालाबत्तू काला आदमी, बार-बार चक्कर लगाने वाला काव्य-पुरुष, अँधेरे बन्द कमरे में दहशत का एहसास करता हुआ असहाय व्यक्ति आदि सभी उनके काव्य-व्यक्तित्व के रूप हैं। इन प्रतीकों और बिम्बों के असंवृत रूप में विद्यमान रचनाकार की जीवन-यात्रा न तो एक दिन की है और न ही इस पर किसी देवता या अव्यक्त-शक्ति की अहेतुक कृपा दृष्टि ही पड़ी है। उनकी तुलना दूसरे का खून चूसकर लाल-लाल दिखाई पड़ने वाले गुलाब से नहीं अपितु जलकर भी प्रकाश फैलाने वाले उस दीपक से की जाती है जो अपने संचित आत्मबल को अन्तिम बिन्दु तक जलाकर अंधकार को भगाने का प्रयास करता है।

मुक्तिबोध की कविता के प्रत्येक शब्द, पद, ध्वनि और उनके क्रम-व्यतिक्रम, संयोग-वियोग से भाषा का जो रूप सामने आया है उसमें 'अणु से अणुतर' मन, गला-जला-पिघला सर्जक अथवा जुड़ा-बना-उठा विराट् रचनाकार झाँकता रहता है। परम-अभिव्यक्ति अनिवार आत्म-सम्भवा का अन्वेषी अचानक बाल्मीकि की तरह कवि नहीं बना है और न ही तुलसी जैसे महान कृतिकार के साथ हुए करिश्में की तरह उनके साथ कोई करिश्मा हुआ है किन्तु प्रयोगवाद-नयी कविता, अकविता, समानान्तर कविता में फैले हुए रूप एवं शिल्प विधियों के सवालों के दायरे में घिर कर 'एक रहस्य-साक्षात्' हो गया है।

> लाल-लाल कुहरा
> कुहरे मे सामने रक्तालोक स्नात पुरुष
> एक रहस्य साक्षात्
> तेजोमय प्रभामय उसका ललाट देख
> मेरे अंग-अंग में अजीब एक थर-थर
> गौर वर्ण, दीप्त दृग, सौम्यमुख
> सम्भावित स्नेह-सा प्रिय रूप ![1]

वे ग्रहण-प्राप्ति-खोज में विश्वास करते हैं अतः सर्जक रूप में सर्वत्र आग्रही हैं—कुछ नया कर दिखाने के।

---

१ चाँद का मुँह टेढ़ा है (मुक्तिबोध), पृ० सं० [illegible]

मुक्तिबोध की कविता में प्रतिबिम्बित जगत उनके समसामयिक जगत का प्रतिरूप है जिसमें गली-सड़क चौराहे, भीड़ जंगल, पठार पहाड़ तथा हरियाली, लालिमा, नीलिमा, भूरिमा, कालिमा आदि रंगों का अद्भुत समन्वय देखा जाता है। विराट कविता की सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रकाश-रश्मियाँ या बड़े-बड़े काले दैत्य-शून्य से आकार की अतल गहराई में एक ऐसा सर्जक है जो परस्पर विरोधी तत्वों का समन्वयक है। मुक्तिबोध के रचनाकार ने किशोर-भावुक कवि की तरह काव्य-जगत में प्रवेश किया और लगभग तीन दशक बाद जैसे एक तीव्र-प्रकाश पुञ्ज की तरह जल-कर चिर-विश्राम लेने की दुर्दम अभिलाषा लिये हुए इस जगत को त्याग कर चला गया।

छायावादोत्तर कविता का पृथक् जीवन-दर्शन, पृथक् शैली और रूप, मुक्तिबोध के 'काव्य-व्यक्तित्व' से उद्भूत है। रचनाकार का अनुभूत सत्य जब काव्य में प्रकाशित होने लगा तो उन कविताओं के मूल्यांकन का सिलसिला जारी हुआ। उनके कवि की पहचान उनकी अन्तिम पहचान नहीं बन सकती है। रुग्ण एवं अभावग्रस्त जीवन, जीविका की खोज में मण्डी शुजालपुर, उज्जैन, भोपाल, वाराणसी, भिलाई, नागपुर आदि स्थानों का भटकाव उनकी अव्यवस्थित-व्यवस्था का प्रसार है। कविता, कहानी, उपन्यास, समीक्षा आदि विधाओं में विद्यमान मुक्तिबोध का रचनाकार साहित्य में बरा-बर गतिशील देखा जाता है। अमंगल की आशंका, मौत की छाया से डर, राक्षस की भयावह आकृति आदि का चित्रण उनके गम्भीर कष्ट सहते व्यक्तित्व का प्रस्तुतीकरण तथा आत्म-संघर्ष का प्रकट रूप है, जो रचनाकार के दुहरे संघर्ष का परिचायक है।

रचनाकार मुक्तिबोध के व्यक्तित्व निर्माण में माधव कालेज उज्जैन का प्रमुख योगदान है। अपनी बुआ अत्ताबाई के संरक्षण में रहकर वे इण्टर एवं बी० ए० की शिक्षा यहाँ प्राप्त कर रहे थे। इन्हीं दिनों किशोर मन पर प्रेम का प्रथम प्रभाव पड़ा। साहित्यिक दृष्टि से छायावाद युग के गीतों से वे प्रभावित थे और माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, महादेवी वर्मा के गीतों का रोमांटिक भावावेग उनकी कविता को प्रभावित करता रहा—

> एक विजय और एक पराजय बीच मेरी शुद्ध प्रकृति /
> मेरा स्व जगमगाता रहता है /
> विचित्र उथल-पुथल में मेरी साँझ मेरी रात /
> सुबहें व मेरे दिन /
> नहाते हैं / (तारसप्तक - मुक्तिबोध)

माध्यमिक एवं डिग्री कक्षाओं का विद्यार्थी जीवन उनकी कविता का आरम्भिक काल तथा कवि-व्यक्तित्व का प्रथम रूप है। इस जीवन काल का विभिन्न रूपों में

चित्रण उनकी परवर्ती कविताओं में भी मिलता है। 'एक स्वप्न कथा' मुझे पुकारते हुए पुकार खो गई कहीं, मुझे याद आते हैं –शीर्षक कविताओं में वे सौन्दर्य प्रेम एवं भावुकता से परिचालित देखे जाते हैं। विरह और करुणा की यही पाठशाला जीवन की व्यापक वेदना की आरम्भिक पाठशाला है।

उस शाला का मैं / एक अल्पमति विद्यार्थी / जड़ लेखक हूँ मैं अनुभवी / आयु में यद्यपि प्रौढ़ / बुद्धि से बालक हूँ / मैं एकलव्य जिसने निरखा / ज्ञान के बन्द दरवाजे की दरार से ही / भीतर का महामनोमन्थनशाली मनोज्ञ.........(१)

(चा० मु० टे०—मेरे सहचर मित्र—पृ·९६-९७)

उनके पिता एक रियासत के पुलिस इंस्पेक्टर थे जिनकी प्रिय सन्तान होने के कारण उनकी बाल्यावस्था विलासिता में बीती थी। पिता के सेवामुक्त होने के बाद वह सुख-सुविधाएँ जाती रहीं। बुआ अत्ता बाई का कठोर अनुशासन माता का संस्कार तथा शान्ता बाई के प्रेम ने उनका यह रूप निर्मित किया। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में आया हुआ विराट बरगद इसी समय उज्जैन में अंकुरित हुआ था। इतने छोटे बीज का इतना विशालकाय पेड़, वह भी जमीन न मिलने पर अन्य पेड़ों की डाल अथवा कंकड़-पत्थर से निर्मित पुराने भवन पर जमने के बाद वायु-मण्डल में लटकने वाली जड़ों से भोजन लेकर हरा-भरा रहता तथा मूल से कटकर जीवित रहता है।

अकेले अँधेरे में टहलने की आदत, बीड़ी पीने की लत, चाय पीने की बेशबी, उन्हें उज्जैन में ही मिली थी।[१] प्राइमरी कक्षाओं का उनका सहपाठी शान्ताराम इन्हीं दिनों यहाँ रात को पहरेदारी करता था। छुटपन में उसके साथ घूम-फिरकर गरीबी का अनुभव, अभावग्रस्तता का एहसास, अकेले रहने की आदतें इसी समय पड़ीं। उज्जैन में ही डॉ० प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन से परिचय हुआ था जो 'मण्डी शुजालपुर आकर अधिक प्रगाढ़ता में बदल गया। १९४१ ई० में आगरा छोड़कर नेमिचन्द्र जैन शुजालपुर आकर रहने लगे थे। डॉ० नारायण विष्णु जोशी इसी ग्रामीण परिवेश के पिछड़े क्षेत्र में समाज-सेवा का व्रत लेकर आये थे। वर्ग सौं का दर्शन डॉ० जोशी का अधीत विषय था। मुक्तिबोध में 'ईमानदार संस्कारमयी

---

१. मैं उल्का फूल फेंकता मधुर चन्द्र मुख पर
मेरी छाया गिरती है दूर नेब्यूला में
बस तभी तलब लगती है बीड़ी पीने की—
मैं पूर्वाकृति में आ जाता /
बस चाय एक कप मुझे गरम कोई दे दे /

चाँद का मुँह टेढ़ा है—पृ० सं० ११९

गहरी' विवेक चेतना का उदय १९४०-४१ के आस-पास हुआ। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन तथा लोकमान्य तिलक के सिद्धान्तों के साथ ही मार्क्सवाद का गम्भीर प्रभाव उन पर इन्हीं दिनों पड़ा। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मान्यताओं को रचनाकार मुक्तिबोध ने जीवन के अभावों में पाया और अपनाया था।

विक्षोभित हिल्लोलित जीवन की लहरों में मन को नहलाकर काव्य-पुरुष का बाहर निकलना और फिसलना सीखने की प्रक्रिया है। वंशानुक्रम के साथ वातावरण का समन्वय व्यक्तित्व निर्मित करता है और रचनाकार का व्यक्तित्व उसके बाद की अवस्था है। पानी की काली लकीरों में गहराई के कारण दिखाई पड़नेवाली आकृति भयावनी लगती है किन्तु उससे बचना भी असम्भव है। सकर्मक प्रेम की अतिशयता फैन्टेसी बनकर उनकी परवर्ती कविताओं में चक्कर लगाती देखी जाती है। किशोर मन की ऊहापोह की स्थिति जीवन की वास्तविकताओं को जानने की जिज्ञासा है किन्तु भय एवं असमंजस की स्थिति भी मुक्तिबोध के कवि में इसी समय आयी थी जो आगे चलकर 'नव्यमानवतावाद एवं अतियथार्थवाद की प्रेरणा बनी। प्रसाद की रचना प्रेमपथिक में भी विरही नायक अपने प्रिय की खोज में भटकता हुआ एक वृक्ष के नीचे जा बैठता है और वहाँ बैठे हुए जिस व्यक्ति से वह अपनी व्यथा कहता है वही उसका प्रिय है। मुक्तिबोध की 'अनिवार आत्म-सम्भवा' भी इसी प्रकार की है। अनेक बार देखने पर भी न पहचानने की विवशता छायावाद युग की आवेगमयी प्रवृत्ति है जो कविता के मूल संस्कार रूप में मुक्तिबोध को मिली है। व्यक्तित्व विश्लेषण की दृष्टि से प्रसाद एवं मुक्तिबोध में पर्याप्त विभिन्नतायें हैं किन्तु आँसू-प्रेम-पथिक, लहर आदि के रचनाकार का व्यक्तित्व मुक्तिबोध के आरम्भिक व्यक्तित्वसे मिलता-जुलता है—

वह मधुरतम हास / जैसे आत्म परिचय सामने ही आ रहा है मूर्त होकर। / जो सदा ही मम हृदय अन्तर्गत छिपे थे / वे सभी आलोक खिलते जिस सुमुख पर ! / वह हमारा मित्र है। X X X जिसको नित लगाने निज मुखों पर स्वप्न की मृदु मूर्ति-सी / अप्सरायें साँझ प्रातः / मृदु हवा की लहर पर से सिन्धु पर रख अरुण तलुए / उतर आतीं, कान्तिमय नवहास लेकर ...... / तारसप्तक (आत्मा के मित्र मेरे—पृ० ४४)

काव्य व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों को हम दो वर्ग में विभक्त कर सकते हैं— (१) मन का प्रक्षेप (२) विलोम का रूप—मन। मन तथा विलोम का संघर्ष उनका आत्मसंघर्ष है जिसमें यह पृथक करना कठिन है कि मन कहाँ है और विलोम कहाँ है। युगीन समस्याओं के गुहान्धकार में खोया मन कभी विलोम से हार मानता है किन्तु

उस स्थिति में भी सर्जना का क्रम चलता रहता है। मुक्तिबोध की कविता के प्रशंसक, व्याख्याता और आलोचक उनके परवर्ती रूप को ही अधिक देखते हैं किन्तु विद्रोही, व्यक्तित्व के अतिरिक्त उनका प्रारम्भिक रूप एक सजग संवेदनशील कवि का है। नयी कविता का आत्मसंघर्ष नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, एक साहित्यिक की डायरी में व्याख्यायित दृष्टिकोण प्रौढ़ रचनाकार के हैं जिसमें एक दृढ़ विचारशील चिन्तक जन्म ले चुका है और भावुक किशोर कवि लुप्त हो चुका है। उनकी कविताओं के प्रतीक, बिम्ब, अप्रस्तुतविधानों में पूर्ववर्ती अनुभवों का उपयोग तथा परवर्ती व्यक्तित्व का विकास देखा जाता है। डॉ० नारायण विष्णु जोशी इसे दृष्टि विकास का संघर्ष कहते हैं—'हिन्दी भाषानुराग को उतना महत्त्व नहीं दिया जा सकता जितना कि उस ध्येयवादिता को जिसके कारण अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों से आजीवन जूझ कर उन्होंने शोषित मानवता के प्रति अपनी करुणा और सहानुभूति व्यक्त की[१]

कई मील मोटी जल परतों के
नीचे ढका हुआ शहर जो डूबा है
उसके सौ कमरों में। हलचलें गहरी हैं
कि उनकी कुछ झइयाँ ऊपर आ सिहरी हैं
सिहरती उभरी है/ साफ-साफ दीखती[२]

'मन की अतल गहराई में डूबे सौ कमरे' कला की निर्मितियाँ है जो निराशा में डूबकर भी नष्ट नहीं हुई है। कला की यह आस्था उनकी क्षमता एवं प्रतिभा को परिलक्षित करती है— 'ईमानदार संस्कारमयी / संतुलित नवी गहरी विवेक चेतना / अभय होकर अपने वास्तविक मूलगामी निष्कर्षों तक पहुँची / × × × वीरान विरोधी दुर्गों की अखण्ड सत्ता / उनके अभ्यन्तर के प्रकाश की कीर्ति—कथा— ×[३] 'गहरी विवेक चेतना' 'विरोधी दुर्गों की अखण्ड सत्ता, 'अभ्यन्तर प्रकाश' आदि ऐसे संकेत हैं जो मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को समझे बिना नहीं समझे जा सकते।

मुक्ति बोध के 'काव्य—व्यक्तित्व' की सही पकड़ उनके विचारों तथा निबंधों मे देखी जाती है न कि छोटी कविताओं में। 'साहित्य मनुष्य के आंशिक साक्षात्कारों के बिम्बों की एक मालिका तैयार करता है। ध्यान रहे कि वह सिर्फ बिम्ब मालिका है और उसका सारा सत्यत्व और औचित्य मनुष्य के जीवन या अन्तर्जगत में

१. मुक्तिबोध (सम्पादक—लक्ष्मण दत्त गौतम) डॉ० नारायण विष्णु जोशी का निबन्ध।
२. चाँद का मुँह टेढा है—मुक्तिबोध—पृ० सं० १८३।
३. चाँद का मुह टेढ़ा है – मुक्तिबोध (जब प्रश्न चिन्ह—बौखला उठे—पृ० सं० ११९।

स्थित है।'[१] उनकी व्याख्याओं और काव्य उक्तियों से यह यह प्रमाणित होता है कि अभिव्यक्ति का रूप चमक सदृश है जो अन्तर्मन के संघर्ष की चिनगारी से निकलता है—साहित्य में प्रकाश ही प्रकाश है किन्तु हमें प्रकाश में सत्यों को ढूढ़ना है। हम केवल साहित्यिक दुनियाँ में नहीं वास्तविक दुनियाँ में रहते हैं।'[२] विसंगति यह है कि कवि के बार-बार यह स्पष्ट करने पर भी समीक्षकों ने उनकी वास्तविक दुनियाँ को दृष्टि से ओझल कर साहित्यिक दुनियाँ पर ही आँख गड़ा दी। परिणाम यह हुआ कि किसी को सदैव खोज दिखाई दी तो किसी को भटकाव किसी को दृष्टि विकास का संघर्ष दिखाई पड़ा तो किसी को मनोविश्लेषणवादी रंगीनी दिखाई पड़ी।

झीना-नीला पर्दा, गहन अँधेरा, दुर्गम पठार, पहाड़, समुद्र का नीला जल, बावड़ी की गहराई आदि से हम उनके अतिमन में व्याप्त जीवन की असफलताओं का पुञ्जीभूत रूप देख सकते हैं। वंशानुक्रम एवं पारिवारिक संस्कारों के अतिरिक्त आर्थिक क्रियाओं और सामाजिक बन्धनों की शिलित-जड़ीभूत परिस्थितियों ने उनके जीवन मे अधूरेपन का एहसास भर दिया। इसीलिये पहले रोमानी आवेग की कविता लिखने के बाद वे कहानी लिखते रहे। वे पुनः कविता की ओर मुड़े किन्तु यह उन्हें बराबर लगता रहा कि जो कुछ वे कहना चाहते हैं कविता उसके लिए उपयुक्त विधा नही है। इसीलिये वे उपन्यास भी लिखने को सोचते थे।[३] बस्ती से बाहर जंगल का भ्रमण, अकेले बन्द कमरे में भी दहशत और आशंका, दूर-दूर तक बीरान फैलाव, तूफानी शैलाब, मन के ज्वालामुखी से फूटा हुआ लावा है जो प्रस्तरीभूत होकर नीला स्याह पठार—काले विराट आकार का रूप लेता है। यह जड़ है, ठोस है, सघन और स्थिर है।

जीवन के मोर्चों पर संघर्षशील जुझारू व्यक्तित्व अभिव्यंजना के धरातल पर सर्वाधिक सजग देखा जाता है। लघु से लघुतर अथवा विराट् से विराटतर आकारों और निर्मितियों में विद्यमान व्यक्तित्व अस्मिता और आस्था का पल्ला नहीं त्यागता है। मनु के साथ कभी श्रद्धा कभी इड़ा की निकटता की तरह कभी मुक्तिबोध के मन में आशा का जहरीला प्रवाह हिलोरें लेकर अपने पास बुलाता है[४] तो कभी वे तर्कशालिनी इड़ा को सर चढ़ाकर भी उससे हृदय को अछूता रखते हैं। यही अनुभव कविता में विसंगति का रूप लेता है—

---

१. एक साहित्यिक की डायरी—मुक्तिबोध

२. " "

३. तारसप्तक—(वक्तव्य)—मुक्तिबोध

४. अतिशय मृदु किन्हीं बाहों में आकर / कस लिया इस भाँति मुझको /

—'मुक्तिबोध'

प्रतीकों और बिम्बों के / असंवृत रूप में भी रह /
हमारी जिन्दगी है यह / जहाँ पर धूल के
भूरे गरम फैलाव / पर पसरी लहरती चादरें /
बेथाह सपनों की /[१]

कविता की परिकल्पना को 'फैन्टेसी' के रूप में चित्रित करने वाला काव्य-व्यक्तित्व धूल के भूरे गरम फैलाव को अपने चारों ओर देखने का आदी हो गया है। अन्तर्संघर्ष, निराशा, कुण्ठा, मनोभग्नता की स्थितियाँ स्वप्न नहीं सत्य के रूप में कविता में स्थान पाती हैं। समस्याओं का पसरा हुआ जगत कवि को बार-बार आगे चलने की चुनौती देता है और इस चुनौती को स्वीकार कर दुर्दमनीय व्यक्तित्व आगे बढ़ता है। समीक्षकों और व्याख्याताओं ने उनके काव्य की व्याख्या में अनेक सिद्धान्तों और मतवादों की परिणतियाँ देखी हैं। सबकी अपनी-अपनी सीमायें हैं और मुक्तिबोध का कवि असीम अतुलनीय। "वस्तुतः अँधेरे में कुछ प्रश्न हैं प्रश्नों के उत्तर हैं और उनका मुँह बन्द है। अँतड़ियों में बल पड़ जाने वाली पूरी केन्द्रीय शक्ति लगाने पर ही वह खुलता है, और तब जाकर यह सवाल समझ में आते है जिनके जवाब हम सबको मिल-जुलकर खोजने हैं।"[२] शमशेर बहादुर सिंह, श्रीकान्त वर्मा, नामवार सिंह आदि ने इनके जवाब मिल-जुलकर नहीं किन्तु अलग-अलग खोजे हैं। कुबेरनाथ राय, हरिशंकर परसाई, डॉ० रामविलास शर्मा ने भी शमशेर के इस परख के आंदोलन में साझेदारी की है किन्तु सबके जवाब भिन्न हैं। मूल्यांकन का सिलसिला अब भी जारी है। जब रचनाकार की उलझनें उसके व्यक्तित्व में बद्धमूल हो चुकी हैं तो उन उलझनों के तागे की बुनावट अथवा बनावट देखकर चेहरे के अन्दर झाँकते चेहरे की पहचान अवश्य ही कठिन है। कबीर के निरंजन की तरह मुक्तिबोध का 'आत्मचेतस्' अव्यक्त है—सन्तों का निराकार, एक रहस्य, एक उलझन किन्तु इन सभी मान्यताओं और स्थापनाओं के उत्तर मुक्तिबोध की सर्जना में विद्यमान हैं। डॉ० मदान की दृष्टि में मुक्तिबोध के सिद्धान्त कविता पर हैं किन्तु समस्याओं के अम्बार में उनकी सहायता ली जा सकती है। 'खुंखार सिनिक संशयवादी' व्यक्तित्व पूर्ण नहीं कहा जा सकता किन्तु 'अधूरी और सतही जिन्दगी' में क्रियमाण सर्जक की वृत्ति अदृश्य होकर भी सर्जना रूप में दृश्यमान है। भौतिक औ रसायनिक क्रियाओं की तरह उनकी कविता की परिवर्तित दृष्टि उनके असली रूप की पहचान कराती है। 'ईमानदार संस्कारमयी गहरी विवेक चेतना उसी में फूल की तरह खिली है। उनके व्यक्तित्व के अंश कवि

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध
२. चाँद का मुँह टेढ़ा है—(भूमिका) शमशेर बहादुर सिंह

द्वारा भी निरूपित हैं—'दुःख की कथायें तरह-तरह की शिकायतें / अहंकार विश्लेषण चारित्रिक आख्यान जमाने की जानदार सूरे व आयतें। सुनने को मिलती हैं।'[१] 'मुझे कदम-कदम पर चौराहे मिलते है' में निरूपित हुए जिन्दगी के चौराहे तथा अधूरी और सतही जिन्दगी के गर्म रास्तों पर चलने वाला मुक्तिबोध का मन निज में सिकुड़ता गया है, ताप पाकर कभी द्रवित हुआ है और कभी फैला है, कभी चटखकर फूट गया है किन्तु हर टुकड़े में दिल का खून हमेशा टपकता रहा है। कहीं-कहीं वह टपकने वाला खून जहाँ सूखकर काला पड़ गया है वहाँ स्याह चेहरा दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि उनके काव्यबिम्बों में जितने लालिमा युक्त आलोक के वर्णन है उतने ही स्याह, अँधेरे और काले रंग के चित्रण हुए हैं। यदि इन चित्रों पर सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो इनका भी मनोवैज्ञानिक संदर्भ है जो उनके जीवन-संघर्ष की देन है। मानव-व्यक्तित्व के निर्माण में उसकी इच्छा आकांक्षा, कल्पना और चिन्तन योगदान देता है। साथ ही जिन्दगी की असफलताएँ, टूटन, दुराशा और निराशायें मन पर असर डालकर रासायनिक क्रिया की तरह उसे धीरे-धीरे परिवर्तित करती है। वंशानुक्रम एवं वातावरण के अतिरिक्त आवेग एवं उनकी प्रतिक्रियाओं से प्रभावित मानव-मन घृणा, प्रेम, श्रद्धा, राग, मैत्री आदि सम्बन्धों से जुड़ने के कारण अनेक तीखे, कड़ुवे अनुभवों को ग्रहण करता है। भूख, प्यास आदि अनिवार्यताओं की तरह ही 'रति' की भावना भी जगती है तथा उसकी स्थिति मानवीय व्यक्तित्व की शिल्पविधि की कटान तराश में अपना योगदान देती है।

बाल्यावस्था में पिता के अड़ियल स्वभाव एवं माता के संस्कार युक्त ब्राह्मण परिवार की परम्पराओं ने मुक्तिबोध में आस्था एवं देवता देवी में विश्वास उत्पन्न किया है। माता-पिता के अतिशय लाड़-प्यार में पलनेवाले बालक के मन में 'सुपीरियार्टी काम्प्लेक्स' का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। किशोरावस्था तक बुआ जी का दृढ़ अनुशासन बंधन का कार्य करता रहा किन्तु यही आगे चलकर विद्रोही व्यक्तित्व का पूर्व-रूप बना।

अपने छटपटाते हुये व्यक्तित्व को लेकर वे अकेले ही युग जीवन की अँधेरी गुफाओं में सघन जंगलों में घुसे। पेंचीदे चक्करदार धूमिल तहखानों में घाटियों और पहाड़ियों में, पठार और कँकरीली, पथरीली, खुरदुरी जमीनों पर चलते-चलते लहू-लुहान क्षताहत पैर लिये हुए शरीर से क्लांत एवं थके हुए किन्तु मन से सदैव साहसी, कड़ियल गम्भीर तथा कठिनाइयों में भी न झुकनेवाले बने। प्रथम विश्व युद्ध के समय की घटनेवाली घटनाओं तथा स्वदेश एवं विदेश के साहित्य, मार्क्सवादी दर्शन तथा

१- चाँद० मुँह० टेढ़ा है—मुक्तिबोध पृ० ६२

अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी उपन्यास एवं कृतियों का गहन अध्ययन करते हुए उनकी चिन्तन शक्ति व्यापक हुई जिससे किशोर मुक्तिबोध में युवक मुक्तिबोध—पत्रकार मुक्तिबोध ने जन्म लिया।[१] इन्हीं दिनों उन्होंने ने डार्विन, इब्सन, बर्नार्ड शॉ, रसल, कीर्केगार्द आदि की कृतियों और विदेशी उपन्यासों का सूक्ष्म अध्ययन किया। शरद मुक्तिबोध लिखते है—'उनकी जिज्ञासा भी बहुत तीव्र थी। समूची मानव जाति के क्रम विकास का अध्ययन उन्होंने किया था। स्थिति, गति और नियति का अध्ययन उन्होंने किया था। विभिन्न देशों के इतिहास को भी उन्होंने पढ़ा था।[२] उनका विराट काव्य व्यक्तित्व इसीलिए कविता में प्रक्षिप्त चिन्तन के रूप में देखा जाता है। कामू, काफ्का, नीत्से आदि विचारकों एवं दार्शनिकों का अध्ययन भी इन्हीं दिनों मुक्तिबोध ने किया था।

'मात्र अनस्तित्त्व का इतना बड़ा अस्तित्त्व / ऐसे घुप्प अँधेरे का इतना तेज उजाला / लोग बाग अनाकार ब्रह्म के सीमाहीन शून्य के बुलबुले में यात्रा करते हुए गोल-गोल / गोल-गोल। खोजते हैं जाने क्या / बेछोर तिफर के अँधेरे में बिलाबत्ती सफर भी खूब है।'[३]

यह विश्वात्मक 'फैण्टेसी' उनके जीवन की एक ऐसी फैण्टेसी है जिसका कई तरह से कई जगह प्रयोग देखा जाता है।

भारतीय दर्शन की 'जोइ पिण्डे सोइ ब्रह्माण्डे' की आस्था के अनुसार वही गहन अन्धकार का ब्रह्माण्ड कवि का मन—संघर्षशील-निराश मन है किन्तु इसी संघर्ष मे चकमक की तरह उत्पन्न होनेवाला प्रकाश उस अग्नि से निकलता है। मुक्तिबोध कभी—'देखो तो। प्रति पल तुम्हारा नाम जपती हुई। लार टपकाती हुई आत्मा की कुतिया। स्वार्थ सफलता की पहाड़ी ढाल/पर चढ़ती है × × राह का हर कोई कुत्ता जिसे छेड़ता है।'[४] जैसे असहाय देखे जाते हैं तो कहीं उनकी दूसरी परिकल्पना, जो इस कविता में व्यंजित है—'बेगानों की तरह भटकाव किसी से मिल सकने में असमर्थ प्रेरणा के अनुभव को धारण किये हुए भी 'जमना' अथवा 'फिट' होना कठिन है। 'हम है समाज की तलछट केवल इसीलिए। हमको सर्वोज्ज्वल परम्परा चाहिए / और परम्परा निर्मिति के हित / खोजती जिन्दगी के कचरे में भी / "ज्ञानात्मक संवेदन"—

---

१. मेरा भी सुविकसित हो गया है मन
व मेरे हाथ में है क्षुब्ध सदियों के
विचित्र-भाषी, विचित्र देशी / अनेकों ग्रंथ पुस्तकें.....चा० मु० दे०—न [illegible]

२. ग० मा० मुक्तिबोध...........शरद मुक्तिबोध

३. चाँद का मुँह टेढ़ा है (एक अरूप शून्य के प्रति)—पृ०—११२)।

४. " " " —(पृ० स० १२२)।

समाज की तलछट में रहकर भी सर्वोज्ज्वल परम्परा से जुड़ने की आकांक्षा अनस्तित्व के अस्तिव या घुप्प अँधेरे के तेज उजाले का स्मरण कराते हैं।[१]

'आधुनिक सभ्यता के वन में / व्यक्तित्व-वृक्ष सुविधावादी / कोमल-कोमल टहनियाँ भर गई अनुभव मर्मों की।[२] इस प्रकार जीवन की यात्रा द्वारा ग्रहण किये गये अनुभव को कवि ने पूरी ईमानदारी के साथ सारे भारतवासियों के लिये वितरित कर दिया—वे आते ही होंगे लोग। जिन्हें तुम दोगे। देना ही होगा पूरा हिसाब / अपना सब का, मन का, जग का'—(एक अन्तर्कथा) आस्था विश्वास एवं परम्परा के प्रति मन का झुकाव उनके काव्य—व्यक्तित्व का अंश है। 'नीलिमा' का प्रयोग आशावादिता का परिणाम है—

आगे-आगे माँ / पीछे मैं / उसकी दृढ़ पीठ जरा सी झुक / चुन लेती डण्ठल पल भर रुक / वह जीर्ण नील वस्त्र / है अस्थि दृढ़ / गतिमती व्यक्तिमत्ता / कर रहा अध्ययन मैं उसकी मजबूती का /[३]

यह माँ—जीर्ण नील वस्त्र धारण करनेवाली आस्था-श्रद्धा की प्रतिरूपा है। आस्था के परिणाम स्वरूप दुनियाँ के ऊपर पड़ा हुआ पर्दा हट जाता है 'दरवाजे सारे दुनिया के खुल जाते हैं—'अनजाने हाथ मित्रता के / मेरे हाथों में पहुँच ऊष्मा करते हैं। मैं अपनों से घिर उठता है / मैं विचरण करता सा हूँ एक फैण्टेसी में / यह निश्चित है कि यह फैण्टेसी कल वास्तव होगी।[४]

कभी उद्विग्न होकर उनका—कवि अपनी कविता को रूपाकार प्रदान करता है—'लहराओ-लहराओ नामात्मक कविताओं झाड़ियाँ छिपो / उन श्याम झुरमुटों तले कई / मिल जायँ कहीं / वे फेंके गये रत्न, ऐसे जो बहुत / असुविधा कारक थे / इस-लिए कि उनके किरण—सूत्र से होता था / पट परिवर्तन यवनिका पतन /[५] 'ओ काव्यात्मन फणिधर' में चलती हुई कवि की कविता-यात्रा का विद्रूप चित्र भी दिखाई पड़ जाता है। प्रयोगवादी शिल्प के पक्षधर जिस अलंकरण की प्रशंसा करते देखे जाते हैं तथा जिसमें डॉ० नामवर सिंह को 'अभिव्यक्ति की पूर्ण ईमानदारी' दिखाई पड़ती है, उसका बिम्ब ऐसी कविताओं में द्रष्टव्य है—वह पागल युवती सोई है मैली दरिद्र अस्त-व्यस्त / उसके बिखरे हैं बाल व स्तन लटका सा / अनगिनत वासना वस्तों का मन अटका था।

X X X

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है (एक अरूप शून्य के प्रति) —(पृ० सं० १२३)।
२. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध (पृ० सं—११६)।
३. " " " " (पृ० सं० ११४)।
४. " " " " (पृ० सं० ११५)।
५. " " " " (पृ० सं० १२७)।

'स्तन मुँह में डाल मरा बालक थाम उसकी झाइँ—आधुनिक सभ्यता संकट की प्रतीक रेखा / उसको मैंने सपनों में कई बार देखा।'[1] अंतिम पंक्ति में 'स्वप्न मे देखा' का संकेत व्यक्तित्व की अर्द्धचेतनावस्था का परिचायक है। मनोविश्लेषणवादी आचार्यों ने इसे दमित-वसना की प्रतिक्रिया कहा है। इसे मानसिक ग्रंथि भी कह सकते हैं—'अनुभव-दीप्त मानव—ब्रह्म की संवेदना का / भव्य अनुशासन कि उससे एक गहरा / फल्सफा तैयार हो जाये। कि पूरा सत्य जीवन के विविध उलझे प्रसंगो मे सहज ही दौड़ता आये।'[2]

जीवन की सामान्य आवश्कताओं की पूर्ति हेतु जीविका की खोज में 'शुजालपुर मण्डी' के शिक्षा सदन के बंद होने पर मुक्तिबोध 'हंस' के सम्पादकीय विभाग मे वाराणसी में कार्य करते रहे। नागपुर तथा जबलपुर में भी उन्होंने आकाशवाणी पत्रकारिता एवं अध्यापन कार्य के सिलसिले में कई जगह निवास किया। आर्थिक विपन्नता प्राय: उनके साथ रही किन्तु पिता एवं भाई के समक्ष उन्होंने अपनी विवशता कभी भी प्रकट नहीं होने दी। अभावों की चोट तथा वर्तमान से असंतोष ने मुक्तिबोध को विद्रोही, आत्मकेन्द्रित, एकान्तप्रिय और गम्भीर बनाया था। उनकी कविता में झाँकता हुआ उनका कवि न तो परिस्थितियों से कभी समझौता करता देखा जाता है न समाज से। सदैव वे वर्तमान के अवसाद को ही नहीं, अवसाद के कारण को भी तोड़ना चाहते हैं किन्तु ऐसा सम्भव न होने पर वे अनेक असंगत चित्र—दिवास्वप्न की तरह असम्बद्ध भावावेग की अनुभूतियों के शिकार होते हैं। कभी मशाल का का घुसना, कभी आत्मसंघर्ष की जलन, कभी चिन्तन करते-करते अपने को एकाकी—निरा एकाकी पाने में टूटन की स्थिति भी देखी जा सकती है। स्थल-स्थल पर अपने लिए उन्होंने 'नेबुला' (उपग्रह) कहा है जो ग्रह का सतत् चक्कर लगाता रहता है।

'अधूरी और सतही जिन्दगी में भी।
जगत—पहचानते, मन जानते / जी माँगते तूफान आते हैं[3]—
मैं काँप उठा वह दृश्य देख।
यह असंदिग्ध वह मैं ही हूँ
मैं वही ठूँठ, यह निर्विवाद॥
यदि यह सच तो / उदण्ड अहं
यानी कि पेड़ ने दिया तोड़ वह नीड़ स्वप्न /'[4]

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा—(पृ०—११९)।
२. चाँ० मु० टे० —नक्षत्र खण्ड (पृ० १३६)।
३. चकमक की चिनगारियाँ —चाँ० का मु० टे / (पृ०—१५३)।
४. इस चौड़े ऊँचे टीले पर—चाँ० मु० टे० / पृ० २१६/

इसी प्रकार 'सूखता न मैं बनता न ठूंठ' आदि कथन तथा 'पृथ्वी से रस न खींचने के कारण ठूँठ बन जाना' उनके जीवन की विसंगतियाँ हैं। व्यक्तित्व का निर्माण करनेवाली जीवन की परिस्थितियों ने मुक्तिबोध को जैसा ढाला वैसा न बने किन्तु उनकी कुछ ऐसी भी विलक्षणताएँ हैं जो उनकी अलग पहचान कही जा सकती हैं। 'वे एक गहरे अर्थों में Rebel (विद्रोही) थे उनकी वैयक्तिक वृत्तियों द्वारा भावनाओं और विचारों द्वारा जीवन के हर अपूर्ण पहलु के प्रति एक जोरदार निषेध प्रकट हुआ। यह निषेध उनके व्यक्तित्व के किसी एक अंश का जीवन के किसी एक क्षेत्र के प्रति निषेध नहीं था।'[१]

उनकी असली पहचान के लिए एक पूरी ईमानदरी की आवश्यकता है किन्तु समीक्षकों ने प्राय: उनके काव्य-व्यक्तित्व की पहचान में अद्वितीय दृष्टि का परिचय दिया है। लेखक एवं समीक्षक रूप में 'नयी कविता का आत्म-संघर्ष' नामक कृति में निबन्धों के माध्यम से उन्होंने कला-सृजन प्रक्रिया पर विचार किया है। संवेदनात्मक ज्ञान तथा ज्ञानात्मक संवेदन का विवेचन करते हुए उन्होंने यह सुझाव दिया है कि 'रचना की समीक्षा के लिए सम्पूर्ण कृतित्व पर विचार करना समीचीन है।' मुक्तिबोध के कृतित्व का मूल्यांकन करते हुए समीक्षकों ने प्राय: भावुकतापूर्ण निर्णय दिया है। उनके व्यक्तित्व का सही रूप जो रचनाओं में आया भी है उसे प्रयोगवाद की सीमा में व्याख्यायित करने के लिये समीक्षकों ने मनमाने ढंग से प्रस्तुत किया है—

> 'हृदय में प्राकृतिक जो मूल
> मानव — न्याय संवेदन
> कभी बेचैन व्याकुल हो। तुम्हें क्या ले गया उस तट।
> जहाँ उसने तुम्हारे मन व आत्मा को।
> समझकर श्वेत चकमक के घने टुकड़े।
> परस्पर तड़ातड़ तेज दे रगड़ा
> कि उससे आग पैदा की।'[२]

स्वतंत्र विधा के रूप में मान्य होने पर भी समीक्षक को कल्पनापरक तथ्य प्रतिपादित करने की स्वतंत्रता नहीं होती है किन्तु अतिभावुकतावश प्राय: मुक्तिबोध के सम्बन्ध में ऐसा हुआ है। शमशेर बहादुर सिंह ने उनकी रचना 'अँधेरे में' में भारत की व्यथा देखी है। कवि के व्यक्तित्व में विशाल देश का व्यक्तित्व भी देखा जा सकता है किन्तु इतनी सब विसंगतियाँ और त्रासद विडम्बनायें ही देश में हों ऐसा नहीं है। मुक्तिबोध स्वयं अँधेरे और उजाले की व्यथा' की बात कहते है—आँत में बल पड़

१. गजानन' मेरे बड़े भाई—शरदचन्द्र माधव मुक्तिबोध (पृ० स० १४)।
२. चकमक की चिनगारियाँ—गाँ० मु० टे० (पृ० १४८)।

जाने के बाद जिससे अर्थ निकलता हो वह कविता नहीं हो सकती, टी० एस० ईलियट अथवा अन्य अतियथार्थवादी कलाकारों के समान्तर रची गयी कृति भले ही हो। रचनाओं में झांकनेवाले कवि-व्यक्तित्व के सम्बन्ध में केवल इतना कहना है कि निराला की परवर्ती रचनाओं की तरह मुक्तिबोध की ये कवितायें भी उनका प्रस्थापन बनती हैं। इनमें उनका आत्म-प्रक्षेप है, गुथन उलझाव के नशे हैं, भयंकर बात-स्वयं प्रसूत बात है, नागात्मक कविताओं की फुफकार है तथा अनेक रूपों में मनोविज्ञान मनोविश्लेषण, अर्थ'समाज-शास्त्रदर्शन के विविध सूत्रों के सीधे-टेढ़े प्रतीकात्मक कथन है किन्तु उसे मुक्तिबोध कितना रचा सके हैं यह उनकी कवितायें ही प्रकट कर देती हैं। हो सकता है कि यदि वे जीवित होते तो इनमें भी कोई परिवर्तन परिमार्जन करते।[१]

बाल्यावस्था से ही निकट रहने के कारण उनके छोटे भाई शरदचन्द्र मुक्तिबोध ने मुक्तिबोध के व्यक्तित्व की कई गुत्थियों के लिए संकेत दिया है। विद्रोही (Rebel) होने के साथ ही निर्वासित (Exile) रहने के कारणों पर भी उनके कथन से प्रकाश पड़ता है। जब तक कवि के व्यक्तित्व के उद्‌घाटन में सहायक घटनाओं की सूचना न हो तब तक काव्य व्यक्तित्व की उलझनें 'गुथन' बनकर रह जाती हैं। इन गुत्थियों के सुलझ जाने पर मुक्तिबोध राष्ट्र, समाज, वर्ग, तथा वाद-विशेष की सीमा से ऊपर सम्पूर्ण व्यक्तित्व के कवि बनते हैं। आवेग घुटन एवं संत्रास को झेलते-झेलते कवि जैसे अभ्यस्त सा हो गया है। इसीलिये उसके विराट कवि में भ्रम, चिन्तन, आलोचन, दिवास्वप्न समा चुका है—

मेरा सिर गरम है / इसीलिये भरम है / सपनों में चलता है आलोचन / विचारों के चित्रों की अवलि में चिन्तन / निजत्व माफ है बेचैन / क्या करूं किससे कहूँ / कहाँ जाऊँ दिल्ली / या उज्जैन।[२]

भयंकर टीस और करुणा का मार्मिक अन्तर्संघर्ष समष्टिगत कम व्यष्टिगत अधिक लगता है। समीक्षक-व्याख्याता रूप में जिस संघर्ष के दुहरेपन की स्थापना मुक्तिबोध ने की है कविता में उसे उतनी गम्भीरता से वे नहीं उतार सके हैं। आश्वस्त होने पर की गयी समीक्षा तथा कविता में व्यक्तित्व का दुहरापन स्पष्ट कर देता है कि—

आत्मा के मृदुल आसन पर / हृदय को / बुद्धि के अश्व तुमको ले उड़ेंगे और शैल शिखरों की चट्टानों पर वर्षा ठन्डी हवाओं में / उसके पार × × × स्वर्ण उल्का[२]

१. नयी कविता का आत्मसंघर्ष ...... (मुक्तिबोध) में रचनाओं के परिमार्जन करने का उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी भी यह स्वीकार करते हैं।

२. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध २६१।

शमशेर बहादुर सिंह डॉ० नामवर सिंह श्रीकान्त वर्मा तथा नेमिचन्द जैन आदि ने उनके व्यक्तित्व के एक ही रूप को अनेक कोणों से देखा और समझा है किन्तु जिस प्रकार शमशेर को यह अनुभव होता है कि आरम्भ से ही कहीं कोई भूल हो गई है, टेढ़ी समस्या जो सुलझानी है, मुक्तिबोध उसे सुलझाने के लिए सर्जना के स्तर पर व्यस्त देखे जाते हैं।

मुक्तिबोध के काव्य की चर्चा उनके न रहने पर एकाएक अतितीव्रता से आरम्भ हुई। हिन्दी की मान्य पत्र पत्रिकाओं में उनकी सर्जना, शिल्पविधि, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद एवं नवरहस्यवाद को लेकर पृथक-पृथक अथवा समवेत विचार किये गये। निराला के बाद समकालीन कविता मे मुक्तिबोध के व्यक्तित्व और कृतित्व को विशेष महत्व दिया गया। उनकी रचना धर्मिता पर यदि उनके जीवन-काल में इतनी व्यापक काव्य-समीक्षा की गई होती तो निश्चय ही प्रयोगवाद और नयी कविता का रूप कुछ और ही होता। अब भी उनके काव्य की समीक्षा से पाठक को अर्थ ग्रहण की सम्प्रेषणीयता का अनुभव नहीं होता है।

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' के रचनाकार ने स्वीकार किया है कि आज विषयों की कमी नहीं अपितु उसके सफल सर्जक की है। अनेक लम्बी तथा छोटी कविताओं में उनका काव्य-व्यक्तित्व बहुआयामी, संघर्षशील, टूटने पर भी जुड़ने का साहस करता अग्रसर होता है। कविताओं में भी छिपे रहने पर वह सही रूप में नहीं पहचाने जा सके। इस परिप्रेक्ष्य में भी यही कहा जा सकता है कि कमी उनके चित्रों की नहीं अपितु पारखियों की है जो उनके कवि को पूर्णतः पहचान सकें।

'यह व्यक्तित्व स्वयं एक ऐसा नैतिक मूल्य था जिसके सम्पर्क में आकर जीवन की वास्तविकता अपने असली रूप में प्रकट होती है। अपनी अक्षमताओं के सम्बन्ध में जागरूक होने से यह विद्रोही व्यक्तित्व मानव जीवन की अक्षमताओं की ओर × × क्षमाशील दृष्टि से ही देखा जाता है।[1] पूँजीपतियों के प्रति अनुदार किन्तु दीनों के प्रति मानवतावादी दृष्टि मुक्तिबोध की प्रवृत्ति रही है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि जबलपुर, नागपुर अथवा भोपाल में रहते हुए जब भी कभी निकटवर्ती मित्र, स्नेही से बहस का अवसर आता था घंटों बहस करते थे। उनके अंदर हमेशा ज्ञान-विज्ञान का उद्दाम ज्वार उमड़ता रहता था। हमेशा जैसे मुक्तिबोध फूट पड़ने को व्याकुल हों × + + नागपुर के जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर इस प्रकार महागुरु रात-रात भर ज्ञान-गंगा बहाते रहे हैं।

१. अंतःकरण का आयतन — ग० मा० मुक्तिबोध (चाँ० मु० टे० १६८)
२. मुक्तिबोध (मेरे बड़े भाई,—संपा० लक्ष्मण दत्त गौतम (शरदचन्द्र माधव मुक्तिबोध

उनके व्यक्तित्व में स्थित तिलिस्मी खोह या रहस्यवादी कवि कबीर की तरह अक्खड़पन है किन्तु परवर्ती रचनाओं में कुछ दहशत, भय, अज्ञात हॉरर व्याप्त है। इस सम्बन्ध में एक स्थल पर हरिशंकर परसाई ने लिखा है कि 'वह कभी-कभी रात में सोते हुये जमीन से उछलकर नीचे आ गिरते थे।' कृतियों मे भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा रचनाकार लम्बी कविताओं के लम्बे-लम्बे कथन में जब (बर्नार्ड शा और गाल्सवर्दी के नाटकीय डायलॉग की तरह) कहना आरम्भ करता है तो वह भूल जाता है कि वह जिस पाठक या श्रोता के लिये रचना कर रहा है वह इतनी दूर तक रचना में सहभागी नहीं होगा या रचना प्रेषणीय नहीं होगी, ...अथवा उनकी सिद्धान्त की पकड़ पाठक की समझ से बाहर होगी। कविता में भी वही जोशी, माचवे, ने मिचंद्र जैन के साथ की बहस अथवा विद्रोही जीवन के स्तर का श्रोता मानना जैसे उनका एक मीनिया हो। अकथनीय रचना की तरह उनकी कविता भी कभी न समाप्त होनेवाली जय-यात्रा का एक चरण है —'एक शाश्वत चरण'।

मुक्तिबोध ने प्रगतिवादी रचनाकारों के साथ प्रगतिशील कवि के रूप में कविता में पदार्पण किया था किन्तु प्रयोगवादी काव्यधारा के पुरोधा बन गये। 'नयी कविता' ने उन्हें तथा उन्होंने नयी कविता को अपने युग की आवश्यकता कहकर उसकी विशद व्याख्या की तथा समीक्षात्मक निबन्ध लिखकर नये कवियों के महागुरु बनने का गौरव प्राप्त किया। महागुरु और महामानव की उपलब्धियाँ उन्हें विद्रोही जीवन दे सकीं।

'भूरी-भूरी खाक धूल' तथा उनकी लम्बी कविता 'अंधेरे में' चकमक की चिनगारियाँ, चम्बल घाटी, स्वप्न कथा आदि में बहुत से बिम्ब बार-बार पुनरावृत्त हुए हैं साथ ही कवि की मनःस्थिति अर्द्धविक्षिप्त जैसी लगती है। इस सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्रदेव ने कहा है कि 'मुक्तिबोध ने दुनिया भर को दुश्मन समझने की 'सेपरेटिस्ट' की वृत्ति पाली है'[२] इस प्रवृत्ति का कारण था उनका लम्बे समय तक क्रान्तिकारी पार्टी से जुड़ना, 'नयाखून' का सम्पादन तथा सी० आई० डी० की निगाह से बचकर-भूमिगत रहकर साम्यवादी साहित्य का प्रचार प्रसार। अध्यापन के साथ-साथ सक्रिय रूप से कम्युनिस्ट कार्य-कर्त्ता रूप में उनमें एक भय-अज्ञात भय व्याप्त हो गया जो उनके व्यक्तित्व का अंश बनकर उनकी रचनाओं में अनेक रूपों में झाँकता रहा।

'पत्रकारिता' ने कवि मुक्तिबोध को आत्मविश्वास तथा भयानक सत्य को भी मुँह से निकालने की शक्ति प्रदान की है। स्वामी कृष्णानन्द सोख्ता के सम्पर्क में आकर 'नयाखून' निकालकर मुक्तिबोध ने 'हंस' के सम्पादन-समय के लिए उत्साह अर्जित किया। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व ने 'नयाखून' के माध्यम से महाकौशल छत्तीसगढ़, बरार के पिछड़े क्षेत्र में जागृति उत्पन्न की। इसी पत्र के माध्यम

से ही श्रीकांत वर्मा, नरेश मेहता, प्रमोद वर्मा, प्रभाकर माचवे, हरिशंकर परसाई, हरिव्यास आदि से उनके परिचय-क्षेत्र में व्यापकता आई। पत्रकारिता से ही मध्यप्रदेश के भूतपूर्व गृहमंत्री तथा बाद के मुख्यमन्त्री पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र से उनकी निकटता हुई। उन्होंने 'प्रकाश' और 'सारथी' को प्रकाशित करने की योजनायें बनाई किन्तु लम्बे समय तक मुक्तिबोध सरकारी लेखन की परतन्त्रता से कतराते रहे। विवशता में नागपुर के सूचना-विभाग में, रेडियो के समाचार विभाग में तथा राजकीय पत्रिका के सूचना एवं प्रसारण विभाग में न चाहकर भी कार्य करना उनके विद्रोही, आत्मकेन्द्रित तथा निर्वासित बनने का कारण है।

सरकारी तन्त्र से जुड़ना उनकी प्रकृति नहीं थी किन्तु जिन विवशताओं में वे जुड़े उसका भी कारण है। मानसिक तथा नैतिक रूप से लगन और ईमानदारी से उन्होंने कार्य भी किया किन्तु मन के किसी कोने में ये कचोटनेवाले विचार भी बैठे थे। आरम्भ का कम्युनिस्ट, प्रगतिशील कवि एवं पत्रकार और 'हंस' जैसी साहित्यिक पत्रिका में तटस्थ समाचार देनेवाला जब सरकारी तन्त्र से जुड़कर सामान्य मनुष्य के बीच में सूचना प्रसारण विभाग के कर्मचारी रूप में अथवा रेडियो के समाचार विभाग का कार्य करेगा तो उसे यह जीवन कितना रास आयेगा ?

'उनकी आत्यंतिक आत्मनिष्ठ प्रवृत्ति और उग्र आत्माभिमान उन्हें प्रत्यक्ष पारिवारिक जीवन से और उसके बन्धन से दूर ढकेल दिया करता था। × × × वे नौकरी करते थे। मित्रों में रहते थे × × लेकिन अपनी जीवन पद्धति के कारण शायद उनसे पूरी तरह आंतरिक तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाते थे।' 'मेरा दावा है कि बिना उन्हें देखे इस बात की कल्पना ही नहीं की जा सकती है कि एक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व इतना शांत और संयत हो सकता है। अफसोस! वे बुद्धि की जिस ऊँचाई पर खड़े थे, उसे इस बीच काफी रौंद डाला गया है। × × × मेरे विचार से वे अन्दर के हर-क्षण चिन्तन का द्वन्द्व झेलते थे।[१]

रक्तालोक स्नात्-पुरुष के रहस्य के उद्‌घाटन में उनकी कविताओं में आये हुए कुछ प्रतीक, बिम्ब, अप्रस्तुत-विधान विराट् मुक्तिबोध के लघु-लघु रूप हैं जो उन कृतियों में आकार-साइज रूप आदि की सीमा पारकर टूटते हुए अथवा टूट गये आकार के अंश में विद्यमान हैं। अस्तित्ववादी, अतियथार्थवादी मानवतावादी, मार्क्सवादी की अपेक्षा हम उनको एक अलग कोटि रखना चाहेंगे क्योंकि प्रतिभा-सम्पन्न रचनाकार की प्रतिभा उसे हर बंधन से दूर ले जाना चाहती है और उसकी विवशता जीवन संदर्भों से जोड़े रहना चाहती है। इसी अस्मिता और अनस्मिता के अन्तर्द्वन्द्व में रचनाकार जीवन के दो विपरीत बिन्दुओं के बीच अनेक तीखे कड़वे

१ मुक्तिबोध प्रजा की सूली पर— [सम्पादक] लक्ष्मण दत्त गौतम ५

अनुभवों की जिन्दगी जीता है तो कभी सुखद भविष्य की आशा में आनेवाले समय के प्रति आश्वस्त और आशावादी बन जाता है। मुक्तिबोध के भविष्य का यही द्वन्द्व उनकी रचना धर्मिता का अंग बन गया है। चाहे समीक्षा हो या पत्रकारिता, कविता हो या उपन्यास- सबमें एक ही व्यक्तित्व की छाप है। वही मुक्तिबोध का असली रूप है जिसे हम मूलतः मुक्तिबोध कह सकते हैं। आधार या फलक (शीशे) के रंग से बिम्ब का प्रतिबिम्ब अनेक रंग रूप आकार ग्रहण करता है जो अलग-अलग कोण से अलग दिखाई भी पड़ता है। दिखाई पड़नेवाले ये सिद्धान्त उनके लिये कई फलक या दर्पण हैं और उनकी कृतियों का जगत धीर गम्भीर महान सरोवर में घाट-घाट की घुमावदार सीढ़ियों के गहरे-गहरे जल में झाँकता हैं। लाल, नीला, धूप से भूरा काला आदि अनेक रंग हो सकते हैं। 'चाँद का मुँह टेढ़ा हैं' में उनके सभी रहस्यो का प्रतिनिधित्व होता देखा जाता है किन्तु इन सभी रूपों से मुक्तिबोध की एक दूरी बराबर बनी है। यह दूरी ही उन्हें कालजयी बना देती है। व्यक्ति-मुक्तिबोध निराला का सहचर बन सकता है—

अतल-तले पड़ा हुआ
किरणीला एक दीप्त
प्रस्तर—युगानुयुग
तिमिर-श्याम सागर के विरुद्ध निज आभा की /
महत्वपूर्ण सत्ता का प्रतिनिधित्व करता हो आज भी /
सम्भव है वह पत्थर / मेरा ही नहीं वरन् पूरे
ब्रह्माण्ड की केन्द्र क्रियाओं का तेजस्वी अंश हो /"[1]

'मुक्तिबोध के काव्य व्यक्तित्व के इन रूपों पर विचार करते हुए डॉ० राम विलास शर्मा ने कहा है कि—अर्द्ध विक्षेप की प्रारम्भिक अवस्था में ऐसे क्षण आते हैं जब पीड़ित व्यक्ति को यह दिखाई देता है कि उसका व्यवहार असामान्य हैं। कविता के नायक की यही स्थिति है जैसे 'पागल' अपना खोया हुआ व्यक्तित्त्व रात में पा जाता है। वह भीतर से पूरी तरह विभाजित हो चुका है। विभाजित व्यक्तित्व का लक्षण मानसिक असन्तुलन का सूचक है।'[2]

इस प्रकार उनके 'काव्य-व्यक्तित्व' कवि व्यक्तित्व ईमानदार रचनाकार, अति यथार्थवादी कलाकार आदि रूपों में एक समानता का सूत्र विद्यमान है। कविताओं की अति गहराई में जाकर इन रूपों को भली भाँति पहचानने का अवसर मिलता है। समकालीन समीक्षा प्रक्रिया में जब बिम्ब एवं प्रतीक आदि मनोवैज्ञानिक समीक्षा के

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—(पृ० १७५)
२. नयी कविता और अस्तित्ववाद—डॉ० राम विलास शर्मा (पृ० २१२)

आधार बनाये जा रहे हैं तो व्यक्तित्व विश्लेषण सबसे सार्थक एवं वास्तविक आधार हो सकता है। कविता-यात्रा के क्रम में मुक्तिबोध का व्यक्तित्व भी विकसित एवं निर्मित हुआ है। स्वतंत्रता के पूर्व वे एक आत्मग्रस्त विद्रोही तथा एकान्त प्रिय व्यक्तित्व के थे किन्तु स्वतन्त्रता के बाद पूर्णता की कल्पना उनमें जगी है। 'अंधेरे में' कविता में 'मनु', 'गांधी', 'तिलक' आदि के आदर्श चरित्र उनके व्यक्तित्व की पूर्णता को प्रस्तुत करते है। डॉ० रामविलास शर्मा ने इस कविता के 'कौन मनु' का अर्थ 'कामायनी के नायक मनु' किया है; जिससे पूर्ण सहमत होकर यह स्वीकार किया जा सकता है कि श्रद्धा, आस्था समर्पण एवं विश्वास व्यक्तित्व की दृढ़ता के परिचायक गुण हैं। प्रेम का यह जगत उनके ऐसे मन से भी परिचय कराता है जो कामायनी के चिन्ता-ग्रस्त मनु से मिलता-जुलता है। निराश, आकुल, आशंकाग्रस्त व्यक्तित्व की चरम परिणति एक आदर्श रूप में भी देखी गई है। एक 'स्वप्न-कथा', 'मुझे पुकारती हुई पुकार' मुझे याद आते हैं, आदि कविताओं में भी 'अंधेरे-में' के 'मनु' का व्यक्तित्व प्रभावकारी रूप 'अव्यक्त' से व्यक्त होता है जिसे कि 'व्यक्तित्वांतर' की अवस्था कहा जा सकता है।

मुक्तिबोध की कविता में विद्यमान व्यक्तित्व अतुलनीय अद्भुत, पूर्ण तथा व्यक्त है। उसके विलोम का चित्र कविताओं में अधिक है किन्तु आदर्श रूप भी कहीं-कहीं झाँकता है जो 'मनीषा' का लक्ष्य है।

३—मुक्तिबोध की कविता :
गुथन उलझाव के नक्शे

ज्वलन्त अनुभव
ऐसे कि विद्युतधाराएँ झकझोर
ज्ञान को वेदन-रूप में लहराएँ
ज्ञान को पीड़ा
रुधिर प्रवाहों की गतियों में परिणत होकर
अन्तःकरण को व्याकुल कर दे—

—चाँद का मुँह टेढ़ा है

मुक्तिबोध की कविता करुणा, कसक, अवसाद एवं संत्रास के अंधेरे में आत्म-संघर्ष की ज्योति जलाकर किया गया प्रकाश है जिससे एक व्यापक भूमण्डल आच्छादित है। इनकी कविता के जगत में उच्चावच्च धरातल, पहाड़, पठार, मैदान, तिलिस्मी खोह, अँधेरा घुमावदार गुफायें, घाटियाँ एवं बावड़ियाँ है। तेज धारा की कटान वाली नदियाँ, गहरे खड़े किनारे, घने जगल में नीलिमा युक्त पेड़ भी इसमे हैं जिन पर आशा की किरण पड़ने पर हरीतिमा फैल जाया करती है। अज्ञात-पथ, अनिश्चित दिशा, सुनसान बियाबान की साँय-साँय आवाज के अतिरिक्त सस्पेन्स, रहस्य, हॉरर एवं दहशत का वातावरण कविता के भौगोलिक अध्ययन की प्रेरणा देता है। इस जगत के वायुमण्डल में होने वाले शीघ्र परिवर्तन, उल्कापात, ज्वालामुखी के उद्गार, ग्रहों की टकराहट, संघतिभेदन तथा एलेक्ट्रान न्यूट्रान एवं प्रोट्रान सदृश अणु-परमाणुओं की दशा-दिशा एवं सम्भावनाओं से पाठक में भय, विस्मय, कुतूहल, आश्चर्य एवं जिज्ञासा की उद्भावनायें होती हैं।

मुक्तिबोध की काव्यसृष्टि एवं दृष्टि पर टिप्पणी करने से पूर्व एक क्षण के लिए रुक कर सोचना और समझना पड़ता है कि जो कहा गया है उसे दुहराना पिष्ट-पेषण होगा और जो स्थापनायें की जाती है उनमें कवि का अनुभूत सत्य आयेगा अथवा नहीं। उनकी कविता शास्त्रीय मान्यताओं से ऊपर, प्रतिमानों से परे, स्थापनाओं से बढ़कर अपने ढंग की अनोखी है। बाहर से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन की विसंगतियाँ तथा अन्दर से अधिक से अधिक अभिव्यक्ति का प्रयास कवि को दुहरा-तिहरा संघर्ष झेलने के लिये विवश करता है। "रचने वाली बुद्धि और सोचने वाली मनीषा के बीच की दूरी"[1] कविता में 'फैन्टेसी' बनकर आती है। अज्ञेय ने सर्जना की इस प्रक्रिया को आत्मचेतस् को विश्वचेतस् से जोड़ने की प्रक्रिया कहा है।[2] ग्रह, उपग्रह, चाँद और सितारे जिस प्रकार गुरुत्वीय बल से आबद्ध रहते हैं उसी प्रकार इनके काव्य में बिखरे हुए प्रतीक, बिम्ब एवं शब्द-चित्रों में एक अदृश्य सिद्धान्त-सूत्र विद्यमान है।

काव्य-जगत तथा उसके भूमण्डल एवं वायुमण्डल में विद्यमान 'प्रतीकों एवं बिम्बों के असंवृत रूप' में विद्यमान [illegible] की जानकारी के लिए उनकी कविता, समीक्षा, कहानी और डायरी के पन्नों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। उनकी अधिकांश कविताएँ भौतिक विज्ञान गणित तथा तर्कशास्त्र के हल की तरह है जिन्हें समझने के लिए उनके सूत्रों की जानकारी आवश्यक है। 'भयानक खबर' के रूप में

---

१. भवन्ती—अज्ञेय

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य—अज्ञेय

विद्यमान कविता का कथ्य उसका अनुभूत सत्य है[1] किन्तु उसमें उलझी हुई संवेदनाओं का अंश इतना अधिक है कि वाणी की महाकाव्य पीड़ा में प्रवेश करना ही दुस्तर होता है। गहन से गहनतर एवं तीव्र से तीव्रतर होते हुए तूफान काव्य-जीवन की जय-यात्रा को लघुमानव की 'यातनाग्रस्त-जिजीविषा' बना देते हैं। इस सम्बन्ध मे मानवीय यातना का एक उदाहरण उल्लेखनीय है—

> खून भरे बाल में उलझा है चेहरा
> भौंहों के बीच में गोली का सुराख
> खून का परदा गालों पर फैला
> होठों पर सूखी है कत्थई धारा
> फूटा है शीशा नाक है सीधी।
>
> —चाँद का मुँह टेढ़ा है – पृ० २७४

आक्रमण की गोली से छेद डाला गया चेहरा, बहकर सूखा हुआ काला खून, मृत होठों का स्याह—कत्थई रंग, टूटा शीशा और सीधी नाक वाला चश्मा, एक विद्रूप डरावना दृश्य प्रस्तुत करता है। मृत शव के पोस्टमार्टम सदृश यह काव्यांश या अपराध-शाखा के अधिकारी की रिपोर्ट की तरह उनकी काव्यपंक्तियों की मूल-संवेदना 'लोकजीवन के जासूस' का परिचय कराती है।[2]

वैविध्य की दृष्टि से अतिव्यापक अप्रमेय, अज्ञेय, अथाह कविता की गहराई मे पैठना तिल में नहीं बालू में तेल निकालने का प्रयोग है किन्तु आज के इस अनुसन्धान के युग में अर्थवत्ता की खोज करनी ही होगी। डॉ० रामविलास शर्मा की दृष्टि में इनकी कविता में अस्तित्ववाद एवं नव-रहस्यवाद की अभिव्यक्ति है, कुबेरनाथ राय की मान्यतानुसार अवचेतन की दमित भावना की प्रतिक्रिया है तथा हरिशंकर परसाई उसमें अतीव कष्ट झेलने की परिणति देखते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उनकी कविता में ऊबड़खाबड़पन, चिल्लाहट एवं झल्लाहट को स्वीकार करते हुए भी उन्हें निराला और राहुल के स्तर का कवि एवं लेखक माना है।[3] सधे हुए कलाकार की सिद्धहस्त शिल्पविधि का अभाव देखते हुए भी बाजपेयी जी ने यह स्वीकार किया है कि "विद्रोह और नयेपन में उनकी ख्याति है और रहेगी, परन्तु काव्य-संस्कार के लिये अधिक समय की अपेक्षा थी।"[4] इसके विपरीत डॉ० रामविलास शर्मा मुक्तिबोध की काव्यकला को क्रमशः विकसित होती हुई मानते हैं। पूर्ववर्ती कविताओं की अपेक्षा परवर्ती कविताओं में डॉ० शर्मा आत्मगत भाव मनोदशा और

---

१. नयी कविता का आत्मसंघर्ष—मुक्तिबोध
२. मुक्तिबोध : लोकजीवन का जासूस—रमेशकुन्तल मेघ
३. नई कविता—(आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी) सं० डॉ० शिवकुमार मिश्र
४. नई कविता—(नन्ददुलारे बाजपेयी)—सं० डॉ० शिवकुमार मिश्र

निकटवर्ती परिवेश का सफल चित्रण देखते हैं।'[1] समीक्षकों की इन स्थापनाओं के अतिरिक्त मुक्तिबोध की कविताओं की श्रेष्ठता अब सर्वमान्य हो चुकी है। नयी कविता की प्रवृत्तियों का सर्वाधिक सफल चित्रण इन्हीं में मिलता है। 'मुझे पुकारती हुई पुकार', 'चकमक की चिनगारियाँ, '(आशंका के दीप) अँधेरे में' का सर्जक समाज की सारी विडम्बनाओं को आत्मसात करके जन-जन के लिए समाधान प्रस्तुत करता है। 'वह तोड़ती पत्थर' के निराला का इलाहाबाद का पथ प्रशस्त कर उज्जैन, मालवा छत्तीसगढ़ एवं शुजालपुर की ग्रेनाइट-नीस, बाक्साइट आदि कठोर चट्टानों को तोड़कर पथ-निर्मित कर नयी कविता को मध्यभारत तक पहुँचाने का श्रेय मुक्तिबोध को है।

पत्थर को तोड़कर पथ-निर्मित करने के लिए पुराने मठ, गढ़, दुर्ग, को ध्वस्त कर दुर्गम पठारों पहाड़ों के उस पार जाकर मुक्तिबोध के काव्य-पुरुष ने गलन, जलन, ठिठुरन एवं कष्ट झेला है। निराला की भावधारा कभी 'यौवन मद की बाढ़' थी किन्तु मुक्तिबोध की इस धारा में ज्वालामुखी का लावा तथा चट्टानों का तप्तद्रव विद्यमान है। विषम परिस्थितियों के सतत् परिवर्तन से प्रस्तरीभूत द्रव गलकर कीर्तिनाशा कर्मनाशा कालचक्र प्रवाहिनी सरिता के प्रवाह से रेत नहीं हुआ है अपितु वह दीप बना है—आशंका का दीप—चौड़ा ऊँचा टीला।

प्रयोगवाद और नयी कविता का युगबोध मुक्तिबोध की कविता में स्वतंत्रता के पूर्व के भारत की परिस्थितियों का गहन प्रभाव एवं बेबाक चित्रण है। तुलसी के 'सोइ आपुनि पहिचानैं' सदृश आत्मज्ञान नयी कविता का आत्मगत सत्य है। मुक्तिबोध का व्यापक अध्ययन, गहन मनन एवं चिन्तन तथा उनका जीवन-दर्शन नव्य मानवतावाद एवं सौन्दर्यबोध के बीच तना हुआ वितान है। प्रगतिशील कवियों में अधिक प्रगतिशील प्रयोगवादी कवियों में अधिक प्रयोगधर्मी, नयी कविता के आत्मसंघर्ष से प्रभावित मुक्तिबोध की कविता छायावादोत्तर युग की सर्वाधिक सशक्त एवं जीवन्त रचना है। अकविता, अ—अकविता, बीटनिक कविता, भूखी पीढ़ी की कविता तथा साठोत्तरी कविताओं के मूल उत्स हम उनकी कविता में खोज सकते हैं।

दहशत, सिहरन, कम्पन, चीख-चिल्लाहट, कर्फ्यू, मार्च आदि को चित्रित करने में मुक्तिबोध का काव्य-पुरुष सदैव संघर्षरत देखा जाता है। आत्मिक स्तर पर झेला गया संघर्ष वैश्विक स्तर पर आने के लिए बेताब है किन्तु इससे कविता का रूप और शिल्प ध्वस्त हो जाता है। रूप और शिल्प की यही टूटन और बिखराव 'नयापन' है। कविता की बुनावट और बनावट में संश्लिष्ट रत्नकण ग्रामीण परिवेश से खोजा गया है।' अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन, वीरेन्द्रकुमार जैन, शमशेर, भवानी प्रसाद

1. नयी कविता और अस्तित्ववाद—डॉ० राम विलास शर्मा—पृ० २२७

मिश्र आदि कवियों की समकालीन कविता से अलग मुक्तिबोध की कविता मे 'संवेदनात्मक-ज्ञान' का ज्ञानात्मक संवेदन देखा जाता है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' के प्रकाशन काल तक वे एक सिद्धहस्त कवि के रूप में स्थापित हुए हैं।

जीवन के 'अनुभूत सत्य' को 'आत्मगत सत्य' के रूप में प्रस्तुत करना उनकी दृष्टि में अभिव्यक्ति का खतरा उठाना है। यह खतरा मुक्तिबोध ने उठाया भी है किन्तु जिस 'भयानक बात' को उन्होंने स्वयं प्रसूत कहा है उसमें लगातार काट-छाँट, संशोधन परिवर्धन एवं परिवर्तन देखा जाता है। 'काव्यात्मन् फणिधर' सदृश नागात्मक कविताओं का स्रष्टा विकृताकृतिबिम्बा सर्जना में सायास कर्मरत है।

कभी मांसपेशियों के लौह कर्मरत
मजूर लोहार के अथाह बल
प्रकाण्ड हथौड़े की
दीख पड़ती चोट।
निहाई से उठती है लाल-लाल
अंगारी तारिकायें बरसती हैं जिसके उजाले मे कि
एक अति भव्य देह
प्रचंड पुरुष श्याम
मुझे दीख पड़ता है।[१]

मजूर लोहार निर्माता है जो आवश्यकतानुसार भलीभाँति तपाकर प्रकाण्ड हथौड़े से चोट करके अनगढ़ आकार रहित लौह को आकार प्रदान करता है। तप्त लोहे से निकलने वाला लाल-लाल तारिकाओं का प्रकाश प्रचण्ड पुरुष का भी दर्शन कराता है। यही सर्जना का दुहरा संघर्ष है जिससे क्रान्ति के देवता का भी दर्शन होता है। अतः इस रचना प्रक्रिया के बाद ढली, गढ़ी, निर्मित कविताओं के रूप और शिल्प को देखकर कैसे यह स्वीकार किया जाय कि यह कविता स्वयं निर्मित अथवा स्वतः निर्मित है। चेहरे के अन्दर झाँकता चेहरा, भीड़-भाड़ में खोया हुआ लघुमानव, क्षत-विक्षत लहूलुहान एवं पस्त है किन्तु अपने बिखराव के लघु आकार में भी एक 'ब्रह्म-राक्षस'' की तरह अमर है। उनका कहना है कि "मुझे लगता है कि मन एक रहस्यमय लोक है, उसमें अँधेरा है, अँधेरे में सीढ़ियाँ हैं, सीढ़ियाँ गीली हैं। सबसे निचली सीढ़ी पानी में डूबी है। वहाँ अथाह काला जल है, इस जल में स्वयं को ही डर लगता है। इस अथाह काले जल में कोई बैठा है, वह शायद मैं ही हूँ।"[२] इसी से मिलता-जुलता आकार 'ब्रह्मराक्षस' का है जो बावड़ी के गहरे श्याम जल में स्नान करता देखा जाता

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—'मुझे याद आते हैं'—पृ० सं० ८०
२. एक साहित्यिक की डायरी—मुक्तिबोध—पृ० सं० ४

है ।[१] नीलिमा, श्यामता, गहराई, हरीतिमा से कवि का बड़ा लगाव देखा जाता है। इसीलिए जब भी गम्भीर बात कहनी होती है, कवि उसे स्याह अथवा काले रंग में रँगकर प्रस्तुत करता है। 'एक स्वप्न कथा' चकमक की चिनगारियाँ', 'अँधेरे में' के अतिरिक्त अन्य लम्बी कविताओं में व्याप्त गम्भीरता का वातावरण उनकी तूलिका से सुर्रियलिस्टिक कला के रूप में उकेरा गया है जिसकी प्रशंसा डॉ० जगदीश गुप्त ने मुक्त कण्ठ से की है।[२] काल-चक्र के अत्याचारी की बन्दूक की आवाज में खोई हुई पुकार सुनकर आये हुए काव्यपुरुष ने मानव के मृत चेहरे पर स्याह रक्त देखकर गोली से छलनी हुए उसके शव की जान-पहचान में उसे 'आम आदमी' कहा किन्तु उस पर हुए इस अत्याचार को वह किससे कहे—

मेरा सिर गरम है
इसीलिए भरम है
सपनों में चलता है।
विचारों की अवलि में चिन्तन
निजत्व माफ है बेचैन
क्या करूँ ? किससे कहूँ ? कहाँ जाऊँ ?
दिल्ली ?··· या ··· उज्जैन ?[३]

एक बेचैनी, कसमसाहट, असह्य पीड़ा की सर्जना करने वाला मुक्तिबोध जहाँ भी लेखनी चलाता है सब कुछ लिख जाता है—अपने रक्त की बूँद को स्याही के रूप में प्रयोग करके भी।

मुक्तिबोध ने सुझाया है कि नयी दृष्टि को जानने के लिए 'तोड़ने होंगे मठ और दुर्ग सब, जाना होगा दुर्गम पठारों पहाड़ों के उस पार × × × जहाँ समाधान का 'अरुण कमल' विद्यमान है। इसी प्रकार वादग्रस्त एवं सौन्दर्याभिरुचि की रूढ़ मान्यतायें उन्हें स्वीकार नहीं थी, यह उनके विचारों से प्रकट हो जाता है—"ये सौन्दर्यवादी लोग यह भूल गये कि बंजर काले स्याह पहाड़ में भी एक अजीब वीरान भव्यता होती है, गली के अँधेरे में उगे छोटे से जंगली पौधे में भी एक विचित्र संकेत होता है। विशाल व्यापक मानव-जीवन में पाये जाने वाले भयानक संघर्ष के रौद्र रूप तो उनकी सौन्दर्याभिरुचि के फ्रेम के बाहर थे।"[४]

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—ब्रह्मराक्षस—मुक्तिबोध
२. नयी कविता—स्वरूप और समस्यायें —डॉ० जगदीश गुप्त पृ० २६६।
३. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० २६१
४. नयी कविता का आत्मसंघर्ष-मुक्तिबोध—पृ० सं० १३।

मुन्शी प्रेमचन्द ने भी इसी प्रकार अपने जीवन के वीरान जंगल एवं ऊबड़-खाबड़ स्थलों का संकेत किया है। मुक्तिबोध जिस नवीन सौन्दर्याभिरुचि का उल्लेख करते हैं वह उनकी निज दृष्टि है जो मुन्शी प्रेमचन्द के उपन्यासों में पहले ही आ चुकी है। उपन्यासों में अभिव्यक्ति के लिये पर्याप्त अवसर होता है किन्तु कविता में उसका निर्वाह अति कठिन है। मुक्तिबोध अपनी अभिव्यक्ति की असमर्थता को स्वीकार करके कविता के क्षेत्र को अपूर्ण तथा कहानी एवं उपन्यास को पूर्ण मानते हैं।[1] उनके उस कथन का यह आशय नहीं है कि वे अपने को कविता के क्षेत्र में असफल मानते हैं। अपूर्ण तथा 'असफल' में अन्तर है। 'कवि मुक्तिबोध का काव्य-पुरुष यातना-ग्रस्त संघर्षरत लघुमानव है अतः उसकी जीवन-कविता भी अपूर्ण होगी किन्तु 'अपूर्ण' का अर्थ नगण्य नहीं है। मन की अपूर्णता को पूर्ण आकार प्रदान करने के लिए कलात्मक संवेदन की आवश्यकता होती है। उनके मन तथा विलोम संघर्ष करते हैं। 'है' (अस्मिता) तथा 'नहीं है' (अस्वीकृति, अनस्मिता) के बीच चलनेवाला तनाव कवि को केन्द्र में रखता है—

शब्द तत्पर / अजनबी जोर उन पर /
दिल धँसा कि धँसता गया कि मानों जान गई /
उन हरे-हरे पेड़ों पर उड़ती हुई दिखी /
मुझको सफेद चादर लहराती हुई /
कि मानो कफन ......
जीवन में अपनी कठिन मृत्यु देख ली /[2]

'दिल का धँसना' एक दिवास्वप्न की स्थिति है जिसमें हरे-हरे पेड़, सफेद चादर आशा की सूचक है किन्तु 'मानों जान गई' में अमंगल मृत्यु और निराशा है। कविता में चलते-चलते धड़ से शिलाद्वार का खुलना, भड़ाभड़, फटा-फट दरवाजों का खुलना-बंद होना, पलस्तर का टूटना आकार बनना चित्रित किया गया है। इन पंक्तियों की व्याख्या में दमित वासना अथवा मार्क्सवाद की द्वन्द्वात्मकता के अतिरिक्त मानवीय समस्याओं की प्रधानता है। सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया की मिली-जुली स्थिति इन कविताओं में देखी जाती है।

डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने मुक्तिबोध की कविता में आये सिद्धान्तों की प्रेषणीयता का सवाल उठाया है। उनका कहना है 'कभी-कभी कवि की बात कविता में उतरने के बजाय या अधूरे रूप में उतरने के बजाय कवि के मन में धरी रह जाती है। जिस प्रकार आनंदवाद की बात कामायनी में न होकर कामायनी पर है उसी प्रकार

१. तार सप्तक—(दूसरा संस्करण) वक्तव्य—मुक्तिबोध।
२. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध।

मुक्तिबोध के कृतित्व के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है कि प्रयोगवाद और नयी कविता की अधिकांश प्रवृत्तियाँ उनकी कविताओं में न होकर उनकी कविताओं पर हैं।'[१]

डॉ० मदान ने जिसे 'मन में धरी रह जाती है' कहा है, मुक्तिबोध उसे पहले ही अपूर्ण' कह चुके हैं। विद्वान समीक्षक की यह स्थापना स्वीकार की जा सकती है किन्तु इसे उनकी कुछ ही कविताओं के लिए माना जा सकता है। उनके सम्पूर्ण कृतित्व का अवलोकन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समीक्ष्य कविताओं में नयेपन का आग्रह एवं अतियथार्थवाद की अभिव्यक्ति सफल है। तटस्थ एवं निष्पक्ष समीक्षा के लिए किसी कवि की कुछ कविताओं को सामने रख कर किया गया निर्णय अधूरा होता है। 'किसी कवि के काव्य का मूल्यांकन करते समय उसके सम्पूर्ण कृतित्व (यहाँ तक कि कहानी उपन्यास नाटक को) भी ध्यान में रखना चाहिये।'[२]

मुक्तिबोध की कविता में विद्यमान अभिव्यक्ति की 'ईमानदारी' का आशय समीक्षा में सहायक हो सकता है। 'भूरी-भूरी खाक-धूल' चाँद का मुँह टेढ़ा है' तथा 'प्रतीक' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं की गुत्थियाँ 'एक साहित्यिक की डायरी 'नये साहित्य का सौन्दर्य-शास्त्र' तथा 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' की सहायता से सुलझाई जा सकती हैं। मुक्तिबोध ने विज्ञान के स्नातक मित्र यशराज से अपना वार्तालाप डायरी में लिखा है। 'अभिव्यक्ति की ईमानदारी' के सम्बन्ध में यशराज का सुझाव ध्यान देने योग्य है।[३] मध्यकालीन कविता का दृष्टिकोण 'आब्जेक्टिव' था किन्तु आधुनिकता के आगमन के साथ कविता में 'सब्जेक्टिव' दृष्टि विकसित हुई है और छायावाद युग में कवि का 'मैं' कविता में पूर्णतः विलीन हो गया है। नयी कविता में वस्तुगत दृष्टि का विकास होने के साथ ही वैज्ञानिक सत्य भी कविता में स्थान पाने लगा। यही 'वस्तुगत सत्य' मुक्तिबोध की कविता का सत्य है जिसे 'अभिव्यक्ति की ईमानदारी' के रूप में उन्होंने स्वीकार किया है। 'वस्तुगत सत्य' एवं 'आत्मगत सत्य' का समन्वय 'नयी-कविता' के नये मानव की प्रतिष्ठा एवं स्थापना है। गांधी युग में मुक्तिबोध गांधी-दर्शन से प्रभावित हुए हैं। साथ ही 'जयशंकर प्रसाद' के मनु-मन की शिव संकल्प की धारणा का प्रभाव उन पर है।

"व्यक्तिगत ईमानदारी का अर्थ है—जिस अनुपात में, जिस मात्रा में, जो

---

१. गजानन माधव मुक्तिबोध [सं० लक्ष्मणदत्त गौतम] इन्द्रनाथ मदान (पृ०—९६)
२. नयी कविता का आत्म संघर्ष—मुक्तिबोध—'काव्य एक सांस्कृतिक प्रक्रिया।
३ एक साहित्यिक की डायरी—मुक्तिबोध १२९।

भावना या विचार उठा है, उसको उसी मात्रा में प्रस्तुत करना। जो भाव या विचार जिस स्वरूप को लेकर प्रस्तुत हुआ है, उसको उसी स्वरूप में प्रस्तुत करना लेखक का धर्म है।"[१] व्यक्तिगत ईमानदारी ही मुक्तिबोध की कविता में अभिव्यक्ति की ईमानदारी है जो सपाटबयानी की नयी शैली बन गई है। उनकी कविता की प्रवृत्तियाँ कविता में कम 'कविता पर' अधिक हैं। कविता पर होने की भी असमर्थता का कारण 'एक साहित्यिक की डायरी' में देखा जा सकता है।[२] उनके संवेदना के स्तर की सही पहचान तथा कवि व्यक्तित्व के विभिन्न स्तरों की समझदारी निष्पक्ष समीक्षा में सहायक होती है। आधुनिक युग की समीक्षा प्रणाली का विकास कविता के समानान्तर हुआ है किन्तु रचनाकार के मूल्यांकन के समय वादगत चेतना ही प्रधान रही है। रचनाकार के मन में 'वाद' नहीं कथ्य होता है जिसके माध्यम से वह अर्थवत्ता को समाज सापेक्ष्य बनाता है। ज्ञान विज्ञान की विभिन्न चिन्तनधाराओं का प्रभाव पड़ने के कारण मुक्तिबोध की कविता में भी समाज सापेक्ष्य मूल्य आये हैं।

समीक्ष्य कविताओं के मूल्यांकन के समय उनकी कविता के विकास पर एक विहंगम दृष्टि डालना समीचीन होगा। १९३०–३८ ई० के बीच जब मुक्तिबोध कविता के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए तो उज्जैन, मालवा एवं मध्य भारत में माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, महादेवी वर्मा आदि के रोमानी गीतों का प्रसार था। मुक्तिबोध के काव्य गुरु स्वर्गीय श्री रमाशंकर शुक्ल माखनलाल चतुर्वेदी "स्कूल" के रचनाकार थे। मध्यप्रदेश के इस भाग में छायावाद एवं प्रगतिवादी गीतों का प्रभाव समान रूप से था। तारसप्तक में प्रकाशित गीत 'आत्मा के मित्र मेरे', 'अशक्त' 'मेरे अन्तर' आदि में छायावादी संस्कार पूर्ण रूप में विद्यमान है।[३]

खींच लें हम चित्र जीवन में बहे
रम्य मिश्रित रंगधारा के नवल

× × ×

घर की स्नेहल-कोमल छाया में रहा महा चंचल अधीर।
वे मृदुल थपकियाँ स्नेहभरी,
वे शशि मुस्कानें शुभंकरी,
सबको पाया, सबको झेला पर स्वयं अकेला बढ़ा धीर।[४]

---

१. एक साहित्यिक की डायरी—मुक्तिबोध—पृ० सं० १२८।
२. वही वही पृ० १४२–१४३।
३. पुरानी परम्परा बिल्कुल छूटती नहीं है, पर वह परम्परा है मेरी ही और उसका प्रसार अवश्य होना चाहिए। —तारसप्तक—(वक्तव्य) मुक्तिबोध
४ —पृ० स० ५४ द्वितीय

किशोर कवि की अरम्भिक आवस्था का परिचय इन कविताओं से होता है। 'मेरे अन्तर' कविता में अपना परिचय उन्होंने आत्मकथा की शैली में दिया है। "ऐसा प्रमत्त जिसका शरीर, उन्मत्त प्राण-मन विगत पीर" वाला कवि ईश्वर का संहारक बनकर भी निज ईश्वर पर स्नेह करता है। चेतना की किरणें इन्हीं दिनों अन्तर्मन में प्रज्ज्वलित हुईं जो तीव्रतर होती गईं। अब तक उन पर परम्परित कविता का शुद्ध संस्कार था जो मार्क्सवाद के प्रभाव से स्थानान्तरगामी प्रवृत्ति के रूप में देखा गया। जिन प्रवृत्तियों के आधार पर मुक्तिबोध की कविता की व्याख्या और समीक्षा का सिलसिला शुरू हुआ वे परवर्ती कविताओं में है।

'तारसप्तक' में वे कवितायें भी हैं जिनमें उनकी प्रकाशित दृष्टि का मूल रूप देखा जाता है। कवि से कहानीकार और पत्रकार बनने तक उनकी दृष्टि परिवर्तित होने लगी थी। कृष्णानन्द सोख्ता के 'नया खून' में कार्य करते-करते तथा कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय कार्यकर्त्ता के रूप में नयी प्रवृत्ति उनमें प्रौढ़ हुई—

> एकाएक मुझे भान होता है जग का
> अखबारी दुनियाँ का फैलाव, फँसाव, घिराव तनाव है सब ओर
> पत्ते न खड़के / सेना ने घेर ली हैं सड़कें /
> बुद्धि की मेरी रग / गिनती है समय की धक-धक /
> यह सब क्या है ?
> किसी जन क्रान्ति के दमन निमित्त यह / मार्शल ला है।[१]

महात्मा गांधी के आंदोलन के साथ ही सुभाषचन्द्र बोस का बढ़ता हुआ प्रभाव तथा 'करो या मरो' की प्रवृत्ति का विकास इस कविता में विद्यमान है। भयंकर मँहगाई, स्वतंत्रता आंदोलन को अंग्रेजों द्वारा कुचलने का प्रयास, बंगाल का अकाल उनके मानस में पैठ कर परवर्ती रचनाओं की पृष्ठभूमि रचता रहा। आदर्श का संस्कार किशोर में था, यथार्थ का प्रभाव पत्रकार एवं अध्येता ने प्राप्त किया। आदर्श और यथार्थ की संश्लिष्ट अवस्था में प्रौढ़ रचनाकार मुक्तिबोध का उद्भव उनकी कविताओं में प्रकट हो जाता है। "उनके हृदय में आदर्शों के रोमांस घर किये हुए थे। उनके विचार तेजी से भौतिकवाद की ओर झुक रहे थे। उन्होंने युंग और एडलर को खूब पढ़ा था। वस्तुतः वे बौद्धिक और मनोवैज्ञानिक ऊहापोह में जीते थे।[२] टालस्टाय की मानवतावादी दृष्टि तथा महादेवी वर्मा की विरहजन्य करुणा का प्रभाव

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है – मुक्तिबोध—पृ० सं० २५८।
२ (क) चाँद का मुँह टेढ़ा है (एक विलक्षण प्रतिमा शमशेर बहादुर सिंह
ख) तार सप्तक (वक्तव्य ० ४१।

साथ-साथ इन पर आया है। 'तार सप्तक' के दूसरे संस्करण में प्रकाशित 'एक आत्म वक्तव्य' उनकी कविता-यात्रा का विकास चरण प्रस्तुत करता है—

काली काली गलियों में
फिरती हुई आदमी की शक्ल
अच्छा है कि अँधेरे में इलाका बदर
मैं हूँ जवाबी गदर
जिससे कि और ज्यादा तैयारियाँ कर
आज नहीं कल फूट पड़ूँगा जरूर

'अपने कवि से' 'भूल गलती' तथा बंगाल के अकाल पर लिखी गई उनकी कविताओं में उनका मध्यमसार्गीय रूप देखा जा सकता है।

मुक्तिबोध की कविता पर उनके अध्ययन, मनन और चिन्तन का गम्भीर प्रभाव है। कहीं तो इन सिद्धान्तों के सूत्र ही काव्य-पंक्तियों में व्याख्यायित हुए हैं कविता उसी में दब गयी है। पत्रकार मुक्तिबोध का प्रभाव तथा गुमनाम-पत्रकारिता से प्रभावित कवि आवश्यकता से अधिक गोपनीयता एवं गम्भीरता से युक्त है। आरम्भिक मार्दव और सौन्दर्यमयी चेतना की प्रतिक्रिया धीरे-धीरे 'स्टेटमेन्ट' लिखने की प्रेरणा बन गई। इस दबाव और तनाव से वे स्वप्न में भी मुक्ति नहीं पा सके। लिखकर—रचकर सर्जना करके भी वे सन्तुष्ट नहीं होते और फल यह होता है कि वे सम्पूर्ण काव्य-जगत में अर्द्ध विक्षिप्त, अचेतन, अर्द्धमृत, उदास, सनकी, विद्रोही आदि अनेक रूप धारण करते हैं। समाज में चलते महाभारत में हिडिम्बा बनना आत्मसम्भवा की विवशता है। फणिधर की फुफकार के बाद उससे प्राप्त मणि की ओर भी खोजी की दृष्टि है। आक्रोश एवं विद्रोह की विडम्बनाओं में जीने वाला रचनाकार छद्मवेशी शिखंडी नहीं अश्वत्थामा बनता है। बाहर और अन्दर की दुहरी जिन्दगी उसे प्रिय नहीं है, वह दो व्यक्तित्व नहीं ओढ़ पाता इसीलिए बेलौस भाषा के टो टूक चोट करने वाले प्रतीकों में रिझाने नही खिझाने-कुरेदने के लिए वह कहता है।[१]

मुक्तिबोध की कविता में विसंगति एवं विडम्बनाओं का स्वर व्यंग्य एवं नाटकीयता की शैली में उभरा है। विलक्षण विसंगतियों के कथन कही विरोधी तो कहीं खण्डित प्रतिमानों से युक्त हैं। विरोधाभास की अर्द्धविक्षिप्तावस्था कवि की मनःस्थिति का परिचय कराती हैं। अँधेरा उनकी कविता का एक ऐसा विषय है जो 'चाँद का

१. जिन्दगी की कोख में जनमा / नया इस्पात /
जिसके खून में रँगकर / तुम्हारे स्वर कहाँ हैं, / ओ।
चाँ० मु० टे०—मुक्तिबोध

मुँह टेढ़ा है' की कई कविताओं में आया है। 'मुझे याद आते हैं' इस चौड़े ऊँचे टीले पर, अंतःकरण का आयतन आदि कविताओं में बार-बार बिम्बों का दुहराया जाना कविता को नीरस एवं शुष्क बनाता है। 'अँधेरे औ उजाले के भयानक द्वन्द्व', 'अध्यक्ष वह मेरी अंधी खाइयों का', 'तिमिर दृश्य आता है,' कथन में अँधेरा ही अँधेरा है। अँधेरी सीढ़ियाँ, आधीरात, इतने अँधेरे में, के अतिरिक्त काले गुलाब, स्याह सिवन्ती, काले डँस सी रात, स्याह समुन्दर, तिमिर श्याम सागर आदि विशेषण एवं विशेष्य युक्त प्रयोग पाठक का परिचय कवि की गहन निराशा की अनुभूति से कराते हैं। दहशत, संत्रास, खौफ, घृणा, अपने से भी लगता डर, अकुलाहट के सूचक है।

डॉ० नामवर सिंह कहते हैं कि 'निराला और मुक्तिबोध ने अपनी बलि देकर कविता को बचा लिया था किन्तु पन्त और अज्ञेय ने अपने को बचा लिया लेकिन कविता की बलि दे दी।' डॉ० सिंह के इस कथन का यह आशय है कि कवि ने अपनी परवाह किये बिना, काव्य—व्यक्तित्व की रक्षा की है। जीवन की उपलब्धि सामान्य लोगों के लिए सौन्दर्य एवं आनन्द प्राप्ति का साधन है किन्तु कवि मुक्तिबोध ने अपने आनन्द की बलि दे दी। उन्होंने अपने जीवन भर आत्म-सत्य की खोज एवं ग्रहण जारी रखा है। खोज के लिए प्रकाश की सहायता लेना उनका लक्ष्य है। जल की गहराई में उतरना, अँधेरे में भटकाव, जंगल की यात्रा सब खोज प्रक्रिया के रूप हैं। सुनहली जलती प्रकाश चिनगारी, चमक, सूर्य आदि में वही क्रिया चलती रहती है—

प्रतापी सूर्य हैं वे सब प्रखर जाज्वल्य /
पर यह क्या अँधेरे स्याह धब्बे सूर्य के भीतर /
बहुत विकराल /[1]

सूर्य के भीतर का स्याह धब्बा प्रकाश में छिपा अंधकार है। बुराई, माया, अज्ञान, गलती मानकर भाष्यकार, ज्ञानी, महर्षि, ज्योतिषी लोग जिसे खोजते आ रहे हैं उसे वैज्ञानिक और गणितज्ञ अपने सूत्र से हल करना चाहते हैं। कवि और कलाकार की सृजन प्रक्रिया की प्रेरणा वही अँधेरा—अभाव है। सत्य की खोज को मुक्तिबोध ने विचार एवं कर्म का द्वन्द्व, प्रकाश व अँधेरे का द्वन्द्व कहा है। उनके शब्दों में—

जहाँ भी डाल दी वह दृष्टि /
संवेदन रुधिर रेखा रंगी तस्वीर तिर आती
गगन पर भूमि पर सर्वत्र दिखते हैं
तड़प मरते हुए प्रतिबिम्ब

१ चाँद का मुँह टेढ़ा है—(१८८)।

जग उठते हुए द्रुत बिम्ब —[१]

अपनी दृष्टि की व्याख्या कविताओं और समीक्षा कृतियों में उन्होंने विविध प्रकार से की है। 'आखिर रचना ही क्यों, 'काव्य एक सांस्कृतिक प्रक्रिया' आदि निबन्धों में वे सूक्ष्म विवेचन द्वारा इसे समझाने का प्रयास करते हैं।

भूमि की सतहों के बहुत नीचे /
अँधियारी एकान्त प्राकृत गुहा एक
विस्तृत खोह के साँवले तल में
तिमिर को भेदकर चमकते हैं पत्थर
मणि तेजस्क्रिय रेडियो-ऐक्टिव रत्न भी बिखरे /[२]

एक साहित्यिक की डायरी में भी इसी प्रकार का एक कथन है—'मुझे लगता है कि भूमि के गर्भ में कोई प्राचीन सरोवर है। उसके किनारे पर डरावने घाट, आतंककारी देव मूर्तियाँ और रहस्य पूर्ण गर्भ कक्षाओंवाले पुराने मंदिर हैं। इतिहास ने इन सबको दबा दिया। मिट्टी की तह पर तह, परतों पर परतें, चट्टानों पर चट्टानें छा गईं।'[३] भूमि के अन्दर का प्राचीन सरोवर अज्ञातलोक है जिसे कविता में कल्पना रूप में तथा डायरी में जिज्ञासा एवं कुतूहल रूप में उन्होंने चित्रित किया गया है। मणि, रत्न, प्रकाश-पुंज आदि 'ज्ञानात्मक संवेदन' के प्रकार हैं जिसकी प्राप्ति हेतु सर्जक अनेक मानसिक यात्रायें करता है। इस प्रक्रिया को न समझने पर ही उनकी कविता में उलझी हुई संवेदना का बाहुल्य देखा जाता है। ऊपर बताई गई अनेक कविताओं में चित्रित उलझनें काव्य-शैली की प्रयोग धर्मिता नहीं अपितु कथ्य की गहरी अर्थवत्ता की सूचक हैं।[४]

उन रत्नों के लिए तुम्हारी व्याकुलतर।
गति सर-सर
जंगल पार।
पुरों नगरों मे आँगन के पीछे।
कचरे के ढेरों में जिनकी
मैली सतहों में फँसा दबा

× × ×

जो मूल सत्य है इस जग के परिवर्तन के /[५]

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध (अंतःकरण का आयतन)/ १८९
२. वहीं वही पृ० सं० २६४।
३. एक सहित्यिक की डायरी—मुक्तिबोध पृ० सं० - २
४. कविता के नये प्रतिमान—डॉ० नामवर सिंह—२१२
५. [illegible]

मणिधारी सर्प उसे उगलकर उसके प्रकाश में ओसकण चाटता है ऐसा एक अन्ध विश्वास है। इस आस्था का प्रयोग करके रचनाकार मुक्तिबोध ने यह बताया है कि जब बाहर निकली मणि को कोई पा लेता है तो सर्प उसके लिए तड़प-तड़पकर अपनी जान तक दे देता है। मुक्तिबोध का काव्य-पुरुष अपनी मणि विह्वल होकर पुर नगर, आँगन, गली, द्वार पर खोजता रहता है। उसे कूड़े कचरों के ढेर में भी रत्न खोजने में कोई संकोच नहीं है। फणिधर की व्याकुलता कवि की व्याकुलता है। कबीर ने तिल में तेल और चकमक की आग की तरह अपने अन्तरमन में स्थित स्वामी निरंजन की पहचान की। मुक्तिबोध का मन फणिधर के रत्न अथवा कुण्डली में स्थिति कस्तूरी के लिए बार-बार चक्कर लगाता है। इस खोज में रचनाकार की उपलब्धि कविता की अर्थवत्ता है जिसे कुबेरनाथ राय ने मात्र दमित वासना की अभिव्यक्ति कहकर रत्न-कण का अवमूल्यन किया है। कबीर की साधना की तरह ही मुक्तिबोध की काव्य साधना है, अन्तर केवल बाहर के ईश्वर और अन्दर के ईश्वर का है।

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ने मुक्तिबोध की कविता को निराला और राजकमल के बीच की कड़ी कहा है। मार्क्सवाद की कँकरीली पथरीली जमीन पर इन रचनाकारों की कविता-यात्रा हुई है। न केवल मार्क्सवाद अपितु कितने ऐसे वाद उनकी कविता में देखे जा सकते हैं। केवल मार्क्सवाद की सीमा मुक्तिबोध की कविता का सीमित पक्ष है। जिस प्रकार कबीर जैसे युगद्रष्टा की कविता को काशी के पण्डितों ने चुनौती दी तो अपने निरंजन के सम्बन्ध में कबीर ने कहा कि जो अवतार में नहीं बँधा, रूप मे नहीं बँधा वह निरंजन संख्या में आकर क्यों अटक जायेगा। इसी प्रकार मुक्तिबोध की कविता को विविधताओं से युक्त मानकर इसकी जितनी भी व्याख्या की जाय कम है किन्तु उसे 'वाद' की सीमा में बाँधना समीचीन नहीं है।

कवित्व में मुक्तिबोध की अस्मिता की पहचान उनकी काव्य-कला की पूर्ण व्याख्या है। 'भूरी भूरी खाक धूल', अथवा 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' की सब कवितायें उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ नहीं हैं। छोटी कविताओं में उनकी अधूरी बातें तथा कलात्मक संवेदन की अपूर्णता दर्शनीय है। लम्बी कविताओं में उनकी विराट-यात्रा है। 'मन' का लघु रूप छोटी कविता में तथा विराट रूप व्यापक कविता में देखा जाता है। 'चाँ० मु० टे०' का प्रकाशन करते समय शमशेर बहादुर सिंह तथा उनके सहायक श्रीकान्त वर्मा ने यह स्वीकार किया था उनकी बहुत सी कवितायें अपूर्ण और असंबद्ध होने के कारण प्रकाशित नहीं हो सकी हैं।

असम्बद्ध अप्रस्तुत विधान, बिखरे टूटे बिम्ब तथा प्रतीकों की असफलता में भी एक विलक्षण अस्थिरता किन्तु क्रमिक विकास देखा जाता है। 'मारो गोली', 'दाबो साले को' जैसे सनकीपन और क्रोध में बोले गये वाक्य विशेष रूप से मन को कुरेदते

हैं, साथ ही इनमें 'शॉक' लगाने की क्षमता है। उदाहरण के लिए यह अंश द्रष्टव्य है—

काशा बत्तू वाला काला जरीदार ड्रेस पहने
चमकदार बैण्ड दल—अस्थि रूप यकृत स्वरूप उदर आकृति
आँतों में जालों से बाजे वे दमकते हैं
भयंकर
गम्भीर गीत—स्वप्न-तरंगें /
उभारते रहते हैं—[1]

संगीन नोकों का चमकता जंगल; टैकदल, मोर्टार, आर्टिलरी, तोप आदि बिम्बों द्वारा जिस युद्ध एवं मार्शल-लॉ की भयावह स्थितियों के दृश्य कविता में लाये गये हैं, वे उनके अन्तर्मन में अनुभव रूप में पहले से थे। क्रान्ति की कल्पना मुक्तिबोध के रचनाकार के मन में अति गहरे स्थित है इसीलिये फैन्टेसी के माध्यम से वे तनाव से छुटकारा पाना चाहते हैं।

मार्क्सवादी आस्था में क्रान्ति, वर्ग-संघर्ष एवं अशान्ति मार्क्स के (मेनिफेस्टो) घोषणा-पत्र से आई है। मार्क्स की इस कृति का अध्ययन मुक्तिबोध ने किया था अतः कविता की रचना-प्रक्रिया के दौरान इसका प्रभाव तो पड़ सकता है किन्तु रमेश कुन्तल मेघ उनकी कविता को बदलाव का घोषणा-पत्र कहते हैं। घोषणा-पत्र में एक निश्चित आश्वासन, दिशाबोध, योजना की सीधी दो टूक बात होती है। जिस कविता में इतने मोड़, बदलाव तथा परिवर्तन की बहुरंगी दृश्यावलियाँ हों वह घोषणा-पत्र कैसे हो सकती है ? कविता समाधान हो सकती है समस्या नहीं, विवृत्ति हो सकती है सूत्र नहीं, प्रयोग हो सकती है सिद्धान्त नहीं। अतः उनकी कविता की व्यापकता का विराटफलक 'प्रसाद' की रचना कामायनी के विराट रूप का स्मरण कराता है।[2]

यहाँ 'दिल के खून में रंगकर' तथा नयारंग भरने को आज की समानता आकस्मिक नहीं है। इस्पात को तप्त करके हथौड़े की चोट से आकार देने की प्रक्रिया या उसे गलाकर साँचे में ढालने की कला शिल्प-विधि की कुशलता है। 'मेरे लोग' शीर्षक कविता में काव्य-सर्जना की प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए रचनाकार उद्घाटित

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० २५५।
२. वह विराट था हेमघोलता, नया रंग भरने को आज,
   कौन हुआ यह प्रश्न अचानक और कुतूहल का था राज॥
२ (ख) जिन्दगी की कोख में जनमा /
   नया इस्पात / दिल के खून में रंगकर   चाँद का मुँह टेढ़ा है)

करता है कि उसके काव्य-पुरुष को रचना के लिए कच्चा माल इस्पात (*Matter*) प्राप्त करने के लिये बहुत श्रम करना पड़ता है। उसके श्रम के कारण ही जो कुछ बन सका है वह कविता में आया है—कविता की शिल्प-विधि अथवा रूप में, जो बाकी रह गया है, वह उनके झेलने का कारण बनता है।

ध्वनि, शब्द, अर्थ और वाक्य का जगत काव्य-जगत है। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध उसमें सीधे-तिरछे विरामचिह्न अथवा खड़ी-आड़ी रेखाओं की तरह रहते हैं। मुक्तिबोध की कविता में विद्यमान आस्था 'दलिद्दर के शनिश्चर' का प्रोपेगण्डा है जिसे साथ लेकर दलिद्दर हाँकता हुआ काव्य नायक हाहाहूती नगर की भीड़ वाली डामर की सड़क पर चलता है। इसी ओर 'आशिये के बेस्ट' वाली दूकान है। यह सड़क खूबसूरत चमचमाती शानबान की बस्ती से जुड़ती है। सड़क के दोनों ओर सुन्दर दृश्यावली तथा वृक्षों की घनी पंक्तियाँ हैं। सुसंस्कृत, बुद्धिमान, शिक्षित एवं दृष्टिमान लोग इसी पर संस्कृति शिक्षा एवं बुद्धि की श्यामा गायों के साथ यात्रा करते हैं। यही सड़क हमारी आस्था की पगडण्डी है जिस पर चलने वाली गायों का शरीर सूखकर काँटा हो चुका है। माँ, बहन एवं गिरस्थिन स्त्रियों का मन इन श्यामा गायों को देखकर दया से द्रवित होता है। मुक्तिबोध के इस काफिले में आर्टीलरी मार्च तथा बटालियन के विपरीत सांस्कृतिक मान्यताओं की ओर जाने की कथा है। सम्भवतः 'कामायनी' के आनन्द सर्ग की कैलाश-यात्रा रचनाकार के मन में कहीं अवश्य थी। आनन्द-पथ की यात्रा में 'मनु' के साथ श्रद्धा का नेतृत्व है तथा मुक्तिबोध के इस काफिले में समाज के बुद्धिजीवी एवं दार्शनिक हैं। इनकी आस्था श्रद्धा-परक नहीं बौद्धिक है। यही छायावाद के विपरीत नयी कविता की प्रकृति है।

प्रयोग प्रेषणीयता, मूल्यबोध, यथार्थबोध एवं आधुनिकता की विभिन्न समस्याओं से जूझती हुई मुक्तिबोध की कविता छायावादोत्तर युग की प्रवृत्तियों का दस्तावेज बनी है। 'बाजारू-अभिव्यक्ति' एवं रूढ़ियों के विपरीत समीक्ष्य कविता भयावने दृश्यों को उतारने में सर्वाधिक सफल है। सर्जना में प्रतिभा एवं चिन्तन का पूर्ण उपयोग करने के बावजूद मुक्तिबोध का काव्य पाठक एवं सामान्य समीक्षक के लिये भी कहीं-कहीं समझ के बाहर हो जाता है। अखबारी दृष्टि एवं प्रचार की शैली से उन्होंने कविता को बचाने का प्रयास किया है किन्तु इस प्रक्रिया में अर्थवत्ता की दुरूहता के कारण सामान्य जन पीछे छूट जाता है। उनकी कविता में विद्यमान भावों की ऊँचाई तथा उनके व्यापक अध्ययन से युक्त 'विचारों की अवलि के चिन्तन' कविता में उतरे हैं। आदि से अन्त तक, अन्त से अनन्त तक उनका काव्य नायक यात्रा करता है। इस कविता-यात्रा का आरम्भ [illegible]

तार्किक, बौद्धिक एवं दार्शनिक हो जाता है। 'बीमार मन का आलाप' तथा 'खूँखार मिनिक संशयवादी' की प्रवृत्ति कविता में साफ प्रकट होने लगती है।

इन कविताओं में अनेक विलक्षणतायें, बहुआयामी दृष्टियाँ तथा समकालीन काव्य-आन्दोलनों के पदचिह्न हैं। प्रगतिशीलता तो इतनी है कि प्रयोगवाद-युग में वे अज्ञेय के अनुकर्ता नहीं बने हैं, 'नयी कविता' का समर्थक होने पर भी उसकी सीमा को पार किया तथा नवीन सौन्दर्य-बोध की सशक्त स्थापना की है। सन्त ज्ञानेश्वर, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, शमशेर बहादुर सिंह आदि रचनाकारों की काव्य-दृष्टि तथा अरविन्द एवं गांधी के चिन्तन से प्रभावित होने पर भी वे "न तो राजनीति में दूसरे गांधी बनना चाहते हैं और न कविता में दूसरे जयशंकर प्रसाद। उनकी आकांक्षा यह है कि जैसे गांधी ने देश की सेवा की, वैसे ही बदली हुई परिस्थितियो मे वह भी देश की सेवा करें।"[१] युगीन विसंगतियों से प्रभावित होकर भी वे कविता की शैली को अपने व्यक्तित्व से दबाना नहीं चाहते। उनके काव्य-व्यक्तित्व की छाप की पहचान में भ्रम होने पर व्याख्याकार उन्हें निरपेक्ष भाव का कवि मानते हैं किन्तु उनका विश्वास कलाकार की स्थानान्तरगामी प्रवृत्ति पर है। व्यक्तित्वान्तर की गतिशीलता 'दिवास्वप्न' एवं मन के रहस्यमय लोक का उद्घाटन करती है। विपरीत परिस्थितियों से उत्पन्न तनाव में बलाबल का भेद होने पर ढिलाई और टूटन की सम्भावना कम किन्तु पैबन्द और जोड़ साफ दिखाई पड़ जाते है।

कविता की जिन्दगी में जीता हुआ रचनाकार जीवन के सम्बन्धों में तटस्थ द्रष्टा बनकर सरीक नही होता अपितु कभी नेतृत्व अपने ऊपर लेता है। "अवसरवादी सुविधाजीवी मनुष्यों की भीड़ में मुक्तिबोध स्वयं उसकी इकाई नहीं बन सके है।" खण्डहरनुमा जिन्दगी के आँगन में तुलसी के पौधे की रक्षा एक कठिन साधना है और आसन्न संकट के तीखे बोध का एहसास करना उससे भी कठिन प्रक्रिया। संशय, अस्वीकृति, कुण्ठा एवं निराशा की स्थिति में भी आत्मान्वेषण मुक्तिबोध सदृश शिल्पी का कार्य है। वास्तविक संदर्भों से कटकर न कविता जीवित रह सकती है और न कवि तथा कालजयी बनने के लिए रचना में जीवन संदर्भों का होना अनिवार्य है। वर्ग एवं समाज की भूमिका में कार्यरत व्यक्ति की समस्याओं से संघर्ष मुक्तिबोध का आत्म-संघर्ष है जिसे आत्मग्रस्तता की सीमा तक उन्होंने झेला है।

---

१ नयी कविता और अस्तित्ववाद—डॉ० रामविलास शर्मा पृ० १६६।

४. मुक्तिबोध का काव्य-शिल्प

प्रतीकों और बिम्बों के
असंवृत रूप में भी रह
हमारी जिन्दगी है यह
जहाँ पर धूल के भूरे गरम फैलाव
पर पसरी लहरती चादरें / बेथाह सपनों की....

—चाँद का मुँह टेढ़ा है

× × ×

माना कि जिन्दगी बदरंग विकृताकृति-सी है
पर, उस दरिद्र परिदृश्यों के भीतर भी
वे मानवीय माधुर्य-अनुभवों की छवियाँ
जाने क्या-क्या कर सकती हैं— /

—भूरी-भूरी खाक धूल

सृजन के घर में तुम
मनोहर शक्तिशाली
विश्वात्मक फैण्टेसी
दुर्जनों के भवन में
प्रचण्ड शौर्यदान, अण्ट-सण्ट वरदान
—खूब रंगदारी है

काव्य की रचना प्रक्रिया पर विस्तार से विचार करते हुए मुक्तिबोध ने कहा है कि—"सृजन के पूर्व रचनाकार के मन में एक खास प्रकार की काट-छाँट—एक विशेष प्रकार की शैली-योजना आती है जिसके अनुरूप रचना आकार ग्रहण करती है।"[1] सर्जना के आधार पर शिल्प विधान की समीक्षा के लिए उनकी मान्यतायें भी पर्याप्त सहायक होती हैं। एक साहित्यिक की डायरी, कामायनी एक पुनर्विचार नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र तथा 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध' में की गई स्थापनायें उनकी कविताओं के संक्षिप्त कथन से सम्बन्धित हैं। कला सर्जना के तीन क्षण का उल्लेख न केवल अपनी कविता के लिए अपितु प्रयोगवाद और नयी कविता के सभी रचनाकारों के साहित्य को लक्ष्य करके किया गया है। "संवेदनात्मक उद्देश्य कल्पना, भावना, बुद्धितत्त्व सर्वसामान्य है। × × × किन्तु इन तत्त्वों की विभिन्न मात्राओं, विभिन्न अनुपातों और विभिन्न प्रकार के योगों से विभिन्न विशिष्ट रूप प्राप्त होते हैं। ये योग विभिन्न संवेदनात्मक उद्देश्यों के अनुसार घटित होते हैं।"[2] रचनाकार मुक्तिबोध ने 'शिल्प विधि' के प्रयोग का मुख्य उद्देश्य संवेदनात्मक कहा है जिसे अज्ञेय ने प्रेषणीयता की संज्ञा दी है। प्रेषणीयता प्रयोग के लिए चुनौती है किन्तु 'संवेदनात्मक उद्देश्य' कहकर मुक्तिबोध ने उसके विरोध को बाधक और विरोधी नहीं आपितु साधक एवं सहयोगी माना है। 'रचना प्रक्रिया के दौरान रचनाकार स्वयं यह नहीं जान पाता कि वह काव्य-भाषा के रूप में जो सर्जना कर रहा है उसकी वह रचना उसके द्वारा सोची हुई, गढ़ी, काटी, छाँटी और तराशी गई होगी।[3] शिल्प विधि—काट-छाँट रचना के रूप में यथावत् आती हो; यह आवश्यक नहीं है। प्रयोगवाद और नयी कविता के दो महान सर्जकों के शिल्प विधान सम्बन्धी सिद्धान्तों से अवगत होने पर भी यह बात बाकी रह जाती है कि रचना की शिल्प-विधि में

१. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध—मुक्तिबोध
२. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र—मुक्तिबोध – सं० १९८२।
३. अद्यतन – अज्ञेय

सर्जना के क्षण की अनुभूति उसका निर्माण करती है अथवा उसके मन की काट-छाँट, तत्त्व-संयोग-मात्रा-'संवेदनात्मक ज्ञान' तथा 'ज्ञानात्मक संवेदन' भी शिल्प-विधान को प्रभावित करते हैं ?

मुक्तिबोध की शिल्प-विधि भाषा के विभिन्न स्तरों पर व्यक्त रूप में देखी जाती है। कवि की संवेदनानुसार उसकी शिल्प-विधि आरम्भ में मनोवैज्ञानिक और बाद में सांस्कृतिक प्रक्रिया से प्रभावित होती है। रचना में कवि द्वारा शिल्प-विधि का अनुपालन जाने-अनजाने हुआ करता है। 'अनजाने' से तात्पर्य अनभिज्ञता से न होकर कवि के अवचेतन एवं प्रचेतन के बीच के सेंसर की ढिलाई से है। कल्पना-बिम्बों द्वारा भावों की अभिव्यक्ति, प्रतीकों द्वारा कथ्य की प्रेषणीयता अथवा शब्दों की अर्थवत्ता से पाठक एवं समाज को अवगत कराना सर्जना के क्षण की अनिवार्यता होती है। रचना की शिल्प-विधि रचनाकार द्वारा सर्जना के विभिन्न मोर्चों पर किये जाने वाले प्रयोगों का समवाय है जो उसके सौन्दर्यानुभव से भी सम्बन्धित होती है। मुक्तिबोध ने अपनी व्याख्या में कविता और उसकी कलात्मकता पर विचार करते हुए एक स्थल पर कहा है कि—"हमारी आत्मा को जो कुछ अनुभूत होता है उसे हम लिखते हैं। ऊपर-ऊपर से यह मालूम होता है, किन्तु हमारी आत्मा में बहुतेरा अनुभव संचित होता है। × × × (सर्जना के क्षण) गहन अनुभूति के क्षण होते हैं, वे सौन्दर्यानुभव के क्षण होते हैं जब हममें एस्थेटिक इमोशन जाग उठते हैं।"[१]

प्रयोगवादी कविता के शिल्पगत प्रयोग के कारण ही संदर्भित कविता को 'प्रयोगवाद' की संज्ञा दी गयी है। छायावाद एवं प्रगतिवाद से भिन्न प्रयोगवाद का शिल्प-विधान समकालीन कविता में उल्लेखनीय है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की जीवन और जगत की बदली हुई परिस्थितियों तथा नये जीवन मूल्यों के अनुरूप अपनाये गये काव्य-मूल्यों ने प्रयोगवादी शिल्प को आकार प्रदान किया है। पुरानी मान्यताओं का परित्याग कर नवीनता को अपनाने के आग्रह ने 'राहों का अन्वेषण' करने के लिए कवियों को प्रेरित किया और कवि स्वयं भी अपनी सफाई देते हुए यह स्वीकार करता है कि वह राहों का अन्वेषी है। जिसका अर्थ यह न लगाया जाय कि वह किसी मान्यताको 'वाद' के रूप में अपनाने अथवा किसी 'स्कूल' की कविता रचने का मंतव्य लेकर सर्जना करने चला है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० शम्भुनाथ सिंह, डॉ० शिव प्रसाद सिंह, डॉ० रमाशंकर तिवारी आदि समीक्षक प्रयोगवादी कविता में प्रयोग के आग्रह को ही मुख्य प्रवृत्ति मानते हैं।[२] श्री रामधारी

---

१. नयी कविता का आत्मसंघर्ष—मुक्तिबोध, पृ० सं० १६।
२. (क) हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी (ख) प्रयोगवाद और नयी कविता
(ग) हिन्दी नवलेखन (घ) प्रयोगवादी तथोक्त नयी कविता

सिंह दिनकर ने आलोच्यकालीन कविता की शिल्प-विधि को सुरियलिज्म (अति यथार्थ-वाद) की कलात्मकता का भारतीय संस्करण कहकर समकालीन कविता के शिल्प पक्ष की दुर्बलता पर सीधा प्रहार किया है।

मुक्तिबोध का काव्य-शिल्प प्रयोगवाद एवं नयी कविता का काव्य-शिल्प है जिसका वाद-प्रतिवाद उनकी सर्जना से सीधा सम्बन्ध रखता है। आलोच्य विषय से सम्बन्धित तार सप्तक की भूमिका, प्रतीक, रूपाभ, आलोचना, तार सप्तक के कवियों के वक्तव्य तथा 'पुनश्च' के पर्याप्त पिष्टपेषण, निर्णय तथा मतस्थापन के बाद भी मुक्तिबोध के कविता प्रतिमानो को मुकम्मल न मानकर कोई मुकम्मल निर्णय नहीं किया जा सका। १९६३ ई० में तार सप्तक के दूसरे संस्करण में अज्ञेय ने यह स्वीकार किया है कि २० वर्षों के बाद राहों के अन्वेषी सन्दर्भ बने है। अत: उनके तत्कालीन 'प्रयोग' और 'नयेपन' को अब तक एक स्थायी शिल्प-विधान के रूप में स्वीकार कर उसकी विवीक्षा करना समीचीन है। 'मुक्तिबोध' की कविता का उत्कर्ष काल १९६४ ई० के बाद आता है जब उनकी कृति 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' प्रकाश में आई किन्तु वे उसके आक्षेपों के प्रतिवाद के लिये दुनियाँ में नहीं रहे। उनके अनुसार कविता सतत् अनन्त तक चलती है, स्वयं प्रसूत होती है, उसका सर्जक या जन्मदाता कोई नहीं होता।[२] सौन्दर्यानुभव के बदलते रहने से कविता का स्वरूप एवं निकष बदलता रहता है अत: कविता के प्रतिमान भी परिवर्तनशील होते हैं। जीवन और जगत के संवेदन का स्तर परिवर्तित होने से काव्य-शिल्प भी बदलता है। कविता की अभिव्यंजना के गतिशील होने के कारण उसकी रुपात्मक परिणति भी बदलती जाती है।[३]

मुक्तिबोध के शिल्प-पक्ष के विवेचन और अनुशीलन में रस निकष, अलंकृति, चमत्कृति, अप्रस्तुत विधान की खोज और अस्मितर समीचीन नहीं है किन्तु अनुभूति की जटिलता, प्रेषणीयता, सर्जना की सफलता, अर्थवत्ता की अभिव्यक्ति, फैन्टेसी तथा प्रतीक योजना की सफलता पर विचार किये बिना उनकी कविता का कलात्मक संवेदन अधूरा माना जायेगा। रचनाकार के काव्य-व्यक्तित्व में बद्धमूल द्वन्द्व शिल्प के स्तर पर गुथन और उलझाव की आकृति बनाने की प्रेरणा देता है। विकृति का विशेषण के रूप में प्रयोग करते हुए उन्होंने अपनी कविता को नाशात्मक (कविता) कहा है। उनकी व्याख्यायें एवं टिप्पणियाँ उनके आत्म-संघर्ष का परिचय कराती हैं। प्रत्येक रचनाकार का जीवन-दर्शन उसका निजी दर्शन होता है। मुक्तिबोध की शिल्प-विधि

---

१. तार सप्तक—(द्वितीय संस्करण) — (पुनश्च)—अज्ञेय

२. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध

—नहीं होती कहीं भी खतम कविता नहीं होती

३. कविता के नये प्रतिमान —(भूमिका),—नामवर सिंह

अथवा-काव्य-संवेदना उनके जीवन-दर्शन की अनुगामिनी है। जब भी उनके रचनाकार ने जैसा अनुभव किया, उनके आत्मचेतस् ने विश्वचेतस् से तनाव पूर्ण सम्बन्ध स्थापना में जितनी सफलता प्राप्त की उसे उन्होंने कविता के रूप में प्रतिपादित किया।

समीक्षा कृति में स्वीकार किये गये मत तथा 'नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' की विवेचना के क्रम में सर्जना की तीन अवस्थाओं में शिल्प-विधि के निर्मित होने की अवस्था को मध्य की स्थिति कहा गया है, जो 'सौन्दर्यानुभूति' के बाद कलाकार के के मानस में आती है। रचना अभिव्यक्ति की अवस्था तीसरी और अन्तिम अवस्था है।

काव्य-शिल्प की समीक्षा में निराला के शिल्प विधान से मुक्तिबोध की तुलना की जाती है।[1] अधुनातन शिल्प विधान के प्रथम प्रयोक्ता रूप में निराला का नामोल्लेख बार-बार किया जाता है। आज की समीक्षा में बहुत सी स्थापनायें कोरे फतवे के रूप में भी प्रयुक्त होती हैं। दोनों रचनाकारों की शिल्प विधि का सम्बन्ध उनके जीवनानुभवों तथा संघर्षों से है। निराला की कविता में आया हुआ यथार्थ का धरातल सांस्कृतिक प्रक्रिया से अधिक जुड़ता है जब कि मुक्तिबोध का काव्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में है।

निराला की अभिव्यक्ति की ईमानदारी, सपाटबयानी, एवं बेबाक कथन उनके अल्हड़ व्यक्तित्व का परिचय कराते हैं जो कहीं दुर्बल, हारा थका और निरस्त्र नहीं लगता। मुक्तिबोध निरस्त्र, निष्कवच, अवध्य और उद्दाम साहस से युक्त होने पर भी बार-बार टूटे, हारे, अवसादग्रस्त देखे जाते हैं। काव्य- शिल्प के क्षेत्र में बने हुए मठ गढ़ तथा दुर्गों को तोड़ने के बाद उसपार जाने के लिए मुक्तिबोध जिस पथ पर चले हैं वह राह निराला ने बनायी थी। निराला की सर्जना में ध्वंस कम निर्माण अधिक है किन्तु मुक्तिबोध में ध्वंस अधिक है निर्माण विवादास्पद।

दुर्गम पठारों पहाड़ों के उस पार जाकर 'रक्त कमल' से तदात्म्य स्थापन समाधान की मंजिल है, निराला ने उस पथ को स्वयं निर्मित करने तथा समतल बनाने में सफलता प्राप्त की है किन्तु मुक्तिबोध केवल यात्रा करते रहे सफाई की ओर उनका ध्यान नहीं गया है। समकालीन कवि अज्ञेय की तुलना में भी मुक्तिबोध के शिल्प विधान की अलग पहचान है।

---

१. नयी कविता में मुक्तिबोध की स्थिति वही है जो छायावाद में निराला की थी। निराला के समान ही मुक्तिबोध ने भी अपने युग के सामान्य काव्य-मूल्यों को प्रतिफलित करने के साथ ही उनकी सीमा को चुनौती देकर उस सर्जनात्मक विशिष्टता को चरितार्थ किया। [कविता के नये प्रतिमान-नामवर सिंह —भूमिका—पृ० ८]

निराला का काव्य विहँग नव पर नव स्वर आसकर उड़ता है अथवा 'देशकाल के शर से बिधकर वह जागा कवि अशेष छविधर,—उपलब्धि का रूप है किन्तु मुक्तिबोध का ब्रह्मराक्षस. काव्यात्मन फणिधर न उड़ता है न अवतार लेता है। 'न कहे जा सकने वाले अनुभवों का समूह-असहाय नकारात्मकता प्रकट करता है किन्तु निराला का शिल्प विधान आस्था, स्वीकृति एवं विजय का संवाहक है।

मुक्तिबोध के शिल्प की तराश, काट-छाँट, सफाई, गढ़न, कर्ई, उभार, तथा गहराई समकालीन रचना विधान के आदर्श (Model) रूप में ग्रहण की जाती है। इस निर्मिति में तिल-तिलकर जलनेवाली विवशता, ताप की अनुभूति, तथा अभिव्यक्ति का साहस है जिसे वे निर्मिति के साँचे में ढालकर परुषतम एवं कठोर आकार प्रदान करते हैं। मन की गुथन, बनावट, काट-छाँट एवं अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने की प्रक्रिया नाग से मणि प्राप्त कर उसकी माला बनाने की कठिनाई सदृश है। मुक्तिबोध के व्यक्तित्व तथा व्यक्तित्व-खण्ड में यथार्थ का खनिज है जो विद्रोह के ताप से टूटने, बदलने एवं चटखने पर भी परखा जाता है।

> अपने मस्तिष्क के पीछे अकेले में / गहरे अकेले में /
> न कहे जा सकनेवाले अनुभवों के ढेर का
> भयंकर विशालकाय प्रति रूप दीखता पहाड़
> स्याह / दूसरी ओर / क्षुद्रतम सफलता की आड़ से / × × ×
> चाँद का अधूरा मुँह
> व्यंग्य मुस्कराता है ....[1]

'न कह सके जाने वाले अनुभव' ढेर होकर काले स्याह पहाड़ बने हैं। इनमें निर्मिति की सजगता प्रकृति की सजगता है जिसने वैविध्य युक्त संसार बनाया है। पाठकों के लिए यह बनावट एक उलझी हुई संवेदना है जिसको सुलझाने की प्रक्रिया में मस्तिष्क में बल पड़ने की सम्भावना के साथ अंतड़ियों में भी बल पड़ने का खतरा है। मेटाफिजिक्स या भौतिक विज्ञान की सूत्रात्मक प्रणाली के बिना उसका 'न्यूमेरिकल' प्रश्न बिना हल के रह जाता है।

कवि के मानस में उभरती हुई प्रतिमाओं ने बिम्ब के रूप में आकार धारण कर मुक्तिबोध को मानवतावादी सर्जक बनाया है। उन्हें शोषण की सभ्यता के नियम के अनुसार बने हुए तिलिस्म समझ में आते हैं।[2] सियाह चक्रव्यूहों में फँसे-उलझे हुए कितने निर्दोष अभिमन्युओं के प्राण आत्म रक्षा के अभाव में संघर्ष करते-जूझते देखे

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—पृ० ७५—७६

२ चाँद का मुँह टेढ़ा है .... [मुझे याद आते हैं।] मुक्तिबोध

जाते हैं। फाटक तोड़ने की जन्मजात कला की अपूर्णता से अन्तिम द्वार पर आकर उसका अन्त अवश्यम्भावी है किन्तु उसके संघर्ष की क्षमता कम नही हुई है। सामाजिक समस्याओं का चक्रव्यूह सर्वत्र फैला है। उस दुर्ग के अन्दर प्रवेश करने के लिए अदम्य उत्साह की आवश्यकता है। सामंतीय जीवन के भग्नावशेष भहराये हैं किन्तु उनके बीच से पथ खोजना यथार्थ की सम्भाव्य सम्भावना है जिसने मुक्तिबोध की कविता का तेवर बदल कर उनके शिल्प को अनोखा रूप दिया है। "वजनदार घडो से पानी भरती हुई गर्भवती नारी घर और बाहर के कार्य से छुट्टी पाकर विश्राम नही करना चाहती है। उसकी विवशता है कार्य मे लगी रहना। सुमित्रा नन्दन पन्त की ग्राम युवती—'कटि लचकाती उरु मटकाती/इठलाती आती ग्राम युवति वह गज गति सर्प डगर पर' का चित्र छेड़-छाड की मुद्रा ही प्रकट करता है किन्तु मुक्तिबोध की 'गर्भिणी नारी' का कार्यरत होना अधिक प्रभावित करता है। पन्त की तुलना मे निराला की वह 'तोडती पत्थर' विशेष प्रभावोत्पादक है। निराला का काव्य नायक पत्थर तोड़ने वाली युवती को निकट से देखता है, मुक्तिबोध का कवि वजनदार घड़े वाली युवती की विवशता से गम्भीर रूप से जुडा है किन्तु पन्त का कवि एक शरारत भरी दृष्टि डाल कर जैसे 'प्रेमी याचक' बन जाता है।

नयी कविता की शिल्पगत मुद्रा मुक्तिबोध की कविता के रूप मे रूढ़ि हो गई है। छायावादोत्तर काव्य शिल्प की विवादित भूमि मे सर्वाधिक प्रश्न चिह्न 'अज्ञेय' और मुक्तिबोध की शिल्प-विधि को लेकर हैं। डॉ० अशोक वाजपेयी ने अज्ञेय की काव्य रूढि को 'बूढा गिद्ध क्यो पख फैलाये'[1] लेखमाला द्वारा उजागर किया किन्तु उन्होने अज्ञेय की रूढ़ि का कोई विकल्प नही बताया। विकल्प हो भी नही सकता। शिल्प और रूप की दृष्टि से 'अज्ञेय' की तुलना मुक्तिबोध से करना भी कठिन है किन्तु अज्ञेय राहो के अन्वेषियों मे सर्वाधिक गतिशील रहे हैं। जबकि मुक्तिबोध की यात्रा पूरी हो चुकी है। अज्ञेय का 'हिय हारिल' कभी-कभी थकता है किन्तु वे नकारते हुए भी[2] उस धारा के साथ बहे हैं जो कि 'श्रुत सलिला मातः' है। उसके प्रति 'तथता' की तरह समर्पित होकर वे आस्था के लिए उत्सुक है।[3] अज्ञेय एक कुशल शब्द शिल्पी हैं जो सर्जना के प्रत्येक शब्द पर सजग हैं और 'शब्द ही है' को सिद्धान्त सूत्र मानते हैं। इसके विपरीत मुक्तिबोध मे अनास्था, क्रान्ति, विद्रोह एवं आत्म-विश्लेषण की प्रवृत्ति इतनी मुखर है कि वे युग के ज्वलन्त सत्य का उद्घाटन करने लगते हैं। मुक्तिबोध का शिल्पी धारा की तरह गतिशील नहीं अपितु आक्रामक एवं तीव्र है, जुझारू है, कूद कर

१ धर्मयुग, दिसम्बर १९८० ।
२. हम नदी के द्वीप हैं, धारा न
३ गजानन माधव मुक्तिबोध। —सं० लक्ष्मण दत्त गौतम—पृ० २२८

गुजरने का इच्छुक है। उनकी शिल्प विधि पर गम्भीर आरोप उलझी हुई संवेदना का है किन्तु जितने अन्तर्विरोधों में मुक्तिबोध जीवित रहे अन्य व्यक्ति होता तो इसके अर्द्ध समय में ही प्राण त्याग देता।[१]

क्रोचे की अभिव्यंजना को रूप एवं कलावादी समीक्षकों ने अपूर्ण कहा है किन्तु मुक्तिबोध की कला में अभिव्यंजना एवं प्रगतिवादी द्वन्द्व के साथ ही रूप एवं कलावाद की समन्वित परिणति देखी जाती है। उनके रोमानी सौन्दर्य बोध पर रिबेल (विद्रोही) कलाकार हावी है।[२]

अधूरी और सतही जिन्दगी में भी / जगत पहचानते, मन जानते तूफान आते हैं / व उनके धूल धूँधले कर्ण-कर्कश गद्य-छन्दों में / तड़पते भान दुनियाँ छान आते हैं।" × × × किन्हीं दुर्घट, विकट घटनाक्रमों का एक / पूरा चित्र स्वर संगीत / प्रस्तुत कर / व उनके उष्म अर्थों के धुंधलकों में मगन होकर नया आलाप लेते हैं।"[३]

अधूरी सतही जिन्दगी में आने वाला तूफान दुर्घट विकट घटना क्रमो का एक चित्र प्रस्तुत करता है। इस स्वर-संगीत का नवीन ऊष्म अर्थ उनकी कविता के रग-रग मे दौड़ता देखा जाता है। 'कर्ण-कर्कश' गद्य छन्दों की परवाह किये बिना मुक्तिबोध का आलाप सीधा-साधा कथन हो जाता है।

अनेक बिखरे-टूटे किन्तु जुड़ने वाले रूपों में मुक्तिबोध प्रतीकों बिम्बों एवं फैन्टेसीज् में अपनी जिन्दगी जीते और देखते हैं।[४] कविता में कहीं पूरी छाप, कहीं अधूरा चित्र, कही खण्डित प्रतिमानों का सिलसिला देखा जाता है। 'राह न पाने के कारण सतत प्रयोगशील होना' उन्हीं के शिल्प में चरितार्थ होता है। अंग्रेजी, जर्मन, रसन. फ्रेंच आदि भाषाओं का इतिहास, दर्शन मनोविज्ञान की कृतियो तथा उपन्यासो से अपने अधूरे ज्ञान को समृद्ध कर जिन्दगी के अधूरेपन को पूर्णता प्रदान करना उनका लक्ष्य रहा है। विश्व घटनात्मक वातावरण की सघनता को भाषिक संरचना के स्तर पर उतारने की अद्भुत क्षमता मुक्तिबोध में देखी जाती है। बहुआयामी कविता की संरचना में बहुसमस्यात्मक एवं बहुकोणीय फलक पर बना हुआ चित्र कुशल शिल्पी का परिचय कराता है। उनके खाके में अनेक रङ्ग है किन्तु 'लाल-लाल' मशाल की लालिमा अथवा अँधेरे की कालिमा विशेष प्रभावकारी है। 'कालाकलू-काला आदमी' अथवा गम्भीर प्रोसेशन 'क्वीक मार्च' में जरीदार ड्रेस वाला चित्र एक दिन की देन नही है न अजूबे में लगा हुआ आकाश कुसुम।

१. हरिशङ्कर पारसाई का कथन—(डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी द्वारा उद्धृत।
२. तार सप्तक (वक्तव्य) (महादेवी के रोमान पर टाल्स्टाय का प्रभाव) मुक्तिबोध
३. चाँद का मुँह टेढ़ा है। (चकमक की चिनगारियाँ)। —मुक्तिबोध
४. प्रतीकों और बिम्बों के / असंवृत रूप में भी रह / हमारी जिन्दगी है यह / चाँद का मुँह टेढ़ा है पृ० १५२।

आवेग-त्वरित-काल-यात्री मुक्तिबोध की कविता-यात्रा मे जिजीविषा का उत्साहाधिक्य देखा जाता है। सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के दुहरेपन मे जीने वाला सर्जक अपनी स्वछन्दता का परिचय देता है। कहीं-कही यह स्वाधीनता खलती भी है। 'आगमिष्यत्' की गहन गम्भीर छाया की तरह कविता का शिल्प उसके जन्म के पूर्व की बनी हुई कुण्डली है, जो नये अनुभव, नये संवेदन, नये प्रकरणो से जुडकर आगे बढती—समृद्ध होती है। मुक्तिबोध अपने रचनाकार को 'तुम' कहते हैं। उनकी कविता मे विद्यमान प्रतीको और बिम्बो की स्वच्छन्दता से विकसित रूप एवं कला विधान उनकी काट-छाँट एवं कई बार के सुधार का परिणाम है। शिल्पविधि के 'अधकचरेपन' अटपटेपन एव अल्पसमयक व्यस्तता पर नन्द दुलारे वाजपेयी ने सही उँगली उठाई है।

'मुक्तिबोध की रचनाओ मे परिष्कार आवश्यक था और उसके लिए उन्हें समय नहीं मिल सका।'[१] जिन रचनाओ का प्रकाशन उनके जीवनकाल मे हुआ था उसकी सामाजिक एव सांस्कृतिक प्रक्रिया का समझना सही जीवन-दृष्टि का नही अधूरी-जीवन दृष्टि का परिणाम है। उन्होने 'एक साहित्यिक की डायरी' मे यह स्वीकार किया है कि रचना को काटने-छाँटने सुधारने मे उन्हे अधिक समय लगता रहा। शमशेर बहादुर सिंह, श्रीकान्त वर्मा आदि उनके सहयोगी रचनाकारो ने 'भूरी-भूरी खाक धूल' के प्रकाशन की योजना बनायी और अन्य अप्रकाशित कृतियो की सूचना मुक्तिबोध के ज्येष्ठ पुत्र ने दी है। वे राजनीतिक समस्याओ मे सलग्न तथा आर्थिक समस्या से आक्रान्त थे। दार्शनिक एवं वैचारिक स्तर की सामान्य समस्या पर भी गहराई से विचार करना उनका स्वभाव बन चुका था। मार्क्स, बर्गसा, दास्तोवस्की, आदि गम्भीर कृतिकारों के प्रभाव से मुक्तिबोध का रचना विधान प्रभावित है। गम्भीरता को और गम्भीरतर ढंग से प्रस्तुत करना मुक्तिबोध की प्रवृत्ति बन चुकी थी अत- असम्बद्ध प्रतीक, अटपटे कथ्य, विकृति युक्त बिम्बो द्वारा उनकी कविता का शिल्प प्रभावित रहा।

कविकर्म मे पूर्ण सजग कलाकर की तरह लक्ष्य पर उनका ध्यान बराबर केन्द्रित रहता है। बहुरंगीय जगत की अपने मन पर पडनेवाली छाया की चमक मे वे अपनी वास्तविक आकृति नही भूलते। यही कारण है कि उनकी 'विजन' की दृष्टि पाठक एवं ग्रहीता के लिए सम्भ्रम युक्त होती है किन्तु सर्जक का वास्तविक रूप आत्म विश्वास नही खोता। जिन्दगी की परिस्थितियो की चोट सहने का आदी कलाकर मृत्यु के पूर्व तक भयानक स्वप्न देखता तथा निद्रा मे भी तनाव का अनुभव करता था।[२]

१. नई कविता—नन्ददुलारे वाजपेयी (सं० डॉ० शिवकुमार मिश्र)

२. हरिशंकर पारसाई के एक निबन्ध से (डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी द्वारा उद्धृत)

समीक्षा कृति एवं साहित्यिक निबंधों में तनाव को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानने का विपरीत परिणाम यह हुआ कि 'भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास' कृति पर प्रतिबंध के साथ ही उन्हें स्वतन्त्र भारत में भी एक निर्वासित का जीवन मिला। गम्भीर स्वभाव का गम्भीरतायुक्त शिल्प विधान उन्हें नागात्मक कविताओं का जन्मदाता बना देता है। 'नयी कविता की बहँसों में यह भावना अन्तर्भुक्त रही है कि न केवल कविता का ऊपरी कलेवर बदला है या नये प्रतीकों या बिम्बों की नयी शब्दावली की तलाश हुई है बल्कि गहरे स्तर पर काव्यानुभूति की बनावट में भी परिवर्तन हुआ है।[१] मुक्तिबोध की काव्यानुभूति में व्याप्त प्रतीकों की भणिति रचनाकार की रचना एवं जीवन जीने का माध्यम है अधूरी जिन्दगी की पूरक रचनायें—मुक्तिबोध की रुचि के अनुकूल तभी पूर्ण मानी गईं जब वे लम्बी बनीं। लम्बी कविता में शिल्प का कसाव तथा भाषा की सजगता खोजना कठिन प्रक्रिया से होकर गुजरने के समान है। रचनात्मकता की पूर्ण ईमानदारी तथा अतिरिक्त सजगता के बावजूद भी कुछ प्रतीक बार-बार आवृत हुए है तथा प्रतिमान खण्डित रूप में देखे जाते हैं।[२] 'ग्रहण करने के बाद भी गहरे और गहरे असीम तक पैठना, श्यामल जल की अधिकतम गहराई में अपनी परछाई देखना अथवा ब्रह्मराक्षस से अपनी पहचान स्थापित करना कुछ ऐसे विचित्र अनुभव हैं जो रचनात्मकता के स्तर पर विद्रूप किन्तु नये युग की नयी प्रतिमा की सफल चित्रात्मकता से युक्त है।

अधुनातन काव्य-शिल्प एवं संरचना की प्रकृति पर विचार करते हुए डॉ० नामवर सिंह ने समकालीन हिन्दी कविता की प्रगीतात्मकता एवं नाटकीयता को प्रमुख तत्त्व कहा है।[३] डॉ० जगदीश गुप्त ने मुक्तिबोध के शिल्प विधान की प्रशंसा 'सुरियलिज्म' की प्रकृति के कारण की है। वी० डी० एन० साही का कहना है कि—"छायावादी कलाकृति मूलतः एक विस्फोट करता हुआ कला रूप है जैसे केन्द्रीय अर्थ फूट कर चारों ओर विलीन होता हुआ क्रमशः बिखर रहा हो ··तीसरे दसक की कलाकृति उसे एक लहर की तरह निर्मित करती है, जिस प्रयास में महादेवी से लेकर बच्चन तक के गीत निर्मित होते हैं। नयी कविता उस तरंग को स्ट्रक्चर रूप मे बदल देती है। जैसे हीरे का क्रिस्टल हो।[४] इन तीनों स्थापनाओं के प्रकाश में मुक्तिबोध की शिल्पविधि का अनुशीलन करना उपयुक्त है।

'हीरे का क्रिस्टल' यदि मुक्तिबोध की रचना का परिणाम है तो उसके [illegible]

---

१. कविता के नये प्रतिमान— नामवर सिंह—संस्करण १९६८ पृ० ७३।
२. नयी कविता अंक-४-५ पृ० ६३।
३. कविता के नये प्रतिमान—डॉ० नामवर सिंह -पृ० सं० १६५।
४. कविता के नये प्रतिमान में डॉ० नामवर सिंह द्वारा उद्धृत।

कलात्मकता प्रधान है, अर्थात् कविता की शिल्प विधि स्वतः रूप ग्रहण करती है। जगदीश गुप्त जी की दृष्टि में यही कलात्मकता अतियथार्थवादी जीवन-दृष्टि का परिणाम है। नामवर जी की दृष्टि में कविताओं में प्रतीकात्मकता कम तथा नाटकीयता अधिक है। क्रिस्टल या 'रवा' का रूप छोटी कविताओं के लिए सम्भव है और छोटी कविताओं को कवि स्वयं अधूरी मानता है। अतः उपर्युक्त तीनों स्थापनायें मुक्तिबोध के शिल्प का अलग-अलग पक्ष प्रस्तुत करती हैं। मुक्तिबोध का काव्य प्रस्तर खण्ड को तोड़ कर (अनुभव की) छेनी से काट-छाँटकर गढ़ा गया है। रचना में आकर ज्ञानात्मक संवेदन तरंग से स्ट्रक्चर नहीं बनता अपितु बहुत पहले द्रवत्व त्यागकर ठोस आकार ग्रहण कर चुका होता है। ग्रेनाइट, नीस आदि प्रस्तरीभूत चट्टानों का बनना अथवा कायान्तरित होना भौतिक प्रक्रिया का परिणाम है। उससे मूर्ति बनाना, ढालना, उसकी परवर्ती प्रक्रिया है। मुक्तिबोध की शिल्प विधि उसी शिल्पी की तरह है जो किसी मूर्ति के निर्माण में अधिक से अधिक समय देता सजाता सँवारता है। छायावादी प्रतिमानों द्वारा इन कविताओं की रचनात्मकता का मूल्यांकन भले ही कठिन हो किन्तु छायावादी सौन्दर्यबोध ठोस में भी द्रव की छाया अर्थात् आभास है[१] जबकि छायावादोत्तर काल का सौन्दर्यबोध द्रव के ठोस रूप में देखा जा सकता है। लम्बी कविताओं की नाटकीयता भाषिक-संरचना, लयात्मकता, संवाद-योजना आदि घटकों का परिणाम होती है अतः उसमें आरम्भ से अन्त तक कई बिम्ब (टूटे रूप में भी) एवं प्रतीकों के प्रयोग—(असंवृत रूप में भी) देखे जाते है। ऐसी लम्बी कविताओं का मूल्यबोध क्रिस्टल रूप में न सम्भव है न समीचीन। 'चकमक की चिनगारियाँ', 'एक स्वप्न कथा', 'ब्रह्मराक्षस', 'अँधेरे में' की शिल्प विधि विराट अनुभूतियों की माला के कारण प्रभावकारी है। अनुभूति की सघनता अथवा बिम्ब के मिनियेचर में अर्थ का वर्तुलाकार रूप देखा जाता है जो मूलतः शब्द ही होता है किन्तु रचनाकार की कुशलता से वही शब्द-क्रम ठोस आकार में काट-छाँट, तराश-बनावट की विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता है। यदि मुक्तिबोध की शिल्प विधि का अनुशीलन भारतीय परम्परा के अनुसार किया जाय तो उनकी कविता में प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास आदि हेतुओं मे से अभ्यास तत्त्व की अधिकता होगी।

अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाकर मुक्तिबोध ने लम्बी कविताओं की संरचना द्वारा शिल्प को आकार प्रदान किया है किन्तु इन लम्बी कविताओं की रचना में पूर्णतः सफलता की आशा नहीं की जा सकती है।[२] 'वर्तुलाकार भाव' गीतात्मक सृष्टि के कारण अब भी समाज में लोकप्रिय हैं। आज की व्यस्तता में लम्बी कविता

१. काव्य कला तथा अन्य निबन्ध— जयशंकर प्रसाद
२. नयी कवितायें एक साक्ष्य— डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी

उपयुक्त भी नहीं लगती है। तार्किकता बिम्ब-विधान तथा प्रतीकात्मकता के लिए विपरीत प्रवृत्ति कही जा सकती है। समकालीन रचनाकार शमशेर, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, अज्ञेय आदि की तुलना में मुक्तिबोध की बौद्धिकता कविता का सिद्धान्त बन जाती है। लम्बी कविताओं के सम्बन्ध में मुक्तिबोध ने अपनी सफलता का ही दावा किया है जबकि 'अभिव्यक्ति का विषय बनकर जो यथार्थ कविता में प्रस्तुत हुआ वह तात्त्विक दृष्टि से परस्पर गुंफित नहीं है।'[1]

डॉ० नामवर सिंह की स्थापना के अनुसार लाल-लाल-मशाल, अँधेरा-घुप-अँधेरा, स्याह पठार में परम अभिव्यक्ति की खोज विद्यमान है।[2] डॉ० जगदीश गुप्त के अनुसार यह श्यामता, अँधेरा और स्याह रंग अतल गहराई का सूचक है।[3] अंधेरे मे की अन्तिम पंक्तियों में विद्यमान कवि के कथन को नामवर सिंह ने समीक्षा का प्रतिमान बना लिया किन्तु इससे अधिक समीचीन है पहले नीले या अंधेरे का घनीभूत काला रंग तथा बाद में लाल-लाल प्रकाश या आशा के कमल का खिलना। शिल्प-विधि की दृष्टि से तराश एवं छेनी का उल्लेख समीक्षकों ने अनेक बार किया है किन्तु काले लोहे का ताप पाकर गल जाना, लाल होना तथा शीतल होने पर पुनः अपने मूल आकार में आना काले और लाल रंग का दो पक्ष है। दार्शनिक दृष्टि से कालिमा निराशा का गहन अन्धकार है तथा लालिमा अंतर्संघर्ष करके गलाई-तपाई गई कविता जो ताप पाकर पिघली है किन्तु ज्वालामय हो जाती है।

शमशेर बहादुर सिंह ने मुक्तिबोध के शिल्प-विधान की तुलना 'वाल्ट ह्विट मैन' से की है। उनकी सशक्त काव्य भाषा में विद्यमान कसाव एवं तनाव गतानुगतिकता नहीं आने देता है। सैद्धान्तिक स्तर पर मार्क्सवाद की चेतना से प्रभावित होने पर भी शिल्प एवं संवेदना के स्तर पर उन्होंने मानवतावाद की आधार भूमि को कहीं नहीं त्यागा है। बिखराव एवं टूटन का समाज रूप एवं शिल्प में बिखराव एवं टूटन का कारण बन गया है। वैचारिक स्थिरता में घूर्णन भले ही हो किन्तु केन्द्रापगामिता नहीं है।

कविता में आये हुए प्रतीक एवं बिम्ब 'असंवृत्' रूप में कवि के जीवन का पर्याय बने है। उज्जैन और मालवा के दीन हीन अभावग्रस्त समाज में सामान्य नौकरी करते हुए या बेकार रहकर जीविका की कठिनाइयों को झेलते हुए मुक्तिबोध में

१. एक साहित्यिक की डायरी — मुक्तिबोध, पृ० ३१।
२. कविता के नये प्रतिमान—नामवर सिंह।
३. गहराते हुए अंधेरे और समुद्र की सम्मिलित प्रतीकात्मक अनुभूति उनकी काव्य-चेतना की केन्द्रीय अनुभूति है। (नयी कविता स्वरूप और समस्यायें— डॉ० जगदीश गुप्त—पृ० सं० २०३)

बिखराव आया है जो कविता में शिल्पगत विशेषताओं का कारण बना। परिस्थितियों से समझौता न करनेवाला रचनाकार भयानक से भयानक कठिनाइयों को भी अपने परिवार के लोगों अथवा मित्रों से न बताकर स्वयं झेलता था जो कविता के जुझारू तेवर में देखा जाता है। वैचारिक स्तर पर मार्क्सवाद, मानवतावाद तथा अतियथार्थवाद से प्रभावित होने के कारण जीवन की विसंगति को कविता की विसंगति बनाना सामान्य प्रक्रिया है। सामाजिक पारिवारिक राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन की विडम्बना को झेलनेवाले रचनाकार की कविता में रसात्मकता या आनन्द की स्थिति देखना असम्भव है। ग्रामीण क्षेत्र में क्रान्तिकारी पार्टी के सक्रिय सदस्य के रूप में कार्य करते हुए उन्हें सदैव पुलिस तथा अंग्रेजी शासन से खतरा बना रहता था जो अभिव्यक्ति का खतरा, भयानक बात मुँह से निकालने का खतरा या 'यह दुनियाँ अब चल नहीं सकती' जैसी घोषणा के रूप में कथ्य बन गया।

ईंट, रोड़ा, पत्थर, धातु का टुकड़ा जो मुक्तिबोध को जीवनानुभव से प्राप्त हुआ था, उसे काट-छाँट तराशकर तथा आवश्यकतानुसार गलाकर पुनः ढालकर कलाकृति का रूप देना उनकी शिल्प विधि की विशेषता है। विराट भारत का काल्पनिक चित्र, गांधी की प्रतिमा, टालस्टाय का रूप दुर्गम पठार पहाड़ या जंगल का चित्रांकन करनेवाले सर्जक ने देश को निकट से देखा और परखा है। यही परख उनकी सर्जना का मूलाधार है।

काव्य भाषा, अप्रस्तुत विधान, प्रतीक योजना तथा व्यंग्योक्ति में मुक्तिबोध की अनुभूति ढलती तथा आकार ग्रहण करती है। यातनामय जीवन की सिसकती हुई श्वांस, आँसू से भीगे कपोल, अज्ञात भय से विकृत मुख मण्डल, चौंका हुआ चेहरा, खोई-खोई चेतना भाषा के स्तर पर छन्द विहीनता तथा गद्यात्मक कथ्य का कारण बनती है तथा रूप एवं शिल्प की दृष्टि से बिम्बों की माला रूप में देखी जाती है।

'अँधेरे में पता नहीं चलता / मात्र सुगन्ध है सब ओर / पर उस महक लहर में / कोई छिपी वेदना कोई गुप्त चिन्ता / छटपटा रही है / छटपटा रही है।'[१]

इस काव्यांश में आयी हुई अलौकिक सुगंध को डॉ० नामवरसिंह 'अस्तित्व की एक अलौकिक सुगन्ध– मानवीयता' रूप में परिव्याप्त मानते हैं।[२] इसी महक के मूल में विद्यमान वेदना, गुप्त-चिन्ता, छटपटाहट की ओर कवि स्वयं संकेत करता है। सुगन्ध में गुप्त चिन्ता की उपस्थिति विपरीत प्रभाव के यथार्थ परक मानसिक बिम्ब की उपस्थिति है जो शिल्प के स्तर पर रचनाकार मुक्तिबोध की वेदना कही जा सकती है।

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है (अँधेरे में) मुक्तिबोध—पृ०... ।

२ कविता के नये प्रतिमान नामवर सिंह पृ० सं० २१७।

प्रतीक योजना तथा बिम्ब विधान के अतिरिक्त अप्रस्तुत विधान की दृष्टि से मुक्तिबोध का शिल्प समीक्ष्य है। कहीं-कहीं तो इतनी लम्बी प्रतीकात्मकता देखी जाती है कि उसकी अर्थवत्ता दुरूहक सहयात्री बनने के बाद ग्राह्य होती है।

'आधीरात इतने अँधेरे में कौन आया मिलने / विमन प्रतीक्षातुर कुहरे में घिरा हुआ / द्युतिमय मुख वह प्रेम भरा चेहरा / × × × अवसर अनवसर / प्रकट जो होता ही रहता।'[१]

इस काव्यांश में झाँकता हुआ 'द्युतिमय मुख और प्रेम भरे चेहरेवाला अजनबी' अवसर अनवसर प्रकट होकर परिचित और अपरिचित की संदेहात्मकता बनाये रखता है। अप्रस्तुत विधान की इस सजगता के कारण कवि का आत्म-प्रक्षेप हृदय में रिस रहे ज्ञान के तनाव के सहारे आकार ग्रहण करता है। अप्रस्तुत विधान एवं अलंकारों के प्रयोग की विचित्र जिन्दगी में कहीं-कहीं पुरातन संस्कारों का 'धवल कैलाश' भी देखने को मिलता है जो कामायनीकार जयशंकर प्रसाद के आनन्द सर्ग का स्मरण कराता है। 'मात्र स्वअस्तित्व का इतना बड़ा अस्तित्व' निम्नलिखित पंक्तियों में सामान्य से असामान्य होकर मर्त्यों के निर्झर का उद्गम बन जाता है—

'गहरी आन्तरिक सम्पन्नताओं का / धवल कैलाश / सामान्यीकरण का वह असामान्यीकरण / अनुभूत सत्यों का वह समन्वित संगठित हिम शिखर / उसके शिला प्रस्तर से सहस्रों झर रहे रमणीय / शत निष्कर्ष / शत निर्झर ....।'[२]

'समन्वित संगठित हिम शिखर' का शब्दों के माध्यम से किया गया संगठन जिसके शिला प्रस्तर से रमणीय निष्कर्ष भी निर्झर बनकर झर रहे हैं, मुक्तिबोध की कविता का विराट पहाड़ है जिसमें कि उन्होंने निर्झर की सी अर्थवत्ता भरी है।

मनः स्थितियों का चित्रण तथा अरूप भावनाओं को रूपात्मक परिणति प्रदान करने में मुक्तिबोध की कलात्मकता समकालीन कविता की निजी पहचान बन जाती है। 'चिन्ता के गणित अंक / आसमानी स्लेट पट्टी पर चमकते / खिड़की से दीखते /[३]

गहन मानसिक अन्तर्द्वन्द्व और जीवन के तीखे अनुभव कविता में आने पर अप्रस्तुतों पर आरूढ़ लगते हैं। उनके अप्रस्तुत प्रस्तुत से अधिक प्रभावकारी तभी बनते हैं जब कभी वे सैद्धान्तिक मतवादों के आग्रह से मुक्त रहते हैं।

चला जा रहा हूँ / सूखे हुए झरने की पथरीली गली में / भयानक गुहाओं में घुसता हूँ काँप कर मन मार / उतरता हूँ गड्ढों में खोहों के तले में / सूखे झरने,

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—संस्करण १९६४—.२४८।
२. ,, ,, ,, टेढ़ा है —मुक्तिबोध।
३. चाँद का मुँह टेढ़ा है— मुक्तिबोध—संस्करण १९६४—पृ० २५३।
४. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध / सं० १९६४ / पृ० सं० २२।

खोह, गुफा, पथरीली गली, जंगल, झाड़ी, सुनसान यह भूमि से सम्बन्धित अप्रस्तुत विधान एवं प्रतीक उनके कलात्मक सौन्दर्यबोध को व्यापक स्तर पर उजागर करते हैं। भीतरी और बाहरी संघर्ष की जटिलता से आक्रान्त मुक्तिबोध का रचनाकार अँधेरे बन्द कमरे अथवा बाहर जंगल-झाड़ी और गुफा में कहीं भी अज्ञात भय से मुक्ति नहीं पा सका है। अभिव्यक्ति के लिए रचनात्मकता की तलाश उन्हें मुकम्मल जमीन नहीं दे सकी किन्तु इस गतिशीलता के बावजूद भी वे शिल्प की रूढ़ियों के शिकार हुए हैं। उलझी हुई संवेदनाओं का प्रमुख कारण कवि की छटपटाहट है —

> भूल गल्ती / आज बैठी है— जिरह बख्तर पहनकर /
> तख्त पर दिल के / चमकते हैं खड़े हथियार उसके दूर तक /
> आँखें चिलकती हैं नुकीले तेज पत्थर सी /
> खड़ी हैं सिर झुकाये / सब कतारें /"[१]

दिल के तख्त पर सैनिक की तरह सजी हुई भूल-गल्ती अपने मोर्चे पर सन्नद्ध है। उसकी मुस्तैदी विपरीत परिस्थितियों की मुस्तैदी है जो 'नुकीले तेज पत्थर-सी आँखों या 'जिरह बख्तर' की पोशाक से प्रकट होती है। अप्रस्तुत योजना का यह यथार्थवादी रूप सामन्तीय युग के विदेशी सैनिक रूप में उभरता है। ऐसी सख्त पहरेदारी में रचनाकार कभी स्वच्छन्दता का अनुभव कैसे कर सकता है।

चिल-चिलाते रहे फाँसले / तेज दुपहरी भूरी / सब ओर गरम धार-सा रेंगने चला / काल बाँका तिरछा /—आदि पंक्तियों में धूप का चिल चिलाना, गरम धार का रेंगना भूरी दोपहरी आदि रंगों एवं मनसा [illegible] की संश्लिष्ट अवस्था उनके मानस का परिचय कराती है।

मुक्तिबोध ने अपनी शिल्प-विधि का परिचय इन शब्दों में दिया है— 'मस्तिष्क, तन्तुओं में प्रदीप्त / वेदना यथार्थों की जागी / मेरे सुख-दुःख ने अकस्मात्/ जिस घनीभूत पीड़ा ने प्रसाद के मानस में 'आँसु' का रूप लिया है मुक्तिबोध के मानस में वही पीड़ा दहकती हुई चिनगारी, शोला, आग और धुआँ के रूप में प्रकट हुई है। पर्त-दर-पर्त सन्तोष एवं समन्वय के नीचे दबा हुआ ज्वालामुखी कभी सुप्त या शान्त नहीं होना चाहता। ज्वालामुखी की जमीन पर चलकर मुक्तिबोध के काव्य-पुरुष ने व्रणाहत, लहूलुहान झुलसे पैर से कुछ पाया है, कुछ ग्रहण किया है—

> "नीचे उतरो खुरदरा अँधेरा सभी ओर /
> वह बड़ा तना मोटी डाले /

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध / सं० १९६४ / पृ० सं० २२।

अधजले फिंके कपड़े व राख /
नीचे तल में—१

इन विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी अस्मिता बनाये रखना सहज कार्य नहीं है। 'मुक्तिबोध' ने पूरी ईमानदारी से लघुमानव की जिजीविषा को सुरक्षित रखा है —

पृथ्वी के रत्न विवर में निकली हुई बलवती जलधारा / नव-नवीन मणि समूह / बहाती लिये जाय / और उस स्थिति में रत्न मण्डल की तीव्र दीप्ति / आग लगाय लहरों में / उसी तरह स्फूर्तिमय भाषा प्रवाह में / जगमगा उठते हैं भिन्न मर्म केन्द्र२—

'भाषा प्रवाह में मर्म केन्द्र का जगना' जलधारा में बहते हुए मणि समूह रत्न भाण्डार की चमक जैसा है जो धारा द्वारा बहाकर बाहर लाया जाता है। रचनाकार भाव रत्नों को काव्य-भाषा में इसी प्रकार प्रवाहित कर लाता है। एक सबल 'फैन्टेसी' का सर्जक बराबर आश लगाये है कि महाकवि एवं युगद्रष्टाओं के गगन मे किसी महान प्रकाश पुञ्ज का अभ्युदय दुनियाँ का अँधेरा दूर करेगा। चमकती हुई ज्वाला से अँधेरा दूर होता है और ज्वाला का प्रकाश रत्नराशि का प्रकाश भी हो सकता है।

रचनाकार मुक्तिबोध यह संकेत करते हैं कि अन्य कवियों की रचना के बाद भी उनकी रचना का औचित्य है। 'स्वप्न-कथा' में निरूपित आदर्श की परिकल्पना उसी से सम्बन्धित है। आंतरिक आरोहावरोहों में पड़ने के कारण निर्णायक मुहूर्त में उनका रचनाकार न चाह कर भी समस्याओं को पार कर जाता है। विदेश-यात्रा करके लौटने के बाद अपने घर में बने अजनबी की तरह समकालीन रचनाओं की शिल्प-विधि में भारतीयता का तत्त्व तिरोहित हो चुका है। उसकी पहचान कठिन है जबकि विदेशी तत्वों की खोज में हमारे कवि और समीक्षक सन्नद्ध देखे जाते हैं।३ मन के चोर दरवाजे से सर्जना की प्रक्रिया का उद्घाटन मुक्तिबोध अनजाने ही करते हैं। न केवल मुक्तिबोध अपितु अज्ञेय भी इसे स्वीकार करते हैं।

प्रतीक अप्रस्तुत विधान, बिम्ब एवं मिथकों के रूप में विवृत काव्य-भाषा मे रचनाकार मुक्तिबोध की जिन्दगी की अनुभूति कला की अनुभूति बनकर व्यक्त हुई है। हारना, निराश होना, सर्जना से च्युत होना उनके सर्जक की नियति नहीं है। उनके समान धर्मा कवियों एवं व्याख्याताओं ने उनकी खोज प्रक्रिया को खोज और तदुपरान्त

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० १२९।
२ चाँद का मुँह टेढ़ा है—(एक स्वप्न-कथा)—पृ० १०८।
३ चाँद का मुँह टेढ़ा है (एक स्वप्न-कथा)—पृ० १०९।

उसे ग्रहण करने का प्रयास किया है। डॉ० राम विलास शर्मा की दृष्टि में यह खोज रहस्य से प्रेरित है। उनकी दृष्टि में वैचारिक स्तर पर मुक्तिबोध अस्तित्ववाद से अनुप्राणित होते हैं। डॉ० नामवर सिंह की दृष्टि में उनका शिल्प दुहरे अंतर्संघर्ष का प्रतिफल है। विदेशी शासन, हिन्दू मुसलमानों का संघर्ष, धार्मिक स्तर पर रोज के चलनेवाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष को झेलकर कबीर का रचनाकार मस्तमौला, फक्कड़ अपनी राह पर अकेले चलने का शौकीन हो जाता है। उसकी अलगाववादी प्रवृत्ति कविता में उसको पृथक रखती है। जाति से जुलाहा तथा कर्म से अपने को नीच कहकर भी कबीर ने कभी-कभी गुरु तथा ब्राह्मण को चुनौती दी है। अपने को ग्वाल मानने वाले कुछ ब्राह्मण कबीर द्वारा फटकारे जाते हैं। गुरु तथा निरंजन का परिचय देने वाला रचनाकार ज्ञान का प्रकाश चाहता था। मुक्तिबोध की तलाश भी इसी तेवर से युक्त है।

मुक्तिबोध के शिल्प में बिखराव का सांस्कृतिक एवं सामाजिक कारण भी है। परतन्त्र भारत की गरीब जनता की समस्याओं से निकट से जुड़े रहने तथा निम्न मध्य वर्गीय जीवन की यातना को झेलते-झेलते मुक्तिबोध का विद्रोही मन कभी तो उस दुर्ग को तोड़ना चाहता है और कभी पलायनवादी बन जाता है। शमशेर के शब्दो में—'मुक्तिबोध ने सब कुछ अपने ऊपर झेला था — अंग्रेजी शासन, युद्धकाल, सामन्ती साम्प्रदायिक प्रतिक्रिया, प्रकाशकों की व्यावसायिक वृत्ति की चरम सीमा। मुक्तिबोध न हंस के सम्पादकी में कुछ कर सके न नया खून में कुछ बना सके-- सिवाय विरोधियों और उपेक्षा करनेवालों की सीमा बढ़ाकर × × × हासिल किया उन्होंने गहरा काव्य-मर्म। उनका सारा जीवन बाहर से असफल रिक्त किन्तु अन्दर से रचनाकार की प्रतिभा से खूब समृद्ध हो चुका था।'[१] समृद्ध, प्रतिभा—सम्पन्न रचनाकार की शिल्प-विधि भी सम्पन्न होनी चाहिए थी किन्तु उसमें अनगढ़ मन एवं विद्रूपता का कारण है जीवन दृष्टि।

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—एक विलक्षण प्रतिभा (भूमिका)।

५. मुक्तिबोध की कविता में बिम्ब-विधान

(विकृताकृतिबिम्बा कवितायें)

सामने
बेचैन घावों की अजब तिरछी लकीरों से कटा
चेहरा
कि जिस पर काँप
दिल की भाप उठती है.........
पहने हथकड़ी व ऊँचा कद
समूचे जिस्म पर लत्तर
झलकते लाल लम्बे दाग
बहते खून के—
वह कैद कर लाया गया ईमान
सुलतानी निगाहों में निगाहें डालता
बेखौफ नीली बिजलियों को फेंकता
खामोश !!

—चाँद का मुँह टेढ़ा है —मुक्तिबोध
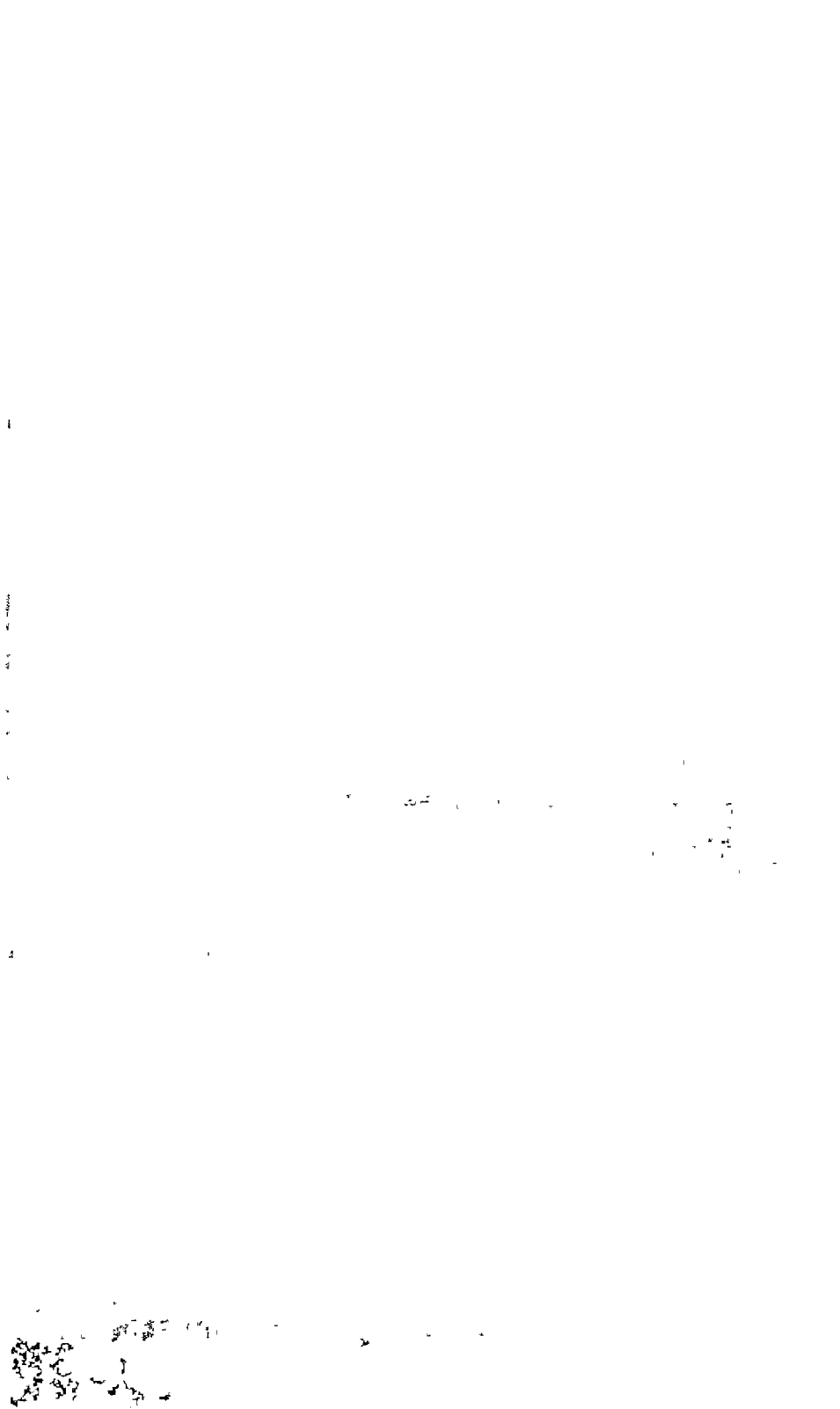
समकालीन हिन्दी कविता के मूल्यांकन में अभिव्यंजना-प्रसाधनों के अन्तर्गत बिम्ब, प्रतीक एवं मिथकीय संदर्भों का अनुशीलन किया जाता है। काव्य-कला में स्थित सौन्दर्यबोध, रूप एवं शिल्प तथा संवेदना के मूल्यांकन का आधार बिम्ब-विधान है। कविता की चित्रात्मकता, आस्वाद, संवेदनात्मक ज्ञान एवं आनन्दात्मक अनुभव 'एक निगूढ़ क्षण में कल्पनोद्भासपूर्ण मानसिक द्रवण'[1] के रूप में कवि के मानस से प्रादुर्भूत होते हैं। काव्य सर्जना के इस निगूढ़ क्षण में कवि के मानस में बने हुए 'बिम्ब', कविता में रूपायित होते हैं। बिम्ब-विधान का कोषगत अर्थ है मूर्त रूप प्रदान करना, चित्रबद्ध करना, प्रतिबिम्बित करना, मानस चक्षुओं के सम्मुख वस्तु विशेष को साकार करना। 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में कहा गया है—'बिम्ब किसी पूर्ण अवबोध का मूल उद्दीपन के अभाव में आंशिक अथवा समग्र रूप मे पुनः सर्जन करने वाली सचेतन स्मृतियाँ हैं।' ["Images are conscious memories which reproduce a previous perception, in whole or in part, in the absence of the original stimulus to the perception."][2] बिम्ब शब्द के इन अर्थों से स्पष्ट है कि कला-सर्जना में कलाकार के मानस में प्रादुर्भूत होकर बिम्ब कला में आते हैं।

आधुनातन समीक्षा में यह शब्द कला की सौन्दर्यपरक व्याख्या के लिए मनोविज्ञान एवं सौन्दर्यशास्त्र से ग्रहण किया गया है। बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में जब यथार्थवाद एवं अतियथार्थवाद के अतिरिक्त आग्रह के साथ मार्क्सवादी समीक्षा-पद्धति का बोल-बाला रहा तब रूप एवं कलावादी समीक्षकों ने बिम्ब-विधान को काव्य-कला के महत्त्वपूर्ण प्रतिमान के रूप में स्वीकार किया। सी० डी० ल्यूइस ने अपनी कृति 'द पोयेटिक इमेज' के द्वारा 'काव्य-बिम्ब' की सैद्धान्तिक प्रतिपत्ति की, जिसमे बिम्ब को कविता की व्याख्या का मुख्य आधार बनाया गया।[3] 'बिम्ब-वाद' के इस आन्दोलन के मूल में प्रतीकवादी विचारक बादलेयर एवं मेलार्मे का वैचारिक समर्थन था जो १८६०-६० ई० के बीच यथादृष्ट यथार्थवाद की प्रतिक्रिया रूप में विकसित हुआ। समीक्षा में बढ़ती हुई मनोवैज्ञानिकता तथा प्रतीकवाद के व्यापक प्रभाव से 'काव्य-बिम्ब' का सिद्धान्त इतना व्यापक हुआ कि एज्रा पाउन्ड ने उत्साहाधिक्य में

---

१. नयी कविता का आत्मसंघर्ष—मुक्तिबोध—पृ० १६४।

२. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका—सी० डब्लू० ब्रे० Vol. 12—Page 103.

३. नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें—डॉ० जगदीश गुप्त—पृ० ६०-६१ पर उद्धृत।

यह कह डाला कि—"It is better to present one Image in a life time than to produce voluminous works."[१] हिन्दी समीक्षा में यह सिद्धान्त आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की रसवादी व्याख्या के साथ छायावादी कविता की समीक्षा के लिए स्थापित किया गया और १९६० ई० के पूर्व तक इस मतवाद का बोल-बाला रहा।

हिन्दी काव्य-समीक्षा के प्रथम चरण में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद' के संदर्भ में बिम्ब शब्द का प्रयोग किया है। उनका कहना है—"पाठक के हृदय में दृश्य के सौन्दर्य (का) × × × अनुभव थोड़ा-बहुत आप से आप होना साधारणीकरण की प्रक्रिया, प्रकारान्तर से सहृदय द्वारा बिम्ब ग्रहण की प्रक्रिया है।"[२] आचार्य शुक्ल की इस शब्दावली में 'सौन्दर्यानुभव' तथा 'रस-सिद्धान्त' की अनुगूंज है। यद्यपि डॉ० जगदीश गुप्त यह आपत्ति करते हैं कि शुक्ल जी भारतीय-काव्यशास्त्र में प्रचलित-प्रतिबिम्ब, प्रतिकृति, चित्र-काव्य आदि शब्दों का प्रयोग न कर 'बिम्ब' शब्द का प्रयोग क्यों करते हैं ?[३] किन्तु डॉ० नामवर सिंह ने अभिनवभारती में उद्धृत 'मानसी साक्षात्कारात्मिकता प्रतीति' को कविता की मूर्तिमत्ता का मूल्यांकन मानते हुए कहा है कि शुक्ल जी ने इस विस्मृत परम्परा का पुनरुद्धार किया है।[४] डॉ० सिंह इसे भट्ट नायक के 'विभावन-व्यापार' की प्रतिष्ठा कहते हैं। निश्चय ही आचार्य शुक्ल की इस स्थापना से हिन्दी कविता के समीक्षा-क्षेत्र में एक नये युग का आरम्भ हुआ है। छायावादी कवि पन्त की 'चित्र-भाषा' तथा 'निराला' के 'विराट चित्रों की परिकल्पना' को समझने में भी बिम्ब ग्रहण से सहायता ली जा सकती है।

डॉ० जगदीश गुप्त का मत है कि 'बिम्ब' का निकटवर्ती शब्द 'अर्थ-चित्र' है जिसका उल्लेख भारतीय साहित्य-शास्त्र में मिलता है। 'वाच्य-चित्र' अथवा 'अर्थ-चित्र' का सूत्र खोजते हुए डॉ० गुप्त ने 'काव्य-प्रकाश' में उद्धृत पंक्तियों पर पुनः विचार करके कहा है कि—"भारतीय काव्य-चिन्तन में अर्थ के भीतर निहित या उससे व्यंजित होने वाली बिम्बात्मकता के प्रति समुचित दृष्टि नहीं अपनायी गई है।

१. नयी कविता स्वरूप और समस्यायें—डॉ० जगदीश गुप्त—पृ० ५९
२. "काव्य में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिम्बग्रहण अपेक्षित होता है। यह बिम्ब ग्रहण निर्दिष्ट गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है।"
चिन्तामणि—(भाग १), पृ० १४५।
३. नयी कविता : अंक ५-६—डॉ० जगदीश गुप्त—पृ० सं० २०।
४. कविता के नये प्रतिमान—डॉ० नामवर सिंह—पृ० ११०।

उसे सादृश्यमूलक अलंकारों से पृथक् करके एक स्वतन्त्र तत्त्व के रूप में देखा जाना चाहिये था।''[१] डॉ० गुप्त साहित्य शास्त्र के उस वर्गीकरण से सन्तुष्ट नहीं है जिसमें 'चित्रकाव्य' को घटिया स्तर का कहा गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'चित्र-काव्य' को प्रहेलिका के स्तर की रचना कहा है। इससे यह स्पष्ट है कि शुक्ल जी की दृष्टि में 'चित्र-काव्य' में 'बिम्ब-विधान' की गम्भीर परिणति सम्भव नहीं थी। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार 'बिम्ब-विधान का सम्बन्ध अलंकार, ध्वनि तथा शब्द-शक्ति से है।''[२] लक्षणा की मूर्ति विधान की क्षमता बिम्ब-विधान से मिलती-जुलती है। ध्वनि का भेद 'वस्तु-ध्वनि' तथा 'रस-ध्वनि' के रूप में करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने 'वस्तु-ध्वनि' को ही प्रत्यक्षतः बिम्ब-विधान की धारणा से सम्बन्धित कहा है।

डॉ० नगेन्द्र, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० जगदीश गुप्त एवं डॉ० नामवर सिंह की इन स्थापनाओं पर यदि तात्त्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि 'काव्य-बिम्ब' और उसकी रूप एवं शिल्प सम्बन्धी स्थापना का सम्बन्ध रस-सिद्धान्त एवं अलंकार-सम्प्रदाय से भी हो सकता है। डॉ० नामवर सिंह एवं डॉ० जगदीश गुप्त की स्थापनाओं में अभिनव गुप्त एवं भट्टनायक की रस एवं ध्वनि सम्बन्धी मान्यताओं का उल्लेख मिलता है। निश्चय ही मानस चक्षुओं के सम्मुख वस्तु-विशेष को साकार रूप प्रदान करने के लिए रचनाकार द्वारा जो काव्य-भाषा प्रयुक्त होती है बिम्ब उसी का उपादान है। आचार्य शुक्ल की काव्य-बिम्ब सम्बन्धी धारणा को पाश्चात्य काव्य चिन्तकों का प्रभाव कहते हुए डॉ० जगदीश गुप्त ने आचार्य मम्मट को भी संदेह की दृष्टि से देखा है।[३] 'रूप तत्त्व की सम्बद्धता एवं काव्योपयोगिता के प्रति व्यक्तिगत आकर्षण' के परिणामस्वरूप विचार-संघर्ष को रूप देने के आवेग में उन्होंने तत्त्वान्वेषी आचार्य का पथ त्यागकर 'नयी कविता' के व्याख्याता का मोर्चा सम्भाल लिया। जिससे उन्होंने 'रूपात्मक परिकल्पन' को स्वतन्त्र व्यापार कह डाला और काव्य-बिम्ब के सोध-भाव का पथ ही त्याग दिया। 'नयी-कविता' के कवि रूप में डॉ० गुप्त का सभी मोर्चों पर संघर्ष तथा भाषा के मोर्चे पर जूझ जाने का आग्रह स्वीकार किया जा सकता है किन्तु आचार्य रूप में भी उनकी सभी स्थापनायें निर्विवाद हों यह आवश्यक नहीं है। गुप्त जी ने भी आंशिक रूप में यह स्वीकार किया है कि साहित्यदर्पण, काव्य-मीमांसा सदृश ग्रंथों तथा 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' एवं 'वाक्यं रसात्मक काव्यं' परिभाषाओं में 'मूर्तिमत्ता' की धारणा है। इसी संदर्भ में डॉ० नामवर सिंह द्वारा भट्ट नायक के भावकत्व व्यापार' तथा

---

१. नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें—डॉ० जगदीश गुप्त—पृ० ५२-५३।

२. काव्य-बिम्ब—डॉ० नगेन्द्र—पृ० सं० —४५

३. नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें · डॉ० जगदीश गुप्त—पृ० ५३।

अभिनव गुप्त के विभावन-व्यापार की समानता की सम्भावना पर किया गया विचार बिम्ब-विधान के समझने में सहायक होगा।

आचार्य भट्ट नायक द्वारा रस-निष्पत्ति की व्याख्या में 'भोजकत्व' को रस-चर्वणा की तीसरी स्थिति माना गया है। 'भावकत्व-व्यापार' की पुनर्व्याख्या में अभिनवगुप्त ने 'विभावन-व्यापार' का उल्लेख किया है जिसमें कवि भाव को 'विभाव' मूर्तित करता है। सहृदय में यह विभाव पुनः भाव रूप में आता है। यदि अभिनव गुप्त के इस कथन की व्याख्या में 'बिम्ब-प्रतिबिम्ब' सिद्धान्त का सहारा लिया जाय तो और स्पष्ट हो जायगा कि कवि के मानस में उद्भूत रस का (भाव) बिम्ब कविता में भाव (प्रतिबिम्ब) रूप में देखा जाता है। अभिनवगुप्त की इस स्थापना में सहृदय भावग्रहण की प्रवृत्ति पर विशेष बल दिया गया है किन्तु पाश्चात्य समीक्षक सहृदय या ग्रहीता के पक्ष को व्याख्यायित न कर प्रायः कवि या कलाकार के पक्ष को व्याख्यायित करते हैं। 'बिम्ब-विधान' की धारणा पश्चिम से पूर्व में आने पर ऐसी समझ का कारण बनी। आलोच्य विषय का सम्बन्ध अप्रस्तुत योजना, रूपक तत्त्व एवं अलंकार से भी है। पं० रामदहिन मिश्र ने अप्रस्तुत विधान की सीमा को व्यापक कर बिम्ब एवं प्रतीक-विधान को इसी के अन्तर्गत माना है। बिम्ब-विधान की विशद व्याख्या मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ में की जाती है जिसमें मूल प्रेरणाओं तथा प्रेरकों का भी विवेचन किया जाता है। फ्रायड एडलर एवं युंग की मनोविश्लेषणवादी विचारधारा के अनुसार बिम्ब को कलाकार की दमित वासना की प्रतिक्रिया कहा जाता है। युंग का आद्यबिम्ब का सिद्धान्त इसी का व्यापक रूप है।

बिम्ब-विधान में सर्जक की कल्पना तथा स्मृति का अनिवार्य सहयोग होता है। काव्य-बिम्ब कवि द्वारा स्मृति के माध्यम से ग्रहण किया गया काल्पनिक चित्र है। आर्थर लावेल के अनुसार 'कल्पना' मानस में बिम्ब के उद्भव की शक्ति है। कवि की आन्तरिक सहजानुभूति कल्पना एवं सौन्दर्यानुभूति के सहारे बिम्ब बनकर कविता में आती है।¹ स्मृति के गहन स्तर पर स्थित अनुभूति और उसके काल्पनिक सृजन में जार्ज ह्यूले ने कोई तात्त्विक भेद नहीं माना है। उनके अनुसार बिम्ब-सृजन में आई हुई अनुभूति सामान्य अनुभूतियों से तीव्रतर होती है। कवि की स्मृति प्रसूत अनुभूति, भावना और बिम्ब सामान्य मानव की अपेक्षा अधिक जीवन्त स्पष्ट और परिमाण में अधिक होते हैं। स्मृति और कल्पना में अन्तर न मानकर उन्होंने कवि की प्रतिभा-शैली और उसकी ग्रहणशीलता को बिम्ब-विधान की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण माना है। भारतीय साहित्यशास्त्र में काव्य के हेतु एवं प्रयोजन का सम्बन्ध भी बिम्ब-विधान से स्थापित किया जा सकता है।

1. The faculty of forming in image in the mind.—
... II And It s Wonder Arther Lovell P 16

काव्य-सर्जना में प्रवृत्त हुए रचनाकार के मानस में स्थित विभिन्न इन्द्रिय संवेद्य अनुभव कविता की वस्तु तथा रूप में आकर उसकी सौन्दर्यानुभूति का परिचय कराते हैं। रचनाकार की सौंदर्यानुभूति ही उसके काल्पनिक बिम्बों में रूप ग्रहण करती है। कविता के रूप और भाव से सम्बन्धित होने के कारण बिम्ब-विधान का सम्बन्ध इसकी सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से होता है। कविता भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति पाती है जिसमें प्रतीक बनने के पूर्व अप्रस्तुत योजना, अलंकार-उपमा रूपक आदि भी यथा समय बिम्ब-विधान के रूप में रूपायित होते हैं। कविता के मूर्त तत्त्व, अनुभूति, विचार तत्त्व, सादृश्य आदि की अभिव्यंजना बिम्बों के माध्यम से ही सम्भव है। इसका महत्त्व 'एज्रापाउन्ड' के इस कथन से प्रकट होता है—"काव्य-बिम्ब भावातिरेक का चरम शीर्ष बिन्दु है। अनुभूति से रहित काव्य-बिम्ब की सत्ता सम्भव नहीं है।"[१] माइकेल 'ओकसाट' का कहना है कि—"By poetry I mean the activity of making images of a certain kind and moving about among them in a manner oppropriate to their character.[२] एज्रापाउन्ड तथा माइकेल ओकसाट के इन कथनों से स्पष्ट है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अनुभूति की परख के लिए कविता के प्रतिमान रूप में बिम्ब सर्वाधिक सशक्त रहा है।

भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा में प्रचालित इन मान्यताओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि बिम्ब शब्द काव्य समीक्षा के लिये भले ही नया हो किन्तु इससे सम्बन्धित कल्पना तत्त्व, सादृश्य विधान, अभिव्यंजना आदि का संकेत कविता के तात्त्विक अनुशीलन में किया जाता रहा है। सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तनो के परिणाम स्वरूप कवि एवं सहृदय की रुचि, भावबोध का स्तर संस्कार एवं विचार परिवर्तित होते रहते हैं। इसीलिए कविता के प्रतिमान भी बदलते हैं– यहाँ तक कि कविता का रूप, शिल्प विधान, कलाविधान एवं अभिव्यंज्य भी। भारतीय साहित्य शास्त्र के आचार्य भट्टलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक आदि की दृष्टि आध्यात्मिकता से अनुप्राणित होने के कारण कविता के प्रतिमान नहीं अपितु कविता की आत्मा से विचार शृंखला आरम्भ होती है। अलंकार सम्प्रदाय के साथ आयी हुई चित्रकाव्य की अवधारणा तथा काव्य के मूलभूत गुण की विवीक्षा में सौन्दर्य, अनुभूति, हृत्संवेद्यता आदि में बिम्ब-विधान का संकेत मिल सकता है।

---

१. An Image is that which presents an intellectual and emotional complex in an instant of time.—

(डॉ० जगदीश गुप्त द्वारा पृ० ६५ पर उद्धृत)।

२ The voice of Poetry in ... ation of ... Page 31

मुक्तिबोध की कविता की बिम्बात्मकता तथा प्रतीक योजना की विवीक्षा प्रकारान्तर से सपाटबयानी के युग में रूप एवं कलाबोध की व्याख्या है किन्तु जब कविता की अस्मिता को स्वीकार किया जाता है तो उसके सौन्दर्यबोध को भी व्याख्यायित करना समीचीन है। अभिव्यक्ति के लिये प्रेषणीयता की चुनौती को स्वीकार कर रचनाकार भाषा के मोर्चे पर उतरता है जिसके संदर्भ में बिम्ब, प्रतीक, अप्रस्तुत विधान आदि उसके सहायक होते हैं। कविता के बिम्बों का अनुशीलन रचना धर्मिता की मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया से सम्बन्धित होता है। अप्रस्तुत विधान, अलंकार निरूपण तथा ध्वनि एवं वक्रोक्ति के अतिरिक्त हिन्दी काव्य-समीक्षा में बिम्बविधान का सन्दर्भ कवि की मानसिक वृत्ति का साक्षात्कार है। गतिमयता एवं सघन भावानुभूति की दृष्टि से छोटी कवितायें अधिक सफल कही जाती है किन्तु मुक्तिबोध ने छोटी कवितायें कम लिखी हैं तथा जो लिखी भी हैं वे अधूरी हैं। लम्बी कविताओं को मूल्यवत्ता एवं गाम्भीर्य की दृष्टि से सफल मानते हुए मुक्तिबोध ने इनमें प्रतीकों और बिम्बों के असंवृत्त रूपों को अपनी जिन्दगी का प्रति बिम्ब कहा है।

उनकी कविताओं में अधुनातन संदर्भों एवं अतियथार्थवादी प्रवृत्तियों के परिणाम स्वरूप सपाटबयानी देखी जाती है तथा बिम्ब बिखरे होते हैं; लम्बी कविताओं में बिम्ब विधान का एक जैसा प्रयोग मिलना सम्भव भी नहीं है। इनकी उलझनें अर्थवत्ता की दृष्टि से दुर्लंघ्य हैं। अपने मित्र नेमिचन्द्र जैन को सम्बोधित एक पत्र में मुक्तिबोध ने स्वीकार किया है कि कविता को वे बार-बार दुरुस्त करते थे।[१] इतनी सजगता के बावजूद बिम्बों के बिखराव का कारण विषयों की अधिकता है।[२] उनमें विद्यमान गहन चिन्तन तथा विविध-विषयों का व्यापक ज्ञान एक साथ कविता में फूट पड़ने को उद्यत होता है परन्तु सब का सब कविता में न उतार पाने की असमर्थता उन्हें पुनः-पुनः विविध प्रयोगों के लिये प्रेरित करती है। अपनी वाणी में महाकाव्य की पीड़ा मानकर वे लम्बी कविताओं को रूढ़िगत संस्कारों की सीमा से ऊपर उठकर नवीन प्रतिमानों तथा नये सौन्दर्य बोध के अनुसार जाँचने परखने की सलाह देते हैं। महाकाव्य से उनका तात्पर्य पुरानी मान्यताओं के अनुरूप न होकर समकालीन जीवन मूल्यों के अनुरूप रचित महाकाव्य से है।

---

१. 'आप विश्वास नहीं करेंगे एक कविता को दुरुस्त करने के लिए छः घण्टे लगते हैं।' (आलोचना—अंक ६—पृ० सं० ३७।

२. जीवन में आज / के लेखक की कठिनाई यह नहीं है कि / कमी है विषयों / की वरन यह कि आधिक्य उनका ही / उसको सताता है / और वह ठीक चुनाव कर नहीं पाता / (चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० सं० ७३—)

आधुनिकताबोध एवं नवीन सौन्दर्याभिरुचि के परिणाम स्वरुप मुक्तिबोध एक खास प्रकार की काट-छाँट एक खास प्रकार की शैली के अनुरूप एक खास प्रकार के बिम्बों को भी कविता में स्थान देते हैं।[1] आत्मसंघर्ष की स्थिति में उन्होंने अर्थवत्ता की अभिव्यक्ति के लिए जीवन संदर्भ के अनुरूप जिन प्रतीकों का सहारा लिया है वे उनके कवि-मानस में विद्रूप-चित्र, आवेग युक्त फैण्टेसी, अभूतपूर्व कष्ट एवं पीड़ा के उत्स रूप में रहे होंगे। सौन्दर्यानुभव के क्षण में इनसे स्निग्ध, सुगम एवं सार्थक बिम्ब उद्भूत हुए किन्तु कभी-कभी सपाट चित्र भी आये हैं जो बंजर के सौन्दर्य की तरह हैं—[2]

इतने में अकस्मात् गिरते हैं भीतर से /
फूले हुए पलस्तर / गिरती है चूने भरी रेत /
खिसकती हैं पपड़ियाँ इस तरह / खुद ब खुद /
कोई बड़ा चेहरा बन जाता है / स्वयमपि मुख बन जाता है दिवाल पर /[3]

'खुद ब खुद बनता हुआ चेहरा' उसमें दिखाई पड़नेवाला मुख एक ऐसी स्थिति में बना है जब कि प्लास्टर टूट रहा हो, भूचाल से पूरा मकान हिल रहा हो गिरने को हो। उसकी पपड़ी, चूना, रेत खिसक कर गिर रहा हो? एक साथ मकान के गिरने की भयानक स्थिति का चित्रण तथा मूर्तिमत्ता की प्रक्रिया मुक्तिबोध की कला की पहिचान कराती है। इसी प्रकार तूफानी दृश्य, जिन्दगी की हाहाहूती तथा अन्तरमन का सैलाब ज्वाला मुखी के रूप में फूटता है—

गम्भीर श्याम तूफानी बादल टूट पड़े फट पड़े /
और बादल के धुँधले से सफेद / अनगिनत सुत अनगिनत तार /
तनजायँ और झूलने लगे / गिर पड़े और घर टूट जाँय /[4]

मन के अन्तराल में सोई हुई वासना जिस प्रकार एकाएक सेंसर को तोड़कर सब कुछ कह देने के लिए विवश करती है उसी प्रकार कवि तनाव एवं बेचैनी से मुक्ति पाने के लिए 'घर टूट जाय- 'उड़जाय टीन टप्पर व तार खम्भे उखड़े' जैसी कल्पना करता है। कविता की इन पंक्तियों के पढ़ते ही एक आँधी का दृश्य सामने आता है। यही नहीं और भयानक दृश्य उनकी कविता में प्रतिबिम्बित हैं—

---

१. आग्रह, वाद का प्रभाव खास कटान, खास रचना का कठोर सीमा निर्धारण भाव ग्रहण एवं जीवन की सौन्दर्याभिरुचि के क्षण में होती है।
—नयी कविता का आत्म संघर्ष—पृ० १६८।

२. एक साहित्यिक की डायरी—मुक्तिबोध—

३. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—२४५—

४. " " (इस चौड़े ऊँचे टीले पर)

सब ओर गिर रहीं चिनगियाँ नीली / मूर्ति के तन से झरते हैं अंगार।
मुसकान पत्थरी ओठों पर काँपी, आँखों में बिजली के फूल सुलगते।[१]

तिलक की पाषाणमूर्ति से निकलती नीली चिनगारी तथा उससे झरनेवाला अंगार एक भौतिक प्रक्रिया के सहारे प्रतिबिम्बित किया गया है। पत्थर पर पड़ने-वाले हथौड़े की चोट से चिनगारी निकलती है, भयानक ज्वाला या ताप पाकर पत्थर की प्रतिमा चटखकर टूटती है तथा कुछ ऐसी चट्टानें भी होती हैं जो टूटती नहीं अपितु लोहे के टुकड़े की तरह आग में लाल हो जाती है। कवि मुक्तिबोध के ये बिम्ब उनकी मनासिकता का भी परिचय कराने में सफल हैं। कविता में वे बराबर लिखते भी है—'मेरा दिल धड़का', 'हृदय की धक्-धक्', 'गलरहा दिल यह', 'सह नहीं सकता' आदि।

मुक्तिबोध की कविता में मानसिक चित्रों के बिम्ब अधिक प्रयुक्त हुए हैं। कभी-कभी उन्हें यह अनुभव होता है किउन का कथ्य शायद अभी प्रभावकारी नहीं बना है तब वे और भी तीव्र शब्दावली का प्रयोग करते हैं। 'सुनसान', 'साँय-साँय', 'इतने में कोई दे रहा दस्तक' में दहशत परिलक्षित होती है। असहाय अवस्था में काव्य नायक का बंदकमरे मेंभी डर का अनुभव कविता में सघनता का वातावरण निर्मित करता है। काव्य-बिम्बों के असंवृत रूप आंतरिक बेचैनी और निराशा के सूचक हैं। आग, धुआँ, तूफान और ज्वालामुखी के बिम्ब क्रान्ति एवं विद्रोह की मानसिकता का परिचय कराते हैं। वीरान-स्थल, सुनसान जंगल 'साँय-साँय' से रिक्तता का बोध होता है। खोह, गुफा, शिखर, मसान में किंकर्तव्यविमूढ़ता प्रकट होती है। जिन कविताओं को रचनाकार सफल मानता है उनमें बिम्बों की माला देखी जाती है। कभी-कभी इन बिम्बों को जोड़नेवाला सूत्र भी गुम रहता है। बहुरूपीय आकार बहुकोणीय तराश, एवं नक्काशी की शिल्पविधि मुक्तिबोध के प्रयास का परिचय कराती है।

दिल के भीतर की गरम इंट की जलन-मानव जीवन की विसंगति को कविता में उतारने के लिये मुक्तिबोध ने उसके लिए यथार्थ इंट की दीवाल पर कल्पना का प्लास्टर तथा आशा की छत लगायी है किन्तु विप्लवी मन इसे शीघ्र ही तोड़ने का उपक्रम करने लगता है—

'कि बिल्डिंग गूँजती है, काँप जाती हैं / दिवालें ले रही आलाप / पत्थर गा रहे हैं तेज / तूफानी हवायें घूम करतीं गूँजती रहती / उखड़ते चौखटे में ही। खड़ा-खड़ खिड़कियाँ नचतीं / भड़ा भड़ / सब बजा करते / सभी बेडौल दरवाजे /[२]

१. चाँद का मुह टेढ़ा है— (अंधेरे में) — मुक्तिबोध
२. चाँद का मुह टेढ़ा है— मुक्तिबोध पृ सं० १५४।

मुक्तिबोध की सबसे विषम समस्या है अनुभूत जगत के भोगे गये यथार्थ को कविता में कहने की। जीवन की कटुताओं और त्रासद परिस्थितियों को अभिव्यंजक बनाने में वे ऐसे बिम्बों का प्रयोग करते हैं जो विद्रूप लगते हैं।

सत्य के गर्वीले / अन्याय न सह मित्र /
संघर्ष करता हुआ / तू जीवन का खींच चित्र /
मिथ्या की हत्याकर / बुद्धि के आत्म-विष भरे तीर से /
खींच चित्र मानव का / प्राणों के रुधिर की लकीरों से /[1]

जुझारू रचनाकार मानव का वास्तविक चित्र खींचने के लिए अपने खून को रंग के स्थान पर प्रयुक्त करता है। सत्य की रक्षा करना उसका अभीष्ट है। आत्म मंथन में उसे अमृत नहीं विष मिला है जिसका प्रयोग वह कलम के स्थान पर तीर में करता है, जिससे कि मिथ्या की हत्या हो सके। शिकार की क्रिया के साथ ही कवि का उपक्रम हिंसा द्वारा अहिंसा की स्थापना है। ऐसे चित्रों से उनकी कविता की पंक्तियों में महाकाव्य की संवेदना आई है। चिन्तन की प्रधानता के कारण 'ध्वनि-बिम्बवती शब्द क्रम शैली[2]' का अभाव मुक्तिबोध के कवि द्वारा उनके चिन्तक की स्थापना का खण्डन है।

विद्रूप चित्रों की अभिव्यक्ति मुक्तिबोध के काव्य की असफलता हो सकती है किन्तु ऐसे बिम्बों का प्रभाव इन्द्रिय ग्राह्य बिम्बों की अपेक्षा अधिक पड़ता है। डॉ० नामवरसिंह, शमशेर बहादुर सिंह डॉ० जगदीश गुप्त आदि समीक्षक मुक्तिबोध के ऐसे काव्य-बिम्बों को सफल मानते हैं—

'खून भरे बाल में उलझा है चेहरा / भौहों के बीच में गोली का सूराख / खून का परदा गालों पर फैला / होठों पर सूखी है कत्थई धारा / फूटा है चश्मा नाक है सीधी /[3]

काव्य-कला को एक खोज और ग्रहण प्रक्रिया का परिणाम माननेवाले कवि ने लहू-लुहान मानवीय चेहरों को कविता में प्रतिबिम्बित किया है। भौहों के बीच के गोली के सूराख से निकला रक्त सर्वत्र फैल गया है। खून सूखकर काला पड़ गया है जो मृत होने का लक्षण है। टार्च के प्रकाश में देखा गया 'जन' का यह चेहरा एकान्त-प्रिय परिचित मित्र का है जो 'कलाकार' भी था। कार्यक्षमता होने पर भी कार्य करने से वंचित तथा शुचितर विश्व का स्वप्न देखनेवाले कलाकार की दुर्गति इस बिम्ब से प्रकट होती है। 'मारा गया बधिकों के हाथ' पंक्ति से अर्थ खुलता है जिससे

१. भूरी-भूरी खाक-धूल— मुक्तिबोध—पृ० सं० २१६,
२. नयी कविता का आत्म संघर्ष— ,, —पृ० सं०—२२
३ चाँद का मुँह टेढ़ा है ,, —पृ० सं० २६४/

जीवनादर्श का वध, एक युग का अन्त, 'प्रभु की मृत्यु' जैसी शब्दावली नीत्से का स्मरण कराती है। ऐसे बिम्बों की सर्जना कर मुक्तिबोध ने 'खतरनाक जिन्दगी' की खौफनाक वारदातों का चित्रण किया है। इसी 'अँधेरे में' कविता में मृत्यु के बाद 'पोस्ट मार्टम' की क्रिया से सम्बन्धित बिम्बऔर भी भयानक है।

'जबरन ले जाया गया मैं गहरे / अँधियारे कमरे के स्याह सिफर में / टूटे से स्टूल में बिठाया गया हूँ / शीश की हड्डी जा रही तोड़ी / लोहे की कील पर बड़े-बड़े हथौड़े / पड़ रहे लगातार / शीश का मोटा अस्थि कवच ही निकाल डाला /'[1]

सच्चे सपनों का आशय, 'क्षोभक स्फोटक', 'पश्यत कैमरा' खयालों के परचे आदि का रहस्य जानने के लिए मस्तिष्क का आवरण हटाकर की गई खोज आज की देन है। कलाकार तथा कवि के अंतर्मन में स्थित कल्पना, आस्था एवं श्रद्धा को समाज किस प्रकार निकालना चाहता है कवि ने इसे चित्रित किया है।

मृत्यु, शव, मृतात्मा, क्षत-विक्षत शरीर, खंडित अंग प्रत्यंग के बिम्ब मुक्तिबोध की परवर्ती रचनाओं में प्रायः देखे जाते हैं। 'अंतःकरण का आयतन', स्वप्न कथा, 'मुझे याद आते हैं', व्यक्तित्त्व और खंडहर, चम्बलघाटी आदि कविताओं की बिम्ब योजना एक स्पष्ट प्रकार की है जिसमें व्यक्तित्त्व की पर्तें खुलती हैं। 'कला आभ्यंतर के 'वाह्यीकरण' का एक रूप है।' × ×[2] जो बिम्बों के रूप में प्रकट होता है। 'वाह्य का आभ्यंतरीकरण' अथवा 'आभ्यंतर का वाह्यीकरण' बिम्बों के द्वारा ही कविता में सम्भव होता है। अंतः प्रकृति का साक्षात्कार' भी इसी प्रक्रिया का एक रूप है। जैसी सैद्धान्तिक विवृति मुक्तिबोध समीक्षा में करते हैं वैसी न कविता में हुई है न सम्भव ही है। बिम्बों द्वारा अंतर्दर्शन की प्रक्रिया के जड़ीभूत होने के कारण प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार पूँजीवादी शिकंजे से समाज को मुक्ति प्रदान करना चाहता है। उनकी कविता प्रतीकों के माध्यम से भी ग्रहण की जाती है। कविता में स्थित प्रतीक बिम्ब के रूप में पहले मुक्तिबोध की कला का अंग बनते हैं फिर अर्थवत्ता द्वारा पाठक में संवेदना जाग्रत करते हैं।

मृत्यु, दहशत, तनाव, शव पोस्टमार्टम आदि से सम्बन्धित बिम्बों के अतिरिक्त तीसरी कोटि ऐसे बिम्बों की है जो कविता के कैन्वस में प्रयुक्त है। विराट् पुरुष, विराट् आकार, विशालकाय देव, ब्रह्मराक्षस, समुद्र, पर्वत आदि के चित्र उनकी कविताओं में देखे जाते हैं। 'स्वप्न-चित्र' अथवा 'फ़ैन्टेसी' की परिकल्पना में ये बिम्ब प्रायः आये हैं—

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है — मुक्तिबोध — २७४-२७५,
२. नयी कविता का आत्म-संघर्ष — मुक्तिबोध — पृ० ८.

अँधियारी एकान्त / प्राकृत गुहा एक / विस्तृत खोह के
साँवले तल मे / तिमिर को भेदकर चमकते हैं पत्थर /
× × × सुनसान चौराहा साँवला फैला / बीच में वीरान गेरुआ
घण्टाघर / ऊपर कत्थई बुजुर्ग गुम्बद /[१]

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ कहते हैं कि "एक तालाब, आदिम बूढ़ा बरगद, चौराहा और गलियाँ, नागपुर का घंटाघर, राजनाद गाँव के खण्डहर आदि—ये उनके काव्य में 'आर्केटाइपल बिम्ब' बनकर चहुँ ओर नानार्थक प्रतीकों और मिथकों में नाना कविताओं में निरन्तर खुलते चले गये है।"[२] ऐसे बिम्बों की पृष्ठभूमि में सुनसान, साँय-साँय, बीरान आदि शब्दों के प्रयोग किये गये हैं। मुक्तिबोध ने इसे 'आत्मज-सत्य' की संज्ञा दी है जो रक्त-सिंचित हृदय की धरती में नीला अंकुर, नीला पौधा, नीला पेड़ बनकर उगा है। बरगद की बिम्बात्मकता अँधेरे में के अतिरिक्त अन्यत्र भी देखी जाती है। अज्ञेय की तरह मुक्तिबोध की कविता में प्रकृति का सुरम्य दृश्य अथवा आभिजात्य बिम्ब नहीं मिलते किन्तु भौतिक विज्ञान एवं रसायनशास्त्र के सहारे प्रकृति के परिवर्तनों को उन्होंने चित्रित किया है। उनका विराट् पुरुष कई स्थलों पर कई आकार ग्रहण करता है—

मेरे कंधों पर खड़ा हुआ है देव एक दुर्धर
थामता नभस् दोनों हाथों से /
भारान्वित मेरी पीठ बहुत झुकती जाती /
वह कुचल रही है मुझे देव आकृति /[३]

'एक' अन्तर्कथा में निरूपित यह बिम्ब मानस के संस्कारों का परिणाम है। टी० एस० ईलियट ने कविता को व्यक्तित्व से मुक्ति कहा है। उनकी दृष्टि में सफल कविता वही है जो व्यक्तिगत प्रभाव से मुक्त रहे। मुक्तिबोध की सर्जना में न तो व्यक्तित्व से मुक्ति है न ही उनका 'कवि-व्यक्तित्व' काव्य-व्यक्तित्व में 'इन्वाल्व' (श्लिष्ट) होने से उबरा है। उनके मानस का तनाव, जीवनानुभव तथा अन्तर्संघर्ष 'अभिव्यक्ति की ईमानदारी' के परिचायक हैं—

इन सुनसान भीतों पर / लगे जो आइने उनमें /
स्वयं का मुख / जगत के बिम्ब / दिखते ही नहीं
जो दीखता है वह / विकृत प्रतिबिम्ब है उद्भ्रान्त /[४]

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० सं० २६०–२६६।
२. मुक्तिबोध—(स० लक्ष्मणदत्त गौतम)—डॉ० मेघ का निबंध।
३. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० सं० ११८।
४. चाँद का मुँह टेढ़ा है— ,, पृ० सं० १६३।

वर्तमान परिस्थितियों में मानस में बनने वाले बिम्ब का कविता में उतार
ाना कितना कठिन है, इसका उल्लेख उपर्युक्त 'अंश' में विद्यमान है। जो दिखाई
ड़ता है वह 'विकृत-प्रतिबिम्ब' है किन्तु उसी को यथार्थबोध रूप में स्वीकार करके
सर्जना में गतिशील होते हैं, चक्कर लगाते हैं, कई मोड़ घूमते हैं। उन्होंने दुनिया
देखा भी है—'कहीं आग लग गई', 'कहीं गोली चल गई', 'कहीं कलाकार मृत
हा है।' दुनियाँ की भीड़ में वे आत्म-साक्षात्कार द्वारा अपने चेहरे की खोज कर
ने हैं। उनकी विजन (Vision) इतनी गहरी है कि उसमें बनने वाले बिम्ब कविता
'स्वयं प्रसूत' से लगते हैं—

> अँधेरी स्याही में डूबे हुए देव को सम्मुख पाकर /
> मैं अतिदीन हो, जाता हूँ पास कि /
> बिजली का झटका / कहता है भाग हट जा /
> हम हैं गुजर गये जमाने के चेहरे /[१]

गुजर गये जमाने का चेहरा गाँधी का है जिसकी तुलना करने के लिए अपने
उनके सम्मुख ले जाने में बिजली का झटका लग सकता है। विराट् आकृति कहीं
रूप में कहीं तिलक की प्रतिमा बनकर कहीं [illegible]नुमा देखी जाती है। यही
युक्त होकर 'आत्म-सम्भव' बनता है किन्तु प्रतिक्रिया रूप में [illegible]
, डरावना आकार का 'ब्रह्म' आता है। 'गम्भीर [illegible]
में गुप्ता' में खुलती हुई अर्थवत्ता बिम्ब को पहचानने में सहायक होती।
की टूटी प्रतिमा' गाँधी के चेहरे की सिलवट, काव्य-पुरुष के परम्परा बोध
रचय देती है। जिन्दगी का मोर्चा मुक्तिबोध के लिए पहला और अंतिम मोर्चा
ठहराव नहीं, जिस पर की गई नाकेबन्दी में वे बेहद सफल हैं। अमूर्त भावों
आकार प्रदान करने की अधुनातन काव्य प्रवृत्ति मुक्तिबोध के बिम्बों में भी
ती है। निराशा, अवसाद, चिन्ता एवं अवदमन की संश्लिष्ट बिम्बात्मक
अँधेरा, कालिमा, नीलिमा तथा साँवली काली रात के चित्रों में देखी जाती
धेरे' के प्रति मुक्तिबोध के मन में कहीं अंत गहरे ऐसा लगाव है जो बार-बार
ना के समय उसी ओर ले जाता है। 'अँधेरे में' कविता का 'नायक' चक्कर
ए एकान्त प्राकृत गुहा, घनान्धकार तक जाता है—

> दुनियाँ की नजरों से हटकर / छिपे तरीके से /
> हम जा रहे थे कि / आधी रात अँधेरे में···
> उसने देख लिया हमको X X X
> जिन्दगी के। X X X कमरे में अँधेरे /

द का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० सं० २७६।

लगाता है चक्कर कोई एक लगातार[1]

× × ×

'कहीं आग लग गई कई गोली चल गई' के वातावरण में भागता हुआ काव्य-पुरुष जिस मनःस्थिति का अनुभव करता है कवि उसी को रूपाकार प्रदान करता है ऐसे बिम्बों में बिखराव तथा विसंगतियों का होना स्वाभाविक है। 'अँधेरा' मुक्तिबोध की कविता की पृष्ठभूमि निर्मित करता है। चेहरे के अन्दर झाँकता चेहरा अथवा स्याह अँधेरे में दिखाई पड़ने वाली विकृत-विद्रूप आकृतियों की बहुतायत उनकी कविता में है। शिल्प एवं कलात्मकता की दृष्टि से ऐसे बिखरे हुए बिम्ब पाठक के मन पर प्रभावकारी छाप नहीं छोड़ पाते। डॉ० राम विलास शर्मा मुक्तिबोध की कविता के बिम्बों और प्रतीकों की आवृत्ति को स्वीकार करते हुए इसे यथार्थ-चित्रण का एक तरीका मानते हैं।[2]

विराट् आकृति पर अँधेरे का प्रभाव कमल, गुलाब, सिवन्ती आदि को तो श्याम बनाता ही है साथ ही 'न कह सके जाने वाले अनुभवों के ढेर' को भी स्याह रंग प्रदान करता है—

अपने मस्तिष्क के पीछे अकेले में /
गहरे अकेले में / न कह सके जाने वाले अनुभवों के ढेर का
भयंकर विशालकाय प्रतिरूप दीखता पहाड़-
स्याह / दूसरी ओर / क्षुद्रतम सफलता की आड़ से /
चाँद का अँधूरा मुँह / व्यंग्य मुस्कराता है....[3]

अनुभवों को कविता में कहने का आदी कवि बार-बार जीवन की कटुताओं को बिम्बों एवं प्रतीकों के माध्यम से कहता है। बिम्बों के माध्यम से अर्थवत्ता की अभिव्यक्ति मुक्तिबोध का इष्ट है किन्तु गहरी अर्थवत्ता तथा भोगा हुआ यथार्थ बौद्धिक आग्रह के कारण प्रतीक बन पाता है सफल भावात्मक बिम्ब नहीं। कला के आभ्यन्तरीकरण के वाह्यीकरण में मुक्तिबोध पूर्णतः सफल हैं परन्तु ऐसे स्थलों पर उनकी वक्रता बिम्बों का सहारा छोड़ देती है। बाहर की दुनियाँ के वस्तुगत चित्रण में सर्जक के मन का अँधेरा हावी होकर सर्जना के संघर्ष को तीव्रतर कर देता है, अतः मशाल, चिनगारी, ज्योति, नीली लपट, आभा प्रकाश आदि के बिम्ब भी टूटे-बिखरे रूप में आते हैं। 'मुझे याद आते हैं', 'एक स्वप्न कथा', चकमक की चिनगारियाँ', 'डूबता चाँद कब डूबेगा' आदि कविताओं में आने वाले बिम्ब अँधकार एवं

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० सं० २४५–२४६।
२. नयी कविता और अस्तित्ववाद—डॉ० रामविलास शर्मा।
३. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—(७५-७६)।

प्रकाश आशा और निराशा के द्वंद्व का परिचय करते है। भयकर स्वप्न अपराध-बोध, भय, सन्त्रास के स्थलों को डा० रामविलास शर्मा 'रहस्यवाद के अलौकिक प्रकाश की ओर संकेत करने वाले बिम्बों' से युक्त मानते हैं।[१]

अँधेरे की कालिमा, जल की अतल गहराई, सागर का गाम्भीर्य तथा गुफा का घना अंधकार, काली पट्टी, काले डैस सी रात आदि अप्रस्तुत विधान एवं प्रतीकों की शब्दावली मुक्तिबोध के अन्तर्द्वन्द्व की परिचायिका है। गणित एवं ज्यामिति से सम्बन्धित बिम्बों का प्रयोग भी मुक्तिबोध ने किया है। ज्योतिष, खगोलशास्त्र, भूगर्भ विज्ञान की क्रियायें भी उनकी कविता में प्रक्षिप्त हैं। आंतरिक अशान्ति का संकेत इन पंक्तियों में मिलता है—

शिलीभूत भूमि से / सामंजस्यों का घनीभूत जितना /
यत्न हैं तुम्हारा / उतना ही बंजर बनती है दुनियाँ /[२]

इस उजाड़ जिन्दगी के वीरान मरुस्थल की चट्टानों की खुदाई कर उनकी खनिज सम्पदा की पहचान तथा ग्रहण मुक्तिबोध का उद्देश्य है।

अतल तले पड़ा हुआ / किरणीला एक दीप्त /
प्रस्तर-युगानुयुग / तिमिर श्याम सागर के विरुद्ध
निज आभा की / महत्त्वपूर्ण सत्ता का /
प्रतिनिधित्व करता हो, आज भी /[३]

'एक स्वप्न कथा' में आये हुए 'सियाह समुन्दर' का बिम्ब समुन्दर की सियाह लहरें, 'निथरते पानी की काली लकीरें, काली लहरें आदि बिम्ब 'सन्न पकते हुए गहन जलधारा में गोता लगाने' से सम्बन्धित हैं। जिसकी एक परिणति 'चाहो तो उसमें डूब मरो' की है तथा दूसरी परिणति पूरे ब्रह्माण्ड की केन्द्र क्रियाओं के तेजस्वी अंश की खोज है। सागर के तल में जाकर मोती, रत्न आदि मूल्यवान मणियों की खोज इन बिम्बों में देखी जाती है। अपनी कविताओं की 'विकृताकृति' को स्वीकार करते हुए रचनाकार इन बिम्बों को जिन्दगी के पथ में प्राप्त करता है। 'रहस्य दृश्य के अनुसार सागर में प्रकाश दीप का तैरना 'सर्चलाइट' के सहारे अँधेरे में उछलती लहरों के अन्दर देखने का प्रयास[४] चमकती चादर का फैलता हुआ तेज आशा की परिणतियाँ हैं जिनकी ओर कवि संकेत करता है।

आशा आह्लाद, प्रसन्नता एवं माधुर्य से सम्बन्धित बिम्ब भी मुक्तिबोध की

१. नयी कविता और अस्तित्ववाद—पृ० सं० २२८ /
२. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध
३. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० १७५।
४ चाँद का मुँह टेढ़ा है—पृ० १८६।

आरम्भिक कविताओं में मिलते हैं। संघर्षशील जिन्दगी के यथार्थमय बिम्ब इतना अधिक मात्रा में आये है कि उनमें उनकी सर्जना के आरम्भिक बिम्ब छिप गये हैं। 'आत्मा के मित्र मेरे' का यह बिम्ब इस क्रम में दर्शनीय है—

> अप्सरायें साँझ प्रातः / मृदु हवा की लहर पर से सिन्धु पर
>
> रख अरुणलघुए / उतर आतीं कान्तिमय नवहास लेकर[1]

'दुख सुखों की साँझ प्रातः' जो कवि को याद आता है उसमें 'परस्पर की मृदुल पहचान', 'उर की बालिका का नौतनन विश्वास' सदृश आस्थायें छिपी हैं ये कोमल एवं स्निग्ध बिम्ब उनकी सहृदयता के परिचायक हैं। विषयों की कमी नहीं अपितु समस्याओं के झंझावात ने मुक्तिबोध को गहन गूढ़ एव खण्डित बिम्बों की सर्जना के लिए विवश किया है। उनमें भी भारती, माथुर, भवानी प्रसाद मिश्र एवं हरिनारायण व्यास की तरह मधुर कल्पनायें थी किन्तु 'न कहे जा सकने वाले अनुभवों के सत्य' ने उनका रूप आच्छादित कर लिया। भावों की रोमानियत अन्तर्द्वन्द्व एवं बौद्धिक ऊहापोह में कब की काफूर हो गई जिसका एहसास मुक्तिबोध को है।

नये सौन्दर्यबोध के अनुरूप मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं में अपूर्णता, बिखराव, टूटन एवं जोड़ का होना स्वाभाविक है। ये बिम्ब उनकी मनःस्थिति से साक्षात्कार कराने में समर्थ हैं। 'नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' मे मुक्तिबोध ने लिखा है कि 'विशेष प्रकार का कलात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिये प्रयोग में लाये गये बिम्ब जीवनानुभवों का साकार चित्र प्रस्तुत करते है।'[2] इसी को काव्य-पंक्तियों में वे इस तरह कहते हैं—

> प्रतीकों और बिम्बों के / असंवृत रूप में भी रह
>
> हमारी जिन्दगी है यह / यहाँ पर धूल के भूरे गरम फैलाव
>
> पर, पसरी लहरती चादरें बेथाह सपनों की /[3]

उनके बिम्बों का मूल्यांकन करते समय छायावादी मानसिकता से मुक्त होकर ही कोई निर्णय किया जा सकता है। बी० डी० एन० शाही एवं नामवर सिंह ने छायावाद से नयी कविता की भिन्नता के लिए जिस प्रवृत्ति को आधारभूत सिद्धान्त रूप में स्वीकार किया है मुक्तिबोध के काव्य-बिम्ब उसके उदाहरण हो सकते है। नयी कविता की प्रवृत्ति के अनुसार समीक्ष्य बिम्ब जीवन के अनुभवों से एकत्र किये गये सूक्ष्मातिसूक्ष्म अमूर्त तत्त्वों के सहारे भावों के मूर्तन के सफल एवं सार्थक प्रयास हैं।

मुक्तिबोध की कविता की प्रतीक योजना एवं मिथकीय संदर्भ भी बिम्ब-

---

१. तार सप्तक (आत्मा के मित्र मेरे)—पृ० ४४-४५।

२. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र—मुक्तिबोध—पृ० सं० २३।

३. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० स० १५२।

विधान की आलोच्य प्रक्रिया से सम्बन्धित है। भावों की प्रेषणीयता के लिये प्रयुक्त होने वाले बिम्ब प्रतीकों के रूप में अर्थवत्ता में भुक्त रहते हैं। कथ्य के बौद्धिक एवं अतियथार्थवादी होने के कारण जीवन के मुहावरों में परिवर्तन होने के साथ ही प्रतीकों का रूप भी बदल गया है। पुराने प्रतिमानों के ओझल होने के कारण अधुनातन पाठक एवं रचनाकार के बीच काव्य-भाषा सटीक माध्यम के रूप में अवशिष्ट है जिसके अंग रूप में अभिव्यंजना के इन प्रसाधनों पर दृष्टिपात किया जाता है। मुक्तिबोध के भाषायी प्रतीक उलझनों से युक्त तथा रूढ़ियों से जड़ीभूत लगते हैं किन्तु परतन्त्र भारत की गहन अनास्था एवं जीवन की विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष की स्थिति में यही सम्भव था। हरिशंकर पारसाई कहते हैं कि जितने अन्तर्संघर्ष एवं तनाव को मुक्तिबोध ने झेला है दूसरा कोई होता तो (व्यक्ति अथवा रचनाकार) पहले ही मर जाता।[१]

जिस प्रकार विषम परिस्थितियों को झेलने की प्रक्रिया मुक्तिबोध के बिम्बों मे आई है उसी प्रकार प्रतीक योजना भी अधुनातन-जीवन से ग्रहण की गई है। बिम्बो की मूर्तता से भी सूक्ष्म प्रतीकों द्वारा संकेत ग्रहण की प्रक्रिया मुक्तिबोध के काव्य नायक के साथ पाठक को भी भटकाती है। नयी कविता की नाटकीयता तथा कथन की व्यंग्योक्तियों के अनुरूप प्रतीकों के प्रयोग विसंगतियों के संवाहक हैं। समस्याओं का दुर्ग रचनाकार एवं ग्रहीता के लिए गहन एवं अगोचर होता है किन्तु प्रतीक उस दुर्ग के चोर-दरवाजे का संकेत देते हैं। युगीन यथार्थबोध तथा बौद्धिकता के आग्रह के कारण बीसवीं शताब्दी के छठवें दशक तक बिम्ब विधान की प्रक्रिया द्वारा कविता के मूल्यांकन एव अर्थग्रहण पर अनेक प्रश्नचिह्न लगाये जा चुके हैं किन्तु प्रतीकों की स्थिति अब भी यथावत है।

नयी कविता के समर्थक नवरसों के अतिरिक्त बुद्धिरस की स्थापना कर प्रतीकों द्वारा अर्थग्रहण के संकेत को आसान करना चाहते हैं। आज का कवि युगीन और वैयक्तिक धड़कनों की बारीकियों को मूर्त करने में बिम्ब-विधान से आगे जाकर लय और शब्द संवेदन की सूक्ष्म विशेषताओं की ओर बढ़ रहा है।[२] गिरिजाकुमार माथुर इसीलिए बिम्ब के साथ-साथ नाद पक्ष को भी भाव ग्रहण में महत्त्वपूर्ण मानते हैं।[३]

---

१. समकालीन हिन्दी कविता में—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी द्वारा उद्धृत।

१. भारतीय काव्यशास्त्र—नयी व्याख्या—डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी—पृ० ७५।

२. "आवश्यक है कि भाव-पक्ष, बिम्ब-पक्ष और नाद-पक्ष के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्टतया पहचाना जाय तथा यह स्वीकार किया जाय कि इनमें से कोई तत्त्व गौण नहीं है।"

[नयी कविता— सीमायें सम्भावनायें—गिरिजाकुमार माथुर—पृ० सं० ११६]

प्रतीक-योजना का समकालीन रूप डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी एवं माथुर की स्थापना के अनुरूप है तथा मुक्तिबोध की कविता में विशेषतः उल्लेख्य है—

हो न हो / इस काले सागर का / सुदूर स्थित पश्चिम किनारे से
जरूर कुछ नाता है / इसीलिए हमारे पास सुख नहीं आता है /

काले सागर की निराशा, गहनता, निविड़ असहायता 'पश्चिमी किनारे' से जुड़ी है। 'पश्चिमी तट' सात समुद्र पार का अंग्रेजों का देश है। इसी प्रकार 'बरगद' का प्रतीक गहन आस्था के लिए, तुलसी का पौधा पुरातन संस्कारों के लिए, अँधेरा निराशा के लिए प्रयुक्त होता है। 'बार-बार लगातार चक्कर' लगाने का क्रम बार-बार प्रतीकों के दुहराने के लिए भी लागू होता है। 'मशाल-प्रकाश', चिनगारी जुलूस, फ्लैग-मार्च और बटालियन के अतिरिक्त जिन्दगी की गर्म राहों का विविध प्रकार से उल्लेख हुआ है।

सपाटबयानी एवं सुर्रियलिस्टिक कला के प्रभाव से बिम्बों की अस्मिता पर लगाया गया प्रश्नचिह्न मुक्तिबोध की प्रतीक-योजना के संदर्भ में विचारणीय है। अपूर्ण-जीवन के न कहे जा सकने वाले अनुभवों के सत्य को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करना सर्जक मुक्तिबोध का उद्देश्य है किन्तु इसमें वे सफल हैं अथवा नहीं? इसी से मिलता-जुलता दूसरा सवाल यह है कि जब मुक्तिबोध ने अपनी समीक्षा कृतियों और निबन्धों में अपनी बात विस्तार में कही है तो उनकी अभिव्यंजना के मूल्यांकन के लिए परम्परित प्रतिमानों का प्रयोग क्यों किया जाय? जहाँ तक मुक्तिबोध के प्रतीको एवं बिम्बों की सफलता का प्रश्न है, वे पूर्णतः सफल हैं। उनके जीवन की परिस्थितियों और सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं ने उन्हें ऐसी काव्य-भाषा का प्रयोग करने के लिए विवश किया है। डॉ० नगेन्द्र ने खण्डित बिम्बों को अभिव्यक्ति की असफलता कहा है। नयी कविता को खण्डित एवं विकीर्ण बिम्ब तथा खण्डित अनुभूति की संवाहिका कहते हुए उन्होंने यह निर्णय दिया है कि काव्य की सार्थकता नूतन बिम्ब सृष्टि में नहीं बल्कि संस्कारयुक्त प्रचलित उपकरणों को नवीन भंगिमा से दीप्त करने मे है[1] जबकि मुक्तिबोध नूतन बिम्ब सृष्टि करते हैं। 'समाकलित एवं सामंजस्ययुक्त परिपूर्ण बिम्ब से युक्त श्रेष्ठ काव्य' की आशा से ही आधुनिक जीवन के वैज्ञानिक उपकरणों को भी डॉ० नगेन्द्र ने सार्थक काव्य सामग्री रूप में अस्वीकार किया। गिरिजाकुमार माथुर का मत है कि "कोई भी उपकरण तब तक सार्थक नहीं हो सकता जब तक कि उसमें भाव सम्पृक्ति न हो और जब तक वह अनुभूति की ऊष्मा से दीप्त न हो गया हो। किसी भी उपकरण को काव्य के उद्दीप्त शिखर पर पहुँचाना

१. काव्य-बिम्ब—(ये उपमान मैले हो गये हैं)—डॉ० नगेन्द्र।

विधान की आलोच्य प्रक्रिया से सम्बन्धित है। भावों की प्रेषणीयता के लिये प्रयुक्त होने वाले बिम्ब प्रतीकों के रूप में अर्थवत्ता में मुक्त रहते हैं। कथ्य के बौद्धिक एवं अतियथार्थवादी होने के कारण जीवन के मुहावरों में परिवर्तन होने के साथ ही प्रतीकों का रूप भी बदल गया है। पुराने प्रतिमानों के ओझल होने के कारण अधुनातन पाठक एवं रचनाकार के बीच काव्य-भाषा सटीक माध्यम के रूप में अवशिष्ट है जिसके अंग रूप में अभिव्यंजना के इन प्रसाधनों पर दृष्टिपात किया जाता है। मुक्तिबोध के भाषायी प्रतीक उलझनों से युक्त तथा रूढ़ियों से जड़ीभूत लगते हैं किन्तु परतन्त्र भारत की गहन अनास्था एवं जीवन की विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष की स्थिति में यही सम्भव था। हरिशंकर परसाई कहते हैं कि जितने अन्तर्संघर्ष एवं तनाव को मुक्तिबोध ने झेला है दूसरा कोई होता तो (व्यक्ति अथवा रचनाकार) पहले ही मर जाता।[१]

जिस प्रकार विषम परिस्थितियों को झेलने की प्रक्रिया मुक्तिबोध के बिम्बों में आई है उसी प्रकार प्रतीक योजना भी अधुनातन-जीवन से ग्रहण की गई है। बिम्बों की मूर्तता से भी सूक्ष्म प्रतीकों द्वारा संकेत ग्रहण की प्रक्रिया मुक्तिबोध के काव्य नायक के साथ पाठक को भी भटकाती है। नयी कविता की नाटकीयता तथा कथन की व्यंग्योक्तियों के अनुरूप प्रतीकों के प्रयोग विसंगतियों के संवाहक है। समस्याओं का दुर्ग रचनाकार एवं ग्रहीता के लिए गहन एवं अगोचर होता है किन्तु प्रतीक उस दुर्ग के चोर-दरवाजे का संकेत देते हैं। युगीन यथार्थबोध तथा बौद्धिकता के आग्रह के कारण बीसवीं शताब्दी के छठवें दशक तक बिम्ब विधान की प्रक्रिया द्वारा कविता के मूल्यांकन एवं अर्थग्रहण पर अनेक प्रश्नचिह्न लगाये जा चुके हैं किन्तु प्रतीकों की स्थिति अब भी यथावत है।

नयी कविता के समर्थक नवरसों के अतिरिक्त बुद्धिरस की स्थापना कर प्रतीकों द्वारा अर्थग्रहण के संकेत को आसान करना चाहते हैं। आज का कवि युगीन और वैयक्तिक धड़कनों की बारीकियों को मूर्त करने में बिम्ब-विधान से आगे जाकर लय और शब्द संवेदन की सूक्ष्म विशेषताओं की ओर बढ़ रहा है।'[२] गिरिजाकुमार माथुर इसीलिए बिम्ब के साथ-साथ नाद पक्ष को भी भाव ग्रहण में महत्त्वपूर्ण मानते हैं।[३]

१. समकालीन हिन्दी कविता में—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी द्वारा उद्धृत।

१. भारतीय काव्यशास्त्र—नयी व्याख्या—डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी—पृ० ७५।

२. "आवश्यक है कि भाव-पक्ष, बिम्ब-पक्ष और नाद-पक्ष के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्टतया पहचाना जाय तथा यह स्वीकार किया जाय कि इनमें से कोई तत्त्व गौण नहीं है।"

[नयी कविता—सीमायें सम्भावनायें—गिरिजाकुमार माथुर—पृ० सं० ११६]

प्रतीक-योजना का समकालीन रूप डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी एवं माथुर की स्थापना अनुरूप है तथा मुक्तिबोध की कविता में विशेषतः उल्लेख्य है—

> हो न हो / इस काले सागर का / सुदूर स्थित पश्चिम किनारे से
> जरूर कुछ नाता है / इसीलिए हमारे पास सुख नहीं आता है /

काले सागर की निराशा, गहनता, निविड़ असहायता 'पश्चिमी किनारे' से जुड़ी है। 'पश्चिमी तट' सात समुद्र पार का अंग्रेजों का देश है। इसी प्रकार 'बरगद' का प्रतीक गहन आस्था के लिए, तुलसी का पौधा पुरातन संस्कारों के लिए, अंधेरा निराशा के लिए प्रयुक्त होता है। 'बार-बार लगातार चक्कर' लगाने का क्रम बार-बार प्रतीकों के दुहराने के लिए भी लागू होता है। 'मशाल-प्रकाश', चिनगारी जुलूस, फ्लैग-मार्च और बटालियन के अतिरिक्त जिन्दगी की गर्म राहों का विविध प्रकार से उल्लेख हुआ है।

सपाटबयानी एवं सुर्रियलिस्टिक कला के प्रभाव से बिम्बों की अस्मिता पर लगाया गया प्रश्नचिह्न मुक्तिबोध की प्रतीक-योजना के संदर्भ में विचारणीय है। अपूर्ण-जीवन के न कहे जा सकने वाले अनुभवों के सत्य को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करना सर्जक मुक्तिबोध का उद्देश्य है किन्तु इसमें वे सफल है अथवा नहीं ? इसी से मिलता-जुलता दूसरा सवाल यह है कि जब मुक्तिबोध ने अपनी समीक्षा [illegible] और निबन्धों में अपनी बात विस्तार में कहा है तो उनकी अभिव्यंजना के मूल्यांकन के लिए परम्परित प्रतिमानों का प्रयोग क्यों किया जाय ? जहाँ तक मुक्तिबोध के प्रतीकों एवं बिम्बों की सफलता का प्रश्न है, वे पूर्णतः सफल हैं। उनके जीवन की विसंगतियों और सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं ने उन्हें ऐसी काव्य-भाषा का [illegible] करने के लिए विवश किया है। डॉ० नगेन्द्र ने खण्डित बिम्बों को अभिव्यंजना की असफलता कहा है। नयी कविता को खण्डित एवं विदीर्ण बिम्ब तथा [illegible] की संवाहिका कहते हुए उन्होंने यह निर्णय दिया है कि काव्य की सार्थकता [illegible] सृष्टि में नहीं बल्कि संस्कारयुक्त प्रचलित उपकरणों को नवीन भंगिमा से [illegible] मे है[1] जबकि मुक्तिबोध नूतन बिम्ब सृष्टि करते है। 'समाकलित एवं [illegible] परिपूर्ण बिम्ब से युक्त श्रेष्ठ काव्य' की आशा से ही आधुनिक जीवन [illegible] उपकरणों को भी डॉ० नगेन्द्र ने सार्थक काव्य सामग्री रूप में [illegible] गिरिजाकुमार माथुर का मत है कि "कोई भी उपकरण तब तक [illegible] सकता जब तक कि उसमें भाव सम्पृक्त न हो और जब तक वह अनुभूति [illegible] से दीप्त न हो गया हो। किसी भी उपकरण को काव्य के [illegible]

१. काव्य-बिम्ब—(ये उपमान मैले हो गये हैं)—डॉ० नगेन्द्र

कवि सामर्थ्य पर निर्भर करता है, उपकरण चाहे नया हो अथवा पुराना ।[1] मुक्तिबोध के बिम्बों और प्रतीकों में अनुभूति की ऊष्मा चरम सीमा तक है तथा भाव सम्पृक्ति भी कम नहीं है किन्तु उनकी सम्पूर्ण सर्जना उच्चस्तरीय एवं श्रेष्ठ है यह कहना कठिन है ।

जीवन और जगत के आइने में दिखाई पड़ने वाले 'उद्भ्रान्त प्रतिबिम्ब' से परिपूर्ण बिम्ब ग्रहण करना सम्भव नहीं है । रचनाकार की दृष्टि चाहे जितनी स्वच्छ हो पर विषम परिस्थितियों का आइना जब धुँधला पड़ जाता है तो 'समाकलित एवं सामञ्जस्यपूर्ण' चित्र कहाँ दिखाई पड़ेगा । मुक्तिबोध के विद्रूप एवं बदशकल बिम्बों एवं उलझे प्रतीकों की विकृत आकृतियों का अवलोकन कर डॉ० नगेन्द्र, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ० रमाशंकर तिवारी सहृदय संस्कारी समीक्षकों को निराशा हो सकती है किन्तु यह भेद सौन्दर्य-दृष्टि का है । उनके बिम्बों में 'सत्य' की खोज न कर तथ्य की परख करना समीचीन है । आधुनिकता के साथ आयी हुई सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि, नवीन भावबोध, नवीन मूल्यवत्ता एवं चिन्तन की अत्याधुनिक प्रणाली से मुक्तिबोध के सर्जक के साथ न्याय हो सकता है ।

काव्योपकरणों, जैसे उपमानों एवं कलात्मक अभिव्यंग्यों की परख के लिए मुक्तिबोध के साथ सह-अनुभूति की आवश्यकता है । बिम्ब-विधान सम्बन्धी धारणा चाहे पाश्चात्य समीक्षा प्रणाली के प्रभाव से हिन्दी आलोचना में आयी हो अथवा भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परित दृष्टि से विकसित हुई हो किन्तु इसके सहारे नये साहित्य के साथ न्याय हो सकता है, नयी अर्थवत्ता ग्रहण की जा सकती है तथा 'नयी कविता' के लिए इसे प्रतिमान बनाया जा सकता है । मार्क्सवादी समीक्षा प्रणाली अथवा रूप एवं कलावादी चिन्तन सरणि के विपरीत बिन्दुओं को न अपनाकर मुक्तिबोध की 'ध्वनिबिम्बवती शब्द क्रम शैली' की जाँच-पड़ताल आधुनिक भारतीय परिवेश में करना सार्थक प्रयास हो सकता है ।

---

१. काव्य-बिम्ब, रस दृष्टि और आधुनिक संवेदना—पृ० सं० १२३ ।
(डॉ० नगेन्द्र : साधना के नये आयाम में संकलित)

६. मुक्तिबोध की कविता में परिवेश और जीवन-मूल्य

[जीवन की गति जीवन का स्वर]

सूखी हुई जाँघों की लम्बी-लम्बी अस्थियाँ
हिलाता हुआ चलता है
लँगोटी धारी यह दुबला मेरा हिन्दुस्तान
रास्ते पर बिखरे हुए
चावल के दानों को बीनता-है लपक कर
मेरा साँवला इकहरा हिन्दुस्तान

× × ×

—भूरी भूरी खाक धूल

पुकार ने समस्त खोल दी छिपी प्रवंचना
कहा कि शुष्क है अथाह यह कुआँ
कि अंधकार अंतराल में ………(चाँ० मुँ० टे०)

समकालीन कविता के व्यापक परिवेश और जीवन मूल्य की समीक्षा प्रकारान्तर से मुक्तिबोध की कविता की मूल्यवत्ता की परीक्षा है। नयी कविता की समीक्षा में जिन प्रतिमानों को मुख्य रूप से स्वीकार किया जाता है उनमें मूल्य भी एक है जो आधुनिकताबोध और यथार्थबोध से समन्वित है। नयापन अब 'मूल्य' या उपयोगिता का पर्याय बन चुका है किन्तु 'नया साहित्य', नयी कविता' आदि से जुड़े रहने पर यह नये जीवन मूल्य का सूचक है पर्याय नहीं।[1] डॉ० जगदीश गुप्त का कहना है कि—"तत्वतः सभी मूल्य मानव मूल्य हैं, चाहे वे नैतिक मूल्य हों, चाहे सौन्दर्यपरक मूल्य या कोई और पर विशेष अर्थ में मानव-मूल्यों का तात्पर्य उन मूल्यों से है जो मानव के आंतरिक सहज स्वरूप के सबसे निकट प्रतीत होते हैं।" 'मानव के आंतरिक सहज-स्वरूप' कहकर डॉ० गुप्त अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान एवं दर्शन में प्रचलित-मतवादों की ओर भी संकेत करते हैं। 'मानव-मूल्य' से उनका आशय मानव-जीवन सापेक्ष्य मूल्य से हैं। मानव-मन के सन्तोष, तुष्टि, आस्वाद, प्रसाद, आनन्द एवं आपूर्ति से सम्बन्धित वस्तु मूल्यवती कहलायेगी किन्तु सूक्ष्म अर्थ में मूल्य एक धारणा का पर्याय बनता है जिसमें आधुनिकता एवं परम्परा का समन्वय है।[3]

समकालीन कविता की मूल्यवत्ता पर विचार करते समय इसमें विद्यमान नवीन परिवेश, यथार्थवाद, रचनाकर्म बनाम नागरिककर्म, स्वांतःसुखाय रचना, सर्जना का सवाल तथा लघुमानववाद एवं व्यक्तिवाद पर भी दृष्टि जाती है। 'नवीन परिवेश' कविता में ग्रहीत एवं चित्रित परिवेश है जिसमें द्वितीय महासमर के बाद की

---

१. 'आज भी नवीन प्रेरणा यहाँ न मर सकी
न जी सकी परन्तु वह न डर सकी
घनान्धकार के कठोर वक्ष / दंश चिह्न से /'
(चाँ० मुँ० टे०—मुक्तिबोध—पृ० सं० ०)

२. नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें—डॉ० जगदीश गुप्त—(पृ० सं० १५)

३. नयी कविता में मूल्य निरपेक्ष स्वर है, गो कि वह यथार्थनिष्ठ ही है पर यह स्मरण रखना चाहिए कि उसमें भी एक मूल्य चेतना है। यथार्थ का आग्रह जब अर्थ-पूर्ण होगा तब अपने आप में मूल्यवान भी होगा
नयी कविता अंक ८—कामेश्वर नाथ (पृ० [illegible])

विसंगतियाँ, वैज्ञानिक एवं बौद्धिक जगत का स्वरूप, अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र एवं अनीश्वरवाद का समन्वय है। मुक्तिबोध की कविता की परख इन मान्यताओं के आधार पर करने का आशय है उसमें व्याप्त आधुनिक परिवेश और जीवन-मूल्यों की खोज (अन्वेषण)। इसी से संश्लिष्ट अन्य विषय है—'रचनाकर्म बनाम नागरिक-कर्म', क्योंकि आज का सर्जक-भक्त या योगी न होकर एक 'औसत आदमी' या 'सहज-मानव' है। श्री विजयदेव नारायण साही ने लघु-मानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस[1] लिखकर सहज, औसत, लघु, आम आदि को लघु रूप में व्याख्यायित किया है। आज का कवि एक औसत आदमी है जिसकी सर्जना भी सामान्य नागरिक की है। न तो आज का जीवन पूर्ण है न आज की रचना किन्तु 'अधूरेपन में भी पूर्णता की कल्पना साहित्य है जो सत्य नहीं' सत्य का प्रकाश है।[2]

इस नगरी में न चाँद है न सूर्य
साजिश के कुहरे में डूबी × × ×
खण्डहरनुमा जिन्दगी × × ×
आँगन में एक ओर शक्तिशाली विचारों की तुलसी खड़ी है।

'खण्डहरनुमा जिन्दगी' के आँगन में तुलसी का लहलहाना सर्जना द्वारा अस्मिता की रक्षा है। राजनीतिक अराजकता, शोषण एवं अत्याचार से खण्डित, पीड़ाग्रस्त जिन्दगी में भी नया कवि परम्परा की तुलसी को हरी-भरी रखता है जिसमें उसकी आस्था की हरियाली है। बिना परम्परा के प्रयोग को आधार नहीं मिलता। कवि मुक्तिबोध ने नवीन लघु मानव की प्रतिष्ठा करके उसे जीवन-मूल्यों से सींच-सींचकर हरा-भरा रखना चाहा है। आँगन की क्यारी में लगाये गये इस पौधे को शोषण का खतरा है जैसे आज के लघुमानव को अनेक खतरे हैं।

मुक्तिबोध की कविता का मूल्यबोध परम्परा एवं आधुनिकता से युक्त है। टी० एस० इलियट ने विषयगत एवं विषयीगत के भेद समापन को उच्चकोटि का साहित्य कहा है। छायावाद युग के बाद नयी कविता में यह प्रवृत्ति देखी जाती है किन्तु सैद्धान्तिक स्तर पर इसका समर्थन करते हुए भी मुक्तिबोध ने रचनात्मक स्तर पर इसका अनुपालन नहीं किया। 'वैल्यू ऐज् हेल्ड' तथा वैल्यू ऐज फेल्ट का भेद समापन इसी से सम्बन्धित है। ऐज् हेल्ड' परम्परा है तथा 'ऐज् फेल्ट' प्रयोगधर्मिता। प्रयोगवाद और नयी कविता के मूल्यबोध में 'सत्य के प्रकाश' की व्याख्या करते हुए

१. नयी कविता—अंक ५/६।
२. 'हम साहित्य में रम भले ही जायें उसमें सत्य नहीं सत्य का एक पर्सपेक्टिव दृश्य—एक डायमेंशन एक आभास ही मिलेगा। × × × सिर्फ एक रोशनी'—सत्य का प्रकाश—मुक्तिबोध।

श्री० डी० एन० साही ने कहा है कि नयी कविता का सत्य रूप का भाव ग्रहण है जिसे हम अज्ञेय द्वारा व्याख्यायित तथ्य कह सकते हैं। 'तथ्य' का अर्थ है— 'आलोकित हो जाना, जाने का पहचाना हो जाना। तथ्य चिरन्तन प्रतिष्ठित रहता है। इसके विपरीत छायावाद का सत्य भाव का रूप ग्रहण है जिसमें तथ्य बिलीन होता हुआ दीप होता है'।[१] अज्ञेय और प्रसाद की कविता में आगत सत्य की तुलनात्मकता के सहारे श्री साही ने बताया है कि अज्ञेय का सत्य साक्षात्कार का सत्य है जिसे आस्था सम्मत कहा जा सकता है किन्तु प्रसाद की कविता का सत्य दार्शनिक सत्य है जिसमें भाव रूप ग्रहण करता है। मुक्तिबोध की कविता में स्थित सत्य अज्ञेय के तथ्य के निकट है जिसे रचनाकार ने जीवन संदर्भों से साक्षात्कार द्वारा ग्रहण किया है। मूल्यवत्ता की परख के लिये हम मुक्तिबोध की कविता में आये हुए संदर्भित सत्य को आत्मसंघर्ष से प्राप्त प्रकाश कह सकते हैं। इस सत्य के ग्रहण करने की प्रक्रिया में कवि की अनुभूति का सक्रिय योग-दान है। उनकी कविता की मूल्यवत्ता उनकी निजी अनुभूति है जो व्यक्तिगत सत्य द्वारा उत्पन्न हुई है किन्तु इसका यह आशय नहीं है कि यह निरपेक्ष है। समकालीन कविता की मूल्यवत्ता की व्याख्या करते समय कुछ समीक्षक काव्य-जगत को स्वतंत्र मानते हुए अनुभूति को भी नितान्त वैयक्तिक कहते हैं किन्तु मुक्तिबोध की अनुभूति में वर्तमान जीवन और जगत की सापेक्षता है। अनुभूति की उपज भले ही व्यक्तिगत स्तर पर हो किन्तु 'मूल्यवत्ता' की स्थिति में वह यथार्थ से जूझते प्रताड़ित होते हुए सार्वजनीन हो जाती है। मानव मुक्ति और स्वच्छन्दता का इच्छुक रचनाकार आज के परिवेश में एकाकी है अतः अपनी रचनाधर्मिता के सहारे वह जीवन के पथपर अग्रसर होता है। उसकी मूल स्थिति 'औसत आदमी' के अतिरिक्त नागरिक की है। नगरीय अथवा ग्रामीण जीवन की सामान्य समस्यायें—आम-आदमी की मुश्किलें रचनाकार की अपनी हैं जिनको वह मूल्योपलब्धि का साधन मानता है। मानव की विविध भूमिकाओं के परिवर्तन के साथ ही जीवन-मूल्यों में परिवर्तन होता है जो अधुनिक कविता में देखा जाता है।

मुक्तिबोध की कविता आज के परिवेश की देन है अतः उसमें स्थित जीवन-मूल्य नये परिवेश से आया है। 'परिवेश-बोध' आज के कवि की निधी है जो रचना-त्मकता द्वारा सार्वजनीन हुआ है। अधुनातन परिवेश और मानव-जीवन से व्याप्त मुक्ति-बोध की कविता में कल्पना की झलकियाँ भी हैं किन्तु यथार्थ की [illegible] देखने को मिलती है। आज के [illegible] विविध अनुभव [illegible] अनुभव के रूप में कविता में [illegible] हैं। [illegible] मानते हैं [illegible]

१ नयी कविता—अंक [illegible]

मूल्य' का वास्तविक रूप जिन्दगी की कठिनाइयों को झेल कर ही ग्रहण किया जा सकता है। उनके रचनाकार में कहीं-कही 'निजता' की अभिव्यक्ति में 'अहं' का स्वर मुखर हुआ है किन्तु परिवेश की जटिलता और जीवन के तनावों में उनका 'आत्म-साक्षात्कार' महत्त्वपूर्ण है।

एक पैर रखता हूँ / कि सौ राहें फूटती व मैं
उन सब पर से गुजरना चाहता हूँ /

× × ×

निज अंश सत्य की खण्ड प्रतीति के सहारे से
पहुँचे उजाड़ सुनसान कगारों पर
तुम नहीं देख पाये जीवन की भव्य चमक—

भूरी-भूरी खाक धूल—मुक्तिबोध

'अंश-सत्य की खण्ड प्रतीति के सहारे' ग्रहण किया गया मूल्य इसी परिवेश की देन है। इस जगत में ज्ञानी, बुद्धिमान, राजनीतिज्ञ, साहित्य और कला के महा प्रतिष्ठित सूर्य, वैज्ञानिक आदि हैं।[१] सब पर परिथितियों का दबाव है। सभी उस जुलूस में सम्मिलित होते हैं। कदम-कदम पर मिलनेवाले चौराहे आज के हैं।

परिवेश का यथार्थ रूप मुक्तिबोध की कविता का गुण है। अनुभवों के माध्यम से ग्रहण किये गये संस्कार तथा जीवन की विसंगतियों में विद्यमान जगत की विडम्बनाओं को कविता में उतारने से पूर्व उन्होंने उसे भली-भाँति काटा छाँटा सुधारा और सँवारा है। जब भी समकालीन रचनाओं पर किसी समीक्षक या विज्ञ पाठक द्वारा टिप्पणी की गई है तो उसमें अपूर्णता दिखाई पड़ी है। अपूर्णता केवल रचना में नहीं समीक्षक के प्रतिमानों में भी हो सकती है। शमशेर की रचनात्मकता के लिए विजय देव नारायण साही ने कहा कि' 'कवि का जगत अपना निजी स्वतः सम्पूर्ण काव्य-जगत है।' इससे यह प्रकट होता है कि साही काव्य के परिवेश को जगत से स्वतंत्र मानते हैं—किन्तु साही के 'मछलीघर' पर कमलेश ने टिप्पणी करते हुए कहा कि 'साही की दुनियाँ में तिलिस्म, इन्द्रजाल और अँधेरे गोलार्द्ध मिलते हैं।' इसी प्रकार श्रीकान्तवर्मा के 'काव्य-लोक' पर मलयज द्वारा टिप्पणी की गई कि 'इस काव्यलोक में मानव सम्बन्धों का बोध करनेवाली इकाइयाँ-प्रेम, विश्वास और करुणा नहीं है, घृणा अविश्वास और डर है।'[२] शमशेर पर साही की प्रतिक्रिया, साही पर कमलेश की समीक्षा अथवा श्रीकान्त वर्मा की रचनात्मकता पर मलयज का आरोप एक साथ

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है — मुक्तिबोध — (अँधेरे में)
२. डॉ० नामवर सिंह द्वारा कविता के नये प्रतिमान में उद्धृत

मुक्तिबोध के काव्य-लोक के लिए भी लागू हो सकता है। काव्य-लोक को परिवेश से जोड़ने की प्रक्रिया में दो खतरे होते हैं—या तो रचना 'अखबार की कटिंग' बनजाती है अथवा इतिहास का पृष्ठ। अखबारी दुनियाँ बाजारू तथा इतिहास की दुनियाँ जड़ी भूत होती है। मुक्तिबोध की कविता इन दोनों खतरों से उबरी है किन्तु इसमें प्रेम विश्वास और करुणा का अभाव तथा घृणा-विद्वेष एवं तनावों का बाहुल्य है। स्वतः सम्पूर्ण 'काव्यलोक' के समर्थक मुक्तिबोध की कविता के एक पहलू को ही देखते हैं।

समकालीन कविता का लोक 'आत्म हत्या के विरुद्ध' रचनाकार द्वारा सोचा गया है जिसमें 'अँधेरे में' 'चकमक की चिनगारियों के प्रकाश में 'अंतःकरण का आयतन' जानने का आत्मिक प्रयास है। 'सम्भव नहीं है वह सब कुछ कह पाना—जो घटा है बीसवीं शताब्दी में मनुष्य के साथ' किन्तु रचनाकार उसे अधिक से अधिक कहकर अपने को तनाव से मुक्त करना चाहता है। 'बात बोलेगी हम नहीं भेद खोलेगी बात ही' का कथ्य या 'आग की ओर इशारा' में विद्यमान परिवेश 'वैल्यू ऐज फ़ेल्ट' (Value as felt) का है। 'मुंशी प्रेमचन्द्र के उपन्यास' या रघुवीर सहाय, धूमिल राजकमल चौधरी श्रीकान्त वर्मा की कविताओं का परिवेश इसी से मिलता-जुलता है जिसमें राजनीति का दबाव, अर्थ का अभाव तथा परिस्थियों की बिपरीततायें हैं।'

वर्तमान युग अश्रद्धा, संशय, अस्वीकार और कुण्ठा का युग है[१] जिसे मुक्तिबोध ने अपनी कविता में निरूपित किया है। भारतेन्दु युग से कविता में व्याप्त अधुनिकता ने समीक्ष्य युग में नया मोड़ लिया है जो समर्थकों के लिए प्रशंसा किन्तु आचार्यों के लिए घाटियापन का कारण बनी है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी परिवेश की आधुनिकता के सम्बन्ध में कहते हैं 'कुछ नये कवि आधुनिकबोध का बिना स्पष्टीकरण किये कवियों और रचनाकारों पर उसे थोपना चाहते हैं। यह आधुनिकबोध एक वाद का रूप लेता जा रहा है। यद्यपि यह अनिवार्य नहीं कि उसे वाद की कर्कशता दी जाये।'[२] उन्होंने आगे कहा कि अधुनिक चेतना के सम्बन्ध में कोई एक प्रतिमान स्थिर नहीं किया जा सकता। प्रत्येक देश का आधुनिक भावबोध उसके सामजिक-परिवेश और लक्ष्य तथा उद्देश्य के आधार पर बनाया जाता है।[३] मुक्तिबोध

---

१. The age is one of doubt deilal, of furstration. The stredent voice of denial can be heard over all other—

विश्व भारती क्वार्टर्ली वाल्यूम— iii 147-148

(डॉ० नामवर सिंह द्वारा उद्धृत —)

२. नई कविता — नन्ददुलारे वाजपेयी पृ० सं० — ४२

३. ,, — ,, — ४३

की कविता का व्यापक सामाजिक परिवेश निश्चित रूप से अत्याधुनिक है जिसमें 'आशंका के दीप' का वातावरण है। सम्भवतः इसी 'आशंका' अश्रद्धा एवं तनावों की कविता से डॉ० नामवरसिंह ने स्वीकार किया है कि 'कवि और आलोचक का साझा परिवेश होने के कारण यह जोखिम भरा है।' यह तब और भी खतरनाक हो जाता है जब मुक्तिबोध के गम्भीर चिन्तन के आधार पर इसे समझने का प्रयास किया जाय। न केवल मुक्तिबोध अपितु नयी कविता के अधिकांश रचनाकार इसी दुनियाँ को चित्रित करते हैं जिसमें कवि और आलोचक के अतिरिक्त एक तीसरा साझा दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिकों का भी है। आज का समाज बलवा, अग्निकाण्ड, गोलाबारी तथा विप्लव और तूफान से युक्त हैं। इसी परिवेश का दूसरा अंश हादसा, हत्या, नारा, कर्फ्यू, फ्लैग मार्च, आर्टीलरी बटालियन तथा तोप एवं गोली-बारूद से युक्त है। इस जीवन को 'युद्धरत जीवन' कहा जा सकता है जिसे ग्रहण करने में रचनाकार मुक्तिबोध ने आम आदमी की जिन्दगी का संघर्ष तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अंग्रेज सैनिकों का मार्च भी देखा है।[१] युद्धरत लोकजीवन की समस्या उनके काव्यलोक को निर्मित करने में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करती है। अभावों और संघर्षों की जिन्दगी जीता हुआ रचनाकार क्रान्ति का आह्वान करता है, परिवर्तन का वह इच्छुक है किन्तु उसकी पुकार कहीं भीड़ में—उन मनुष्यों की भीड़ में खो जाती है जहाँ या तो दीन, हीन, दलित, कृषक हैं अथवा अवसरवादी सुविधाजीवी लोग जो खतरा नहीं लेते किन्तु चाहते हैं समस्त सुख एवं सुविधाओं का उपभोग। जिन्दगी का यह मोर्चा सबसे गम्भीर मोर्चा है जिस पर लड़े बिना अन्य मोर्चों पर कुशलता दिखाना आज के 'आम आदमी' से परिवेश को अलग करना है। समाज, राष्ट्र, जीवन आदि के क्रम में जिन सुविधाजीवी मनुष्यों की ओर संकेत किया जाता है वे पढ़े-लिखे शिक्षित लोग हैं जो कवि, कलाकार, पत्रकार, अधिकारी आदि भूमिकाओं में कर्मरत हैं। मध्यमवर्गीय व्यक्तियों की जिन्दगी में तनाव, असन्तोष, कुण्ठा एवं निराशा अधिक है किन्तु न कहे जाने की विवशता भी इतनी ही गम्भीर है। इसी जीवन का दूसरा पक्ष है मजदूरों, श्रमिकों तथा अल्प-आय के लोगों का जो अपनी जिन्दगी की रक्षा के लिये मोटा-महीन सभी काम करते हैं। लघुमानव की इस विवशता के सम्बन्ध में आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का कहना है कि "लघुमानव न कुछ कर सकता है और न उसे करने दिया जाता है। नये बोध की यह धारणा जो अनेक कवियों में दिखाई पड़ती है एक चिन्त्य

---

१. 'जिस सदी में हम जीते हैं, उसके संदर्भ में बेहद इन्टेन्स राजनीतिक फासिज्म, बंदी शिविर नरसंहार ...... ये महज दीवारों की छायायें नहीं जिन्हें एक आत्मपरक प्रतीक दिया जा सके, क्योंकि वे स्वयं प्रतीक हैं।'

(कविता के नये प्रतिमान— डॉ० नामवर सिंह द्वारा उद्धृत)

वस्तु है।"[1] वाजपेयी जी के लगाये गये इस आरोप का खण्डन डॉ० नामवर सिंह, तथा रमेश कुन्तल मेघ ने किया।

मुक्तिबोध की कविता का आधुनिक परिवेश बाह्य के अतिरिक्त मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा दर्शन की तरह आंतरिक स्तर पर भी है। अपने मित्र नेमिचन्द्र जैन को लिखे गये एक पत्र में वे कहते हैं कि "मैं वजन सम्हाल नहीं पाता और हर महीने की बीस तारीख के बाद दिवालियापन सताता रहता है।[2] कविता में चित्रित निराशा, विपन्नता, निर्धनता तथा अभाव का स्वर उनका अपना है जिसे उन्होंने स्वयं जीकर अनुभव करके बटोरा, सँजोया तथा ग्रहण किया है। कविता के वैयक्तिक तथा निजी परिवेश की अतृप्ति एवं कुण्ठा का सम्बन्ध भी इसी जीवन से है। नयी कविता की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि निर्मित करने में जिन समस्याओं और वादों का योगदान है उनके मूल में व्यक्तिगत अनुभूतियाँ भी हैं जिसके कारण मुक्तिबोध ने कला की सांस्कृतिक प्रक्रिया के साथ ही मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के योगदान का उल्लेख किया है।[3] बौद्धिकता, ज्ञान-विज्ञान का समन्वय तथा नयेपन का आग्रह नयी कविता में इतने गहरे पैठ चुका है कि सर्जना के प्रत्येक स्तर पर व्यापकता, परिवर्तनशीलता तथा यथार्थवादी दृष्टि तीव्र हुई है। ग्रहण मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है तथा अभिव्यक्ति सांस्कृतिक।

समाज, राष्ट्र, जीवन आदि से साक्षात्कार की प्रक्रिया में मुक्तिबोध का भोगा हुआ यथार्थ महत्त्वपूर्ण है। ऊपर जिस परिवेश की व्याख्या की गई मुक्तिबोध का काव्य उसी की प्रतिकृति है। उनका अन्तर्मन जीवन के अभावों को ही शीघ्रता से ग्रहण करता तथा समृद्ध जीवन को सामन्तीय व्यवस्था का रूप मानता है। "वे जानते थे कि मनुष्य का ज्ञान चिरन्तन विकासमान है। जिसे जानना है, वह अनन्त है जो जानने वाला है वह देशकाल से बँधा है।"

जलते अँगारे लाल बुझ चले
मन के।
ज्यों कभी यकायक वायु ठहर जाती है
वन के उजले सूनेपन में
और घूरने लगते हैं बरगद पथराई आँखों से
फैले रीतेपन की विराट् लहरों को
त्यों मन के अन्दर प्राण खो चले।[4]

---

१. नई कविता—नन्ददुलारे वाजपेयी—
२. नयी कविता और अस्तित्ववाद में डॉ० रामविलास शर्मा द्वारा उद्धृत।
३. नयी कविता का आत्मसंघर्ष—मुक्तिबोध
४. जीवन की लौ—मुक्तिबोध—(हंस/नवम्बर ४४)
डॉ० रामविलास शर्मा द्वारा उद्धृत - पृ० सं० २४ पर

मुक्तिबोध के काव्य-परिवेश और जीवन मूल्य को भली-भाँति समझने के लिए समकालीन कविता के यथार्थवादी पक्ष पर भी ध्यान देना आवश्यक है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने समकालीन यथार्थबोध में संतुलित मानवतावाद का अभाव देखा है। उनका कहना है कि—'अबतक जो अधिकांश रचनायें हम पढ़ सकते हैं उनमे संतुलित मानवतावाद कहीं नहीं दिखता। उसके बदले झूठी विभीषिका में पड़े हुए रोते और कराहते हुए बाबुओं की क्षुद्र अभिलाषायें क्षुद्र चिन्तायें अधिक परिलक्षित होती हैं, अथवा फिर एकान्तिक इच्छापूर्तियों और तृष्णाओं का बाहुल्य है।'[१] वाजपेयी जी नयी कविता में जैसा मानवतावाद और यथार्थबोध देखना चाहते थे सम्भवतः उन्हे मुक्तिबोध की कविता में मिल भी जाता मिला भी है अतः उन्होंने यथार्थबोध में उत्तरोत्तर होनेवाले परिष्कार की सराहना भी की है।[२] वाजपेयी जी के आक्षेप से नयी कविता की मुक्ति के लिए मुक्तिबोध की कविता में आगत मानवतावाद और यथार्थ का अनुशीलन करना समीचीन है। आलोच्य कविता में समकालीन जीवन की समस्यायें नहीं समाधान भी हैं खोज नहीं ग्रहण भी है और साथ ही वास्तविक जगत का व्यापक चित्र है। इसमें केवल मध्यमवर्गीय बाबुओं की जिन्दगी नहीं अपितु हथौड़ा चलानेवाले मजदूर, गर्भिणी अवस्था में भी बोझ ढोनेवाली महिलायें, मातायें, बहने, बूढ़े बुजुर्ग, नेता, राजनीतिज्ञ, कवि, वैज्ञानिक और पत्रकार भी हैं।[३] पहाड़ पठार मैदान और घाटियों से युक्त इस यथार्थ जगत में कई तरह के लोग हैं कई तरह का जीवन तथा सब मिलाकर एक समाज है—पूर्ण समाज। इनके काव्य-जगत के शब्द-वाक्य एवं भाषा में व्यक्ति समाज और जीवन है जिसमें मानवीय अभिप्रायों का सूर्य छप्परो के छिद्रों से प्रकाश रश्मियाँ फैलाता है। आम आदमी के मन में आई हुई आशा, इसी डबरे मे प्रतिबिम्बित होते हुए सूर्य की तरह है। यद्यपि यह कवि के काल्पनिक सत्य का प्रकाश है जिसे 'फैन्टेसी' कहा गया है किन्तु मुक्तिबोध का विश्वास है कि यह 'फैन्टेसी' आज नहीं तो कल वास्तव होगी—

> जब आसमान से धरती तक
> आकस्मिक एक प्रकाश-बेल
> विद्युत की नील बिलोल लता सी
> सहसा तुम बेपर्द हुईं।[४]

---

१. नई कविता — नन्ददुलारे वाजपेयी — पृ० सं० १२४।
२. वही — वही — पृ० सं०—४२।
३. ईमानदार संस्कारमयी / संतुलित नयी गहरी विवेक चेतना / अभय होकर अपने / वास्तविक मूलगामी निष्कर्षों तक पहुँची /
   (चाँ० मु० टे०—पृ० १६६)।
४. चाँद का मुँह टेढ़ा है— पृ० सं० १६८ (जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे)।

'मधु-गन्ध भरी उद्दाम हरी चम्पा के साथ उगे तारे' 'छवि मधुरा कविता की प्यारी सी एक कहन' 'जीवन की सोंधी सुगन्ध की महक जैसे बिम्ब समाधान स्वरूप हैं किन्तु ये बहुत कम हैं। आत्मिक स्तर पर संघर्ष करते हुए मुक्तिबोध ने समाज और राष्ट्र में व्याप्त पूँजीवादी सभ्यता के शोषण से मानव मुक्ति की कामना की है। 'स्व' से ऊपर उठकर 'पर' तक 'मैं' से चलकर 'हम' हो जाने की रचनाकार की उद्दाम लालसा उसकी दृष्टि को दीन जीवन की ओर ले जाती है। 'कर्म के फल पर नहीं—कर्म पर ही अधिकार / सिखानेवाले बचन आडम्बर / पावडर में सफेद अथवा गुलाबी / छिपे बड़े-बड़े चेंचक के दाग मुझे दीखते हैं / सभ्यता के चेहरे पर × X X'[१] बाहर से उन्नत अग्रसर तथा विकसित कहे जानेवाले समाज का यथार्थ रूप उस गहरे चेंचक के दाग सदृश है।

जीवन के शाश्वत मूल्यों के निकट लाकर 'चिरन्तन-सत्य' की खोज मुक्तिबोध की कविता का इष्ट है। यथार्थ चित्र एक 'एक्स-रे' की फोटो है जिसमें जीर्णरोग—तपेदिक (टी० बी०) रहस्यमयी अस्थियों में विद्यमान है। यह चित्र विचित्र और भयानक भी है। बाहर से आकर्षक लगनेवाले ऊपर से स्वस्थ दिखाई पड़ते शरीर की हड्डियों में लगा हुआ रोग 'जिन्दगी में सहमा सुकुमार घाव है जो अन्दर-अन्दर भयंकर होकर मृत्यु का कारण बन सकता है। 'शोषण की सभ्यता नियमों के अनुसार / बनी हुई संस्कृति के तिलस्मी सियाह चक्रव्यूहों में फँसा हुआ आम आदमी अभिमन्यु की तरह जूझ रहा है।'[२] कुँवर नारायण के आत्मजयी 'नचिकेता' धर्मवीर भारती के 'अश्वत्थामा' अथवा नरेश मेहता के 'राम' की तरह यथार्थ जीवन का आदमी समकलीन कविता का लघु मानव है जिसकी ओर पीछे संकेत किया जा चुका है।

मुक्तिबोध की कविता का मूल्य अतियथार्थवादी चित्रों में 'मृत्यु' दहशत' और मलवे के नीचे दबे हुए भवनों की कला की तरह अकाल की छाया में भी देखा जाता है। इस निराशा के जगत में 'आसन्न-पराजय की नगरी में'[३] बायें से दायें अथवा दायें से बायें घूमकर मुक्तिबोध का पुरुष व्यर्थ समय नहीं गँवाता। वह अभावों के विरुद्ध सतत संघर्ष करता है जो उसके काव्य-चित्रों में देखा जाता है। उसका इष्ट है इतिहास के मलवे के नीचे दबे चेहरे की तलाश / समकालीन कविता के वैविध्यमय रूप में दिखाई पड़नेवाला यथार्थ वास्तव में रचनाकार के लिए एक चुनौती है। प्रयोग के सम्मुख प्रेषणीयता बनकर 'संवेदनात्मक ज्ञान' के 'ज्ञानात्मक संवेदन' सदृश कवि का

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है —पृ० सं० ७७।
२. ,, ,, — मुक्तिबोध पृ० सं० ७७।
३ अंधा युग — धर्मवीर भारती

स्वर वीरानी में जाकर खो जाता है किन्तु उसकी प्रतिध्वनि अंतर में झंकृत होती है आदि से अन्त तक—अन्त से अनन्त तक। लघुमानव की जिजीविषामयी-यात्रा यथार्थ की यही रवानी है जो चल रही है—चलती जा रही है। इस मानव के हृदय में अपार शक्ति है—

नभस् अपार में
यन्त्र बद्ध गतियों का ग्रह-पथ त्यागकर
ब्रह्माण्ड अखिल की सरहदें माप लें
अरे ये ज्योति पिण्ड
हृदय में सत्‌शक्ति रखने के बावजूद
अंधे हैं — नेत्र हीन......... ...[1]

ब्रह्माण्ड के ज्योति पिण्ड की तरह विद्यमान महापुरुष, कलाकार, वैज्ञानिक एवं विचारक की भूमिकाओं में कार्यरत मानव इस समय अपना पथ त्याग चुका है – 'सबने तोड़ी है मर्यादा, पाण्डवों ने कुछ कम-कौरवों ने कुछ ज्यादा।'[2] जिस पथ का आदर्श त्यागा गया उसकी कोई निश्चित अवधारणा नहीं रही या जो थी भी वह मात्र सिद्धान्त-सूत्र थी। अभावग्रस्त जीवन ऋणात्मक राशि है जिसका वर्गमूल 'कलात्मक चित्र में विद्यमान जीवन की गति है—

'ऋण — एक राशि का वर्गमूल साक्षात्

ऋण धन तड़ित की चिनगियों का आत्मजात—प्रकाश है निज्मूल—[3]

"प्रगतिवादी काव्यधारा सामाजिक यथार्थ के अधिक समीप है। इससे भिन्न प्रयोगवादी यथार्थ मनोवैज्ञानिक और वैयक्तिक परिवेश को प्रमुखता देता है; नियति कुण्ठा अतृप्ति आदि के तत्वों को प्रदर्शित करता है।"[4] मूल्यवत्ता के क्रम में ग्रहण किया गया यथार्थबोध सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सीमा में पृथक् करना कठिन है। प्रयोगवादी चेतना स्वीकार करने से पूर्व मुक्तिबोध नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह की तरह प्रगतिवादी रह चुके है। जिस कवि की आरम्भिक अनुभूति सामाजिक यथार्थवाद से प्रेरित हो उसमें रचनात्मकता के स्तर पर मानवता-वाद के पुष्ट धरातल का होना स्वाभाविक है। मुक्तिबोध की परवर्ती कविताओं में मनोवैज्ञानिक यथार्थ की अस्मिता को नकारा नहीं जा सकता। वाह्य जगत की अभाव

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा — पृ० सं ८२।
२. अंधा युग — धर्मवीर भारती।
३. चाँद का मुँह टेढ़ा है — मुक्तिबोध पृ० ८३।
४. नई कविता — नन्द दुलारे वाजपेयी—पृ० सं० ४२।

अस्तता एवं दीनता, आंतरिक जगत में कुण्ठा, अतृप्ति, अवसाद एवं मनोभग्नता का रूप लेती है। यथार्थ चित्र के लिये अपनायी गयी यथार्थ भाषा की तार्किक शैली में गणित, विज्ञान, भूगोल, भूगर्भ विज्ञान के सिद्धान्त एवं सूत्र भी रंग की तरह देखे जाते हैं। जिन्दगी के प्रचलित मुहावरे, जन-जीवन में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली में भूत-प्रेत पर विश्वास, तिलिस्म एवं रहस्य की धारणा उनकी कविता के यथार्थ का महत्त्वपूर्ण अंश है .

स्वयं के अधूरे वे शब्द
और टूटी हुई लाइनें
व उभरे हुए चित्र ·
X X X
टूट-फूट जायेंगे
फ्रेमें सब टूटेंगी टण्टा होगा निज से
इसीलिए सत्य हमारे हैं सतही—१

अधूरे शब्द, टूटी लाइनें, टूटे फ्रेम मनोभग्नता एवं निराशा के सूचक हैं। मुक्तिबोध बाहर की दुनियाँ का चित्रण करते-करते 'निज मन' में डूब जाते हैं और अपने विद्रोही मन से समाज की समस्या के हल के लिए संलग्न होते हैं। बार-बार उनका काव्य-पुरुष बाहर से अन्दर आता देखा जाता है। सत्य यद्यपि अदृश्य है किन्तु उसे खोज लेने का उत्साह नियमों सूत्रों अपवादों द्वारा यथार्थ जीवन की गुत्थी का सुलझाव है। यथार्थ-जगत एक कार्य है जिसका कारण उसी में छिपा है। इस कारण की खोज में वे जीवनानुभूतियों से मदद लेते हैं पूर्व और पश्चिम के मतवादों की भी सहायता लेते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर वृक्ष से पहचान, फूल से हाल-चाल की जानकारी, लताओं की उलझन भी निहारते हैं। यह खोज एक 'बायामीडिया' है जिससे हल निकलने की पूरी सम्भावना है। नदी, वन, पर्वत, पठार, खोह, कन्दरा और घाटी में फैला हुआ सवाल यथार्थ से लेकर चित्त के स्तर पर उसे हल करना उनके कवि का अभीष्ट है। कविता में आये हुए अक्षर-लिपि, संकेत चिह्न, टूटी पंक्तियाँ एवं बिखरे शब्दों में भी भारत का चित्र है।

असंख्य स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकायें, युवक एवं वृद्ध सभी भटक रहे हैं जिन्हें एक नेतृत्व की तलाश है।—'बहुत सम्भव है चुप इन्हीं अमराइयों में गान आ जायें।' मुक्तिबोध पर टालस्टॉय के मानवतावाद के अतिरिक्त गांधी-दर्शन का प्रभाव है। एकता, सत्य, अहिंसा, सदाचार, थीसिस (वाद) के रूप में है जिस पर मार्क्स एवं रसेल का प्रभाव प्रतिवाद (एण्टी थीसिस) की तरह है और सेन्थीसिस के रूप में

१. चांद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० सं० ८४।

आया है यथार्थ का स्वर—'जिन्दगी की कोख में जन्मा इस्पातसदृश सत्य' जो आग पाकर लाल होता है किन्तु मजबूत इतना है कि सामान्य स्थिति में अव्यक्त विश्वात्मक तड़ित आघात से टूट नहीं सकता।[१] डॉ० नामवर सिंह ने सत्य के इस उद्घाटन को 'आसन्न संकट का तीखा एहसास' कहा है। यथार्थ के साथ विद्यमान कवि का निजत्व-बोध कविता मे नाटकीयता एकालाप या स्वगत कथन हो जाता है। गीतात्मकता के विपरीत नाटकीयता की शैली समकालीन कविता की प्रचलित शैली है। 'मेरे लोग' कविता में आई हुई पंक्ति 'किसी की खोज है उनको किसी नेतृत्व की' में भारतीय जनता है। स्वतन्त्रतापूर्व का भारत और स्वतन्त्रता प्राप्ति का भारत मुक्तिबोध में भिन्न है। भारतीय जनता को गांधी के नेतृत्व की खोज थी और स्वातंत्र्योत्तर कविता में यह खोज नेहरू का व्यापक प्रभाव बन जाती है।[२] असंख्य मनुष्यों का भटकाव परतन्त्र भारत का है—"उपेक्षित कालपीड़ित सत्य के समुदाय में साथ-साथ" अग्रसर होता हुआ काव्य-पुरुष भीड़ में विलीन होने में विश्वास नहीं करता है। आत्मिक स्तर पर रचनाकार की खोज गन्दी बस्ती के नाले के पार झुग्गियों और झोपड़ियों मे भी चलती है। छोटी-सी गुमटीनुमा पुस्तकालय की फटी-पुरानी किताब के किसी पृष्ठ पर वह समाधान भी है जो एक चित्र है—भयानक डाट जैसा। आशा और आस्था के सहारे जीने वाले कवि ने यथार्थ को घर, आँगन, शैलांचल गिरिराज शिखर तक खोजा है। 'पत्थर के टेबुल पर रक्ताभ दीप की लौ के प्रकाश में' पीड़ा की पुस्तक के स्वयं खुलते गये ये पृष्ठ उनके द्वारा[३] पढ़े गये हैं। 'निजत्वबोध' की यह 'अन्तर्मुखी-यात्रा' अपनी भूल और गल्तियों के कारण कभी-कभी भटकाव का कारण बन जाती है। स्वतन्त्रता के पूर्व के भारतीयों का संकट 'भूल-गल्ती' का जिरह बख्तर है।

मुक्तिबोध की कविता में पाठक को बराबर सचेत रहना पड़ता है क्योंकि जादूगर की भाँति उनका 'मैं' 'तुम' बन जाता है। 'कभी शेव्रलेट और डाज के नीचे लेटकर तेलिया लिबास में पुर्जे सुधारने वाला' तो कभी रेफ्रीजरेटर विटैमिन रेडियो-ग्राम्स की दुनियाँ से दूर पेटों की आंतों में न्यूनों की पीड़ा का अनुभव करता है।

> शून्यों से घिरी हुई पीड़ा ही सत्य है।
> शेष सब अवास्तव अयथार्थ मिथ्या है, भ्रम है
> सत्य केवल एक है जो कि—
> दुखों का क्रम है—[४]

---

१. चाँद का मुंह टेढ़ा है (मेरे लोग)—मुक्तिबोध
२. चाँद का मुंह टेढ़ा है—मुक्तिबोध (मेरे लोग)
३. " " " वही—पृ० सं० ६१।
४. मैं तुम लोगों से दूर हूँ—(चाँद का मुँह टेढ़ा है)—पृ० १०४।

मुक्तिबोध यह ध्यान बराबर रखते हैं कि उनकी जिन्दगी अधूरी और सतही है। उस जीवन के गर्म रास्तों में उन्होंने यथार्थ पाया है जिसे जीवन-मूल्य के रूप में वे कविता में स्थान देते चलते हैं।[१] निजत्व की बेचैनी अनुभूति की छटपटाहट कविता में उतरने को भरपूर प्रयासरत है। पैरों के नीचे पड़ने वाली आग और लावा से व्रणाहत पैर लेकर भी वे उसे झेलने को विवश हैं। शून्य मन की टीन छत पर गर्मी की तप्त ज्वाला में झुलस कर भी चीखते-चिल्लाते तो हैं किन्तु कविता में उसे यथा-तथ्य प्रकट करने में लज्जा और संकोच का अनुभव करते हैं। पराजय और नैराश्य को व्यक्त करना उनका स्वभाव नहीं है। 'शून्यों से घिरी हुई पीड़ा उनके यथार्थबोध का मूल है जिसमें प्रवेश किये बिना उनके आत्म-साक्षात्कार से साक्षात्कार करना' सम्भव नहीं है। डॉ० नामवर सिंह का कहना है कि "यदि काव्य की वास्तविकता को ही वास्तविकता की माप का आधार बनायें तो यह मूल्यांकन नहीं बल्कि अधिक से अधिक व्याख्या होगी और यदि काव्येतर वास्तविकता को अपनायें तो उसकी प्रामाणिकता को भी चुनौती दी जा सकती है।"[२] प्रामाणिकता को चुनौती देने का कार्य तो समर्थ आचार्य ही कर सकते हैं किन्तु 'व्याख्या' के सहारे अर्थवत्ता की खोज मूल्यवत्ता की परख के लिये पर्याप्त है।

> आत्म विस्तार यह / बेकार नहीं जायगा
> जमीन में गड़े हुए देहों की खाक से
> शरीर की मिट्टी से धूल से
> खिलेंगे गुलाबी फूल
> सही है कि हम पहचाने नहीं जायेंगे[३]

पश्चिम की अतियथार्थवादी (सुरियलिस्टिक) विचारधारा के अनुरूप उनका कलाबोध अधूरा भले हो किन्तु आज की वास्तविकता के लिये वह एक प्रतिमान बन जाता है। यही नयी कविता में आया हुआ नवीन मूल्यबोध है जिसके अंतर्गत यथार्थ भी नया आयाम पाता है। इससे समकालीन कविता का सौन्दर्यबोध भी बदल गया है। इस सौन्दर्यबोध में एक 'डायनमिक ब्यूटी' है,[४] इसमें मुक्तिबोध की आत्म-प्रस्था-

---

१. अधूरी और सतही जिन्दगी के गर्म रास्तों पर—मुक्तिबोध।

२. कविता के नये प्रतिमान—नामवर सिंह—पृ० सं० १९२।

३. मुझे पुकारती हुई पुकार — (चाँद का मुँह टेढ़ा है) पृ० सं० ६६।

४. अपूर्ण सत्य की क्षुधित / अपूर्ण सत्य की तृषित /
अपूर्ण जीवनानुभूति — प्राणमूर्ति की समस्त मग्नता दिखी /
(कराह भर उठा प्रसार प्राण का अजब) / समस्त भग्नता दिखी /
मुझे दिखी विरुद्ध शून्यता अशान्त काँपती / [चाँ० मुँ० टे०—६७]।

क्ता परिचित सत्य से अधिक 'अर्जित-सत्य' पर आधारित है। यह सत्य पूर्णतः लौकिक है तथा यथार्थवादी काव्यधारा का मूल है। 'यथार्थवादी काव्यधारा अपने नाम के अनुरूप ही लौकिक, सत्यों से सम्बन्धित है। इसी लिए आज के वैज्ञानिक युग मे यथार्थवाद अपने उपयुक्त वातावरण का लाभ उठा रहा है। × × × वस्तु चित्रण तथा शैली के सम्बन्ध में नवीन वैज्ञानिक तथ्यों को स्थान देना और काव्य को युगीन परिस्थितियों, प्रश्नों चेतनाओं के अधिक से अधिक समीप पहुँचना है।[1] मुक्ति-बोध की कविता में वाजपेयी जी की यह स्थापना शत प्रतिशत लागू होती है। उन्होंने वैज्ञानिक तथ्यों को तर्क-वितर्क एवं बौद्धिकता के साथ कविता मे स्थान दिया दिया है / 'ऊपर के जड़ीभूत दबावों से दबा हुआ / अपना स्पन्द / अनुभूत करते जाना / दौड़ती रुकती धुकधुकी / महसूस करते जाना भीषण है / भयंकर है—[2]
ऐसे स्थलों पर कवि की आस्था और अस्मिता की भी उचित परख हो जाती है, जाना हुआ कवि पहचाना हुआ हो जाता है।

कविता में आया हुआ सुविचारित सत्य सपाट समतल मैदान है। मुंशी प्रेमचन्द ने भी अपनी जिन्दगी को एक समतल मैदान कहा है। मुक्तिबोध ने इस मैदान को स्वयं निर्मित किया है। रूढ़ियों के बंजर तथा सतही जानकारी की पीली सूखी घासों को काटकर उन्होंने अपना पथ स्वयं निर्मित किया है। सम्भवतः यह पथ नेतृत्व का पथ है जिसमें कहीं-कहीं गाँधीवादी आस्था बोल रही है।[3] बूढ़े पटेल बाबा, मातायें, बहनें सभी इस पथ से जाते हैं जिन्हें प्रणाम करने की उनकी अभिलाषा है। विडम्बना यह है कि वे एक ओर इस भीड़ के 'वह' से मिलते हैं उससे आत्मीयता का सम्बन्ध भी स्थापित करते हैं तो दूसरी ओर अपने 'स्व' से भी बराबर जुड़े रहकर तनाव की स्थिति का उद्घाटन करते हैं।

मुक्तिबोध की कविता की मूल्यवत्ता की परख का एक और अवशिष्ट पहलू है—समकालीन भारत। पहले कभी वह सूखी जाँघों की लम्बी-लम्बी अस्थियों को हिलाता चलता था, लँगोटीधारी दुबला गुलाम और शोषित था। यही भारत आजादी के बाद के भारत का पिता है—राष्ट्रपिता, जिसकी साँवली एकहरी काया से विश्व की शक्ति हार गयी। वर्तमान राष्ट्र की अराजकता का उद्घाटन करने में भी मुक्तिबोध सफल हैं। नेता, पत्रकार, अधिकारी, मंत्री आदि के चेहरे में वे कहीं भी धोखा नहीं

१. नयी कविता—नन्द दुलारे वाजपेयी—(पृ० सं० ४४)।
२. (चाँ० का मु० टे० —५९)
३. हम बागी थे उस वक्त / रास्ता कहीं नहीं था / अब तो रास्ते ही रास्ते हैं /
— मुक्तिबोध

खाने। "वे सामान्य आदमी का एकदम भरोसा करते थे किन्तु राजनीतिक और साहित्यिक व्यक्ति के प्रति सदैव शंकालु रहते थे।"[१] यही कारण है कि उनके इस भारत में आम आदमी ही अधिक आये हैं—आम जिन्दगी जीते हुए।

मूल्यबोध के साथ ही रचनात्मकता के स्तर पर ग्रहण किया गया भारत विश्व के महान देशों में एक है। वह अग्रगण्य होकर अपनी रक्षा के लिए आधुनिक ज्ञान और विज्ञान को अपनाता है। रसेल, टायनबी, टॉलस्टाय के अतिरिक्त पतंजलि और पाणिनि आदि को मुक्तिबोध अपनी पौराणिक आस्थाओं से ग्रहण करते हैं। रचनात्मक फैन्टेसी में अस्मिता की खोज करते-करते डॉ० रामविलास शर्मा उनको रहस्यवादी कहते हैं, डॉ० शिवकुमार मिश्र उनकी रचनाधर्मिता को कबीर के स्तर की मानते हैं, निराला से तुलना करना तो प्रचलित ही है। अधूरे सत्य को कभी-कभी अतिरिक्त उत्साह से वे पूरा मान लेते हैं—'पूरा सत्य लेकर' जीवन की राष्ट्रीय समस्याओं के लिए वे अपना 'दाय' देते हैं। यह स्वतंत्र भारत के नागरिक का चरित्र है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में समाजवादी दृष्टि का परिचय उनकी इन पंक्तियों में मिलता है, जो सर्व भूत हित रत व्यक्ति का है।

> लबका कर ले लिया हमने
> इसे देने उसे देने
> इन्हें देने उन्हें देने—

उन्होंने 'भारत : इतिहास और संस्कृति' पर एक पुस्तक भी लिखी थी जिस पर म० प्र० सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाया गया था। स्वतन्त्रता के बाद भी एक निर्वासित, विद्रोही की एकान्त-प्रिय जिन्दगी जीने वाले कवि ने 'रचनात्मकता' द्वारा उस देश को खोजना चाहा है जिसे पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' में खोजा है।[२] शमशेर ने मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' में भारत का एक विराट् चित्र देखा है। स्वतन्त्रता के बाद भारत में उभरता हुआ राष्ट्रीय चरित्र जीवन-मूल्य का आदर्श है। 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' में वे गिरते हुए चरित्र के प्रति चिन्तित देखे जाते हैं।"[३]

---

१. हरिशंकर परसायी के एक लेख में
२. कविता के नये प्रतिमान—डॉ० नामवर सिंह
३. स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त भारत में एक ओर अवसरवाद की बाढ़ आयी। शिक्षित मध्यमवर्ग में भी उसकी जोरदार लहरें पैदा हुईं। साहित्यिक लोग भी उसके प्रवाह में बहे और खूब बहे। इस भ्रष्टाचार, अवसरवाद, स्वार्थपरता की पार्श्व-भूमि में नयी कविता के क्षेत्र में पुराने प्रगतिवाद को त्यागा गया। (नयी कविता का आत्म-संघर्ष—पृ० ३७)

दूर-दूर मुफलिसी के टूटे घरों में भी / अभी चिराग जले हैं / जल रहे हैं, / अर्थात् अँधेरे के विरुद्ध एक संघर्ष स्वतन्त्र भारत में भी जारी है [यह संघर्ष सीमित भले हो किन्तु नाकामयाब नहीं कहा जा सकता] × × × आधी अँधेरी शाम / तलाई में निलाई से नहाकर, पूरी झुक जाती है × × / × × रास्ते पर आते जाते दीखते हैं बूढ़े से पटेल बाबा / ऊँचे से किसान दादा /[१]

अवसरवाद एवं सुविधापरक जीवन से उन्हें निराशा होती है। इसीलिए राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर अपराधबोध की ग्लानि जीवन की त्रासदी को गम्भीर बनाती है—

यानी कि पेड़ ने दिया तोड़ / वह नीड़ स्वयं
घोंसला तोड़ने का अपराधी कौन ?
तूफानों का न उसमें दोष
क्योंकि वे अचेतन, अन्ध, प्रजड़ × × ×
× × अपराधी मैं स्वयं
सूखता न मैं / बनता न ठूँठ /[२]

मुक्तिबोध के रचनात्मक जगत में 'मूल्यवत्ता' तथा 'आधुनिकताबोध' के स्तर पर विद्यमान समाज और व्यक्ति के इन चित्रों में उनके स्वयं के मूल्यबोध की प्रधानता है। समकालीन समीक्षा में जब यह स्थापना की जाने लगी है कि मूल्य की एक निरपेक्ष सत्ता है तो इसमें यह कथन भी छिपा है कि रचना का जगत कवि का स्वतन्त्र जगत है। यह स्थापना मुक्तिबोध की कविता के लिए विशेष रूप से स्वीकारी जाती है। मैं, हम, मेरा, मैंने, मुझको, मुझमें आदि अंश उनके आंतरिक काव्यानुशासन की ओर मोड़ते हैं। श्री अशोक वाजपेयी ने उन्हें 'भयानक Robber' कहा है जिसे कड़ुवा सच कहने की आदत है। स्वार्थलिप्सा, राजनीति, कूटनीति एवं षड्यंत्रकारी समाज में महाजनी सभ्यता का प्रसार है किन्तु पन्त और नागार्जुन की तरह मुक्तिबोध ने कोई स्वतन्त्र पथ नहीं निर्मित किया। माचवे, नेमिचन्द्र जैन, त्रिलोचन शास्त्री, केदारनाथ अग्रवाल के साथ-साथ मुक्तिबोध भी उसी राह पर चले हैं। 'बर्टोल्ड-ब्रेख्ट' की तरह राह की अनुभूतियाँ उनकी स्वयं की है।

मुक्तिबोध की रचनाधर्मिता का एक छोर यहाँ है— समीर ने देखा न आव ताव भी / पूछा न नींव और कमरे में झुककर कूदते बच्चों से प्यार कर अलकों में रुककर / कपोलों से मेल कर / भाभी के चरण छू अंचल को झेलकर / भूमा और

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—(मुझे याद आते हैं)—मुक्तिबोध—पृ० ७६
२. ,, ,, ,, — ,,

नाचा और बच्चों को थपियाया /[1] दूसरा ओर ऊपर विविध प्रसंगों मे आया है—संघर्ष की जिन्दगी का और तीसरा रूप उनकी निज की जिन्दगी का है। "मारी गोली-दाबो-स्याले को / एकदम दुनियाँ नजर से हटकर /"[2] इन तीन बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा से एक ऐसा त्रिकोणात्मक संघर्षयुक्त चित्र बनता है जो अति दीर्घ होकर सम्पूर्ण रचना-जगत को समाहित करता है। इन व्याख्यायित बिन्दुओं के बाद जो बात कहने लिए अवशिष्ट रह जाती है वह है मूल्यबोध और आधुनिकता के मूल्यांकन की समस्या। जिसके परिप्रेक्ष्य में डॉ० नामवर सिंह के कथन से सहमत होकर यह कहा जा सकता है कि उनके मूल्यांकन में परस्पर विरोधी स्थापनायें मिल सकती हैं। किन्तु इन विरोधी बिन्दुओं को यदि 'धनात्मक' और 'ऋणात्मक' मान लिया जाय तो यह दो दृढ़ बिन्दुओं के बीच का तनावयुक्त प्रसार है। साथ ही उनके विश्वबोध की ऊँचाई, उसमें प्रेषणीयता का अभाव तथा पाठक की पहुँच से दूर होने का कारण भी उनका 'निजत्वबोध' है। वे व्यक्तित्व की जिस ऊँचाई पर 'उठकर' बात कहते हैं वहाँ तक पहुँचना उनके 'स्वायत्त स्वतन्त्र राज्य में' प्रवेश करना है। उनके राज्य में प्रवेश करके भी असम्पृक्त रह जाना उनके "प्रकाश" में सत्य को ढूँढने का असफल प्रयास है किन्तु गणित के उत्तर की तरह 'ऋणात्मक-राशि' में भी अस्मिता की स्थिति (निगेटिव वैल्यू) उनकी कविता में विद्यमान है। "हमारे आस-पास के संसार को अर्थ प्रदान करने की सार्थकता मुक्तिबोध में कम है, हाँ उनके संसार की सार्थकता" अच्छे व उससे अधिक अच्छे के बीच का संघर है किन्तु पाठक संघर नहीं परिणाम चाहता है।

समकालीन कविता के आधुनिकता बोध, यथार्थ बोध, रचना कर्म बनाम नागरिक कर्म आदि से सम्पृक्त मुक्तिबोध की कविता की मूल्यवत्ता अनेक विपरीत बिन्दुओं का समाधान है। मूल्य की अवधारणा को जीवन से जोड़कर भारतीय परिवेश में में उसकी अभिव्यक्ति कवि की सार्थकता है। स्वतंत्रता के पूर्व के भारत का आदर्श-गांधीवाद तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का आदर्श पंचशील एक साथ मुक्तिबोध की कविता में ध्वनित होता है। ग्रामीण जीवन एवं नगरीय जीवन के बीच की दूरी, शिक्षित जीवन एवं अशिक्षित जीवन के बीच का अन्तर, सम्पन्न जीवन की मानसिकता एवं विपन्न जीवन की निराशा एवं कुण्ठा के बीच रहकर उनके काव्य-नायक ने जो कुछ प्राप्त किया है उसे 'इन्हें देने—उन्हें देने' के प्रयास में है। 'सर्व भूत हितरत' कवि का आदर्श पुरातन संस्कार है तथा आधुनिक बनना यथार्थ की माँग। अधुनातन भारत के नागरिकों में व्याप्त अवसरवाद स्वार्थ-लिप्सा अलगाववाद तथा धर्म एवं भाषा की

---

१. भूरी-भूरी खाक धूल—मुक्तिबोध—पृ० सं० १८३।
२. „ „ „ पृ० सं० २४७।

संकीर्णताओं का जन्म स्वतंत्रता के बाद नगरीय उपनिवेश के प्रभाव से हुआ है। मुक्तिबोध का रचनाकार इन मोड़ों पर चक्कर लगाते हुए चौराहों पर लगी हुई भीड़ एवं अराजकता के समाज में सबसे होकर गुजरना एवं पार जाना चाहता है। अनिवार-आत्मसम्भवा की खोज में मिले रत्नों का मूल्य उनके कवि को मालूम है और उससे तदाकारिता उनके संसार के अनुशासन एवं नियमों के अनुपालन से सम्भव है।

शोषण एवं सामन्तीय व्यवस्था की जड़ समाज में इतने गहरे पैठ चुकी है कि उसको निकालना सियाह चक्रव्यूहों एवं अँधेरी प्राकृत गुफाओं के बीच राह प्राप्त करना है। वास्तविक 'जीवन की फैन्टेसी कल वास्तव होगी' इसी आशा में मुक्तिबोध रचना कर्म में प्रवृत्त होते हैं। उनकी सर्जना की सार्थकता सभी दृष्टियों से है। जीवन के 'अनुभूत-सत्य' को 'कलात्मक-तथ्य' बनाकर प्रस्तुत करना प्रयोगवादी सिद्धान्त है जिसका व्यावहारिक पक्ष मुक्तिबोध की कविता में देखा जा सकता है। 'सुखी-जीना' एवं सार्थक जीना' में से मुक्तिबोध का कवि 'सार्थक जीना' का वरण करता है किन्तु इस जीवन-यात्रा में वह अकेला रहता है।

जीवन की स्पर्धा, संघर्ष, ठेला-ठेली तथा भाग दौड़ को झेलनेवाला रचनाकार कवि, पत्रकार, चिन्तक, विचारक, मार्गदर्शक आदि भूमिकाओं में प्रस्तुत होकर अपनी मूल्यवती कला का प्रदर्शन करता है। उसका जीवन-दर्शन वादग्रस्तता एवं संकीर्णताओं से परे विराट-भारत का पर्याय है। परस्पर विरोधी विचार एवं सिद्धान्तों की तरह मुक्तिबोध की कविता का परिप्रेक्ष्य भी विसंगतियों से युक्त है। उनका दृष्टि विकास का संघर्ष मूल्योपलब्धि का संघर्ष होकर भाव गाम्भीर्य तथा उलझनों का कारण बना है किन्तु इनके सुलझाने का सूत्र भी उनकी गद्यात्मक कृतियों एवं 'डायरियों' में विद्यमान है। उनके 'निजत्वबोध' की पकड़ भी इसी से मिलती-जुलती प्रक्रिया है जिसके लिए उनकी कविता के परिवेश का जानना महत्त्वपूर्ण है तथा यही मूल्यवत्ता की वास्तविक परख है।

---

७. मुक्तिबोध की काव्य-भाषा

(अर्थखोजी प्राण ये उद्दाम हैं)

अर्थ क्या ? यह प्रश्न जीवन का अमर !
क्या तृषा मेरी बुझेगी इस तरह ?
अर्थ क्या ? ललकार मेरी है प्रखर

—तार सप्तक

× × ×

बात अभी कहाँ पूरी हुई है,
आत्मा की एकता में दुई है।
इसीलिए
स्वयं के अधूरे ये शब्द और
टूटी हुई लाइनें न उभरे हुए चित्र
टटोलता हूँ उनमें कि
कोई उलझा-अटका हुआ सत्य कहीं मिल जाये।

—चाँद का मुँह टेढ़ा है

मुक्तिबोध की काव्य-भाषा में जीवन के अन्य मोर्चों पर संघर्ष की अपेक्षा अभिव्यक्ति के मोर्चे पर जूझने की प्रवृत्ति देखी जाती है। रचनाकार के त्रिविध संघर्षों में 'अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिए किया गया संघर्ष' 'तत्व के लिए' तथा 'दृष्टि विकास के लिए' झेले गये संघर्षों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। सामान्यतः भाषा 'दाँत की जगहों से निकल कर' ध्वनियों के संघात से निर्मित शब्दों द्वारा अर्थवत्ता ग्रहण करने की प्रक्रिया है किन्तु आत्मा के अनुभूत-सत्य को वाणी देना एक जटिल कार्य है, क्योंकि भाषा सामाजिक वस्तु होती है। मुक्तिबोध की भाषागत संवेदना ध्वनि, शब्द, लय, कथन की भंगिमा तथा अभिव्यक्ति की ईमानदारी का परिणाम है। प्रयोगवाद एवं नयी कविता की प्रवृत्तियों से उद्भूत एवं परिचालित काव्य-भाषा उलझी हुई संवेदना के आरोप से युक्त है और मुक्तिबोध के संदर्भ में यह सवाल और भी उलझा हुआ है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की भाषा पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि 'भाषा इस अलमस्त फक्कड़ मौला के सामने लाचार नजर आती है। जो बन पड़ा है ठीक-ठीक नहीं तो दरेरा देकर।' आचार्य द्विवेदी ने आगे कहा कि 'कबीर की भाषा अरूप को रूप देने का प्रयास है।' मुक्तिबोध के सन्दर्भ में भी ये दोनों कथन पूर्णतः लागू होते हैं। जीवन और समाज से ग्रहण किये गये काव्य तत्व को व्यक्त करने का पुरजोर प्रयास मुक्तिबोध की भाषा में परिलक्षित होता है भले ही इसमें टूटन, बिखराव, खण्डित बिम्ब एवं अटपटी प्रतीकात्मकतायें आ गई हों। आचार्य द्विवेदी द्वारा व्याख्यायित 'अरूप को रूप देने का प्रयास' टी० एस० ईलियट के 'आब्जेक्टिव को रिलेटिव' से मिलता-जुलता है जो मुक्तिबोध की सर्जना में "एक खोज और ग्रहण प्रक्रिया का परिणाम है।"

काव्य-समीक्षा के अद्युनातन सन्दर्भ काव्य-भाषा के आधार पर ही व्याख्यायित होते हैं। काव्य के तत्त्व, रूप और शिल्प, अभिव्यंजना, कलात्मकता तथा प्रेषणीयता एवं प्रभाव के सारे सवाल प्रकारान्तर से काव्य-भाषा के ही सवाल हैं। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में—नयी कविता के युग में आज जब कविता के सभी परम्परागत भेदक लक्षण—तुक, छन्द, अलंकरण, लय (शायद सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व रस भी) धीरे-धीरे विलुप्त हो चले हैं तो काव्य-भाषा ही वह अन्तिम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आधार शेष रह जाता है जिसके सहारे कविता के आन्तरिक संघटक को समझने की चेष्टा हो सकती है।'[१] 'अलंकारों की उपयोगिता को अस्वीकार करने

---

१. भाषा और संवेदना—डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी

—(डॉ० नामवर सिंह द्वारा कविता के नये प्रतिमान में उद्धृत)

वाली', 'छन्दों की पायल उतार फेंकने वाली', 'प्रास के रजत पास से मुक्त' नय कविता रूप और शिल्प के आक्षेप से मुक्त नहीं हो सकती। इसमें विद्रूपता, नीरसत गद्यात्मकता एवं खुरदरेपन के साथ ही देशज शब्दों के स्वच्छन्द प्रयोग मिलते हैं संदर्भित कविताओं में आने वाले स्वप्न एवं अर्द्ध स्वप्न की स्थिति के अनेक सिद्धान सूत्र 'मेटा फिजिक्स, भौतिकी रसायन-शास्त्र, दर्शन एवं मनोविज्ञान से ग्रहण किये हैं ऐसी कविता के गुथन-उलझाव, विकृत आकृति-बिम्ब तथा असम्बद्ध कथ्यों माध्यम से काव्य-भाषा दुरूह जटिल एवं जनमानस से दूर हट जाती है। नाम ए सम्बोधनों के प्रयोग, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू एवं देशज भाषाओं के काटने एवं चोट कर वाले शब्द मुक्तिबोध की कविता में प्रायः हैं।'

जीवन दृष्टि एवं जीवन-मूल्यों के संवाहक ये शब्द कभी-कभी इतने जटिल जाते हैं कि समस्याओं के विषम दुर्ग में पाठक प्रवेश करने से वंचित रह जाता है मुक्तिबोध का रचनाकार चोट करता, कुरेदता, धकियाता हुआ पुरातन मान्यताओं आगे बढ़ जाना चाहता है और पाठक इस करिश्मे का मूक द्रष्टा बनता है। डॉ नामवर सिंह के अनुसार मुक्तिबोध की सर्जना 'अव्यक्त अनिवार आत्मसम्भवा खोज' है तथा डॉ० रामविलास शर्मा की दृष्टि में अस्तित्ववाद से युक्त नव रहस्य वादी चेतना की अभिव्यक्ति। काव्य-भाषा के माध्यम से इन बिन्दुओं पर भी विचा किया जा सकता है। 'अँधेरे में अस्मिता की खोज' तथा 'सर्जक की अपने अस्तित्व के प्रति सजग रहने' की प्रक्रिया सर्जना में हर स्थल पर है किन्तु सावधानी बावजूद भी कहीं-कहीं भाषा-'स्टेटमेन्ट' बन गई है।

डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव 'नयी कविता' की मान्यताओं को 'मुकम्मल' नहीं मानते तथा संदर्भित युग की कलागत समीक्षा के लिए 'मुकम्मल' प्रतिमान भी नहीं स्थापित करना चाहते किन्तु जब 'राहों के अन्वेषी संदर्भ बन चुके हैं तथा 'बीस वर्ष की कविता-यात्रा के दौरान तारसप्तक के सम्पादक-अज्ञेय 'यायावरी प्रवृत्ति' का परित्याग कर नियामक बन सकते हैं तब 'मुकम्मल' प्रतिमान स्थापित करना और खोजना भी अभीष्ट है। जीवन-मूल्य, अभिव्यंजना रूपबोध एवं इतिहासबोध तथ कविता के साक्षात्कार के लिए काव्य-भाषा सर्वथा उपयुक्त माध्यम है। 'मुक्तिबोध की राह अज्ञेय की राह से भिन्न है और इस भिन्नता का निकष दोनों कवियों की भाषायें हैं। अज्ञेय की भाषा में आभिजात्य सौन्दर्य दृष्टि अधिक है जिससे वे ए संस्कार युक्त सुथरी काव्य-भाषा के सर्जक हैं जबकि मुक्तिबोध की भाषा असंय मनःस्थिति की उपज है।

काव्य-भाषा के प्रयोक्ता रूप में अज्ञेय का कहना है कि सर्जना के समय कवि इतना सजग नहीं रहता कि वह जिस भाषा-शब्द, वाक्य अथवा मुहावरे द्वारा अपन

बात कहने जा रहा है वह कलात्मकता के क्षेत्र में सफल होगी अथवा नहीं। अर्थवत्ता के उद्देश्य की पूर्ति तथा प्रेषणीयता की सम्भावनाओं से भी वह विशेष चिन्तित नहीं होता। अप्रस्तुत विधानों का प्रयोग, प्रतीक विधान, अलंकार बिम्ब विधानों द्वारा वह सांस्कृतिक मूल्यों को कलात्मक मूल्य के रूप में अपनाता है।" अज्ञेय की इस स्थापना के विपरीत सर्जना का जीवन्त रूप हमें मुक्तिबोध की कविता में मिलता है। नेमिचन्द्र को लिखे गये एक पत्र में उन्होंने यह उद्‌घाटित किया है कि एक रचना को दुरुस्त करने में उन्हें ४-६ घंटे लगते थे। उनकी कविताओं में काट-छाँट, संशोधन, सुधार बराबर हुआ है अतः शब्द-वाक्य अथवा मुहावरे के प्रयोग में असावधानी का प्रश्न ही नहीं है। 'कलात्मकता के क्षेत्र में सफलता के प्रति भी मुक्तिबोध चिन्तित हुए हैं क्योंकि 'स्वयं प्रसूत भयंकर बात' ही उनकी जिन्दगी का पर्याय है।

प्रयोगवाद को शिल्प एवं अभिव्यक्ति की दिशा में 'राहों के अन्वेषण' का परिणाम कहकर अज्ञेय को ही इसका नियामक मान लिया जाय तो इससे 'जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि' (कण्डीशण्ड रिफ्लेक्समेन्ट) का खतरा भी उत्पन्न हो जायेगा जिससे कि मुक्तिबोध को परहेज है। तारसप्तक के प्रकाशन से 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' के प्रकाशन तक मुक्तिबोध की काव्य-भाषा में सघनता बराबर बनी रही। परवर्ती 'नये' कवियों के आदर्श मुक्तिबोध हैं न कि अज्ञेय। 'राहों के अन्वेषी' भटकाव छोड़कर जब राह पाना चाहते हैं तो उनके समक्ष मुक्तिबोध का सर्जक आदर्श रूप में आगे-आगे चलता है, टूटने व गलने को सहन करता है; जिससे वह आवेगत्वरित कालयात्री बन जाता है।

नयी कविता की काव्य-भाषा के सम्बन्ध में टी० एस० ईलियट का यह कथन ध्यातव्य है। "किसी नयी अनुभूति का सम्प्रेषण या किसी परिचित वस्तु का ही नवीनबोध अथवा किसी ऐसी वस्तु की अभिव्यंजना जिसकी अनुभूति से हमारी चेतना का विस्तार या हमारी संवेदनशीलता का परिष्कार हुआ है परन्तु उस अनुभूति के उपयुक्त शब्द हमारे पास न हों।"[१] ऐसी नयी अभिव्यंजना के लिए काव्य-भाषा की क्षमता बढ़ाना अपेक्षित होता है। प्रयोगवादी काव्यशिल्प के साथ काव्य-भाषा का जो रूप सामने आया है उसमें पुरानी भाषा की परम्परा के साथ ही भाषा का नवीन तेवर विद्यमान है। नये कवि के समक्ष उत्पन्न हुए प्रेषणीयता के संकट से अज्ञेय भलीभाँति परिचित थे तथा मुक्तिबोध भी इसका अनुभव कर रहे थे। प्रेषणीयता के अनुरूप काव्य-भाषा की परिवर्तनशीलता के सम्बन्ध में मुक्तिबोध का कहना है कि (अभिव्यक्ति) के उस संघर्ष के दौरान भाषा के भीतर अवस्थित ज्ञान परम्परा और

१. On Poetry and Poets—T. S. Eliot—Page 18.

भाव-परम्परा के कारण जो पहले से ही शब्द संयोग बने हुए हैं, उन शब्द-संयोगों के साथ अनिवार्य रूप से जुड़े हुए अर्थानुषंग हैं, उन अर्थानुषंगों (के प्रभाव में आकर मनोमय रूप तत्व समशील समरूप अर्थानुषंगों) को आत्मसात् कर अपने को पुष्ट करते हैं फलतः वे इस हद तक बदल भी जाते हैं।"[1] शब्द-संयोग अथवा पद का अर्थ से सम्बन्ध समाज सापेक्ष्य होता है। भाषा के शब्द-संयोग तथा भाव-परम्परायें समाज से जुड़कर चलती हैं। मुक्तिबोध ने भी काव्य-भाषा के प्रयोग में बदलती परिस्थितियों के अनुरूप बदलते हुए शब्द-संयोग एवं अर्थानुषंगों के संघर्ष को झेला है। उनकी पूर्ववर्ती एवं परवर्ती काव्य-भाषा में पर्याप्त अन्तर देखा जाता है। पूर्ववर्ती भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त परम्परा की अगली कड़ी है। पुराने शब्दों में नया अर्थ भरने की प्रवृत्ति तथा आवश्यकता पड़ने पर नये शब्दों का निर्माण काव्य-भाषा की अधुनातन प्रणाली है जिसमें मुक्तिबोध अग्रगण्य है। काव्य-भाषा के इस रूप में परम्परा से ग्रहीत संस्कृत निष्ठ शब्दावली के साथ-साथ अंग्रेजी, उर्दू, अरबी-फारसी तथा देशज शब्दों का प्रयोग रूढ़िबद्धता तथा छायावादी संस्कार से मुक्ति का प्रयास है। मुक्तिबोध ने भाषा के परम्परित प्रयोग के सम्बन्ध में कहा है कि—"पुरानी परम्परा बिल्कुल छूटती नहीं है, पर वह परम्परा है मेरी ही और उसका प्रसार अवश्य होना चाहिए।"[2] तारसप्तक तथा उससे पूर्व की कविताओं में संस्कृत-युक्त शब्दावली अधिक मिलती है—

> आत्मवत् हो जाय / ऐसी जिस मनस्वी की मनीषा /
> वह हमारा मित्र है / माता, पिता, पत्नी सुहृद् पीछे
> रहे हैं छूट / उन सबके अकेले अग्र में जो चल रहा है /
> ज्वलत् तारक सा /[3]

उपर्युक्त अंश में आत्मवत्, मनीषा, सुहृद्, अग्र ज्वलत् आदि तत्सम शब्द मुक्तिबोध के आरम्भिक भाषागत संस्कार के सूचक हैं। 'आदर्शवादी रोमान' के साथ ही काव्य-भाषा का भी आदर्श रूप उनके किशोर कवि ने अपनाया है। इसी प्रकार 'अशक्त' शीर्षक गीत में 'शब्द-प्रयोग' की आवश्यकता के साथ-साथ काव्य-भाषा का आरम्भिक रूप दर्शनीय है—

> जब कि शंकाकुल तृषित मन खोजता
> बाहरी मरु में अमल जल-स्रोत है,

---

१. नयी कविता का आत्मसंघर्ष—मुक्तिबोध - पृ० ४।

२. तारसप्तक—(वक्तव्य)—मुक्तिबोध—पृ० सं० ४३।

३. तारसप्तक—मुक्तिबोध—(सं० द्वितीय)—पृ० ४७।

क्यों न विद्रोही बनें ये प्राण जो
सतत् अन्वेषी सदा प्रद्योत हैं।[1]

सतत्-अन्वेषी रचनाकार विद्रोही बनकर ज्ञान की गठरी लिये हुए है जिससे उसकी कमर झुकती जा रही है. भूख प्यास तथा थकान तीव्र होती जा रही है, किन्तु उद्दामप्राण द्वारा अर्थ की खोज बराबर चल रही है। यही खोज नवीन शब्दों के प्रयोग की प्रेरणा है।

'विसद्', तृषित', 'संकाकुल' "प्रद्योत', 'तत्त्व', 'चिन्ता', 'बृहद्-अश्वत्थ' आदि शब्द शुद्ध एवं परिमार्जित भाषा के परिचायक हैं। इन भाषायी प्रयोगों से रचनाकार की मन.स्थिति के बोध के साथ-साथ 'मुक्तिबोध की स्थानान्तरगामी प्रवृत्ति' के पूर्व की स्थिति से साक्षात्कार होता है। 'मेरे अन्तर' कविता में 'तिमिर' आलोक, सरिता, पर्वत, 'वन्य', 'प्रमत्त', 'स्नेहवान', 'पुर्णगद-दु:ख-हर्ष', 'ज्वाल', 'विद्ध' आदि विशेष्य विशेषणयुक्त प्रयोग तथा तत्समयुक्त भाषा देखी जाती है।

इसी अमर धारा के आगे बहने के हित यह सब नश्वर
सृजनशील जीवन के स्वर में गाओ मरणगीत तुम सुन्दर
तुम कवि हो, यह फैल चले मृदुगीत निबल मानव के घर-घर
ज्योतित हों मुख नव आशा से, जीवन की गति, जीवन का स्वर[2]

'सृजनशील जीवन की' जीवन्त भाषा का प्रयोग मुक्तिबोध की अपनी विशेष शैली है। 'रूढ़िबद्धता' एवं 'बाजारू अभिव्यक्ति' से बचाव के साथ-साथ अपने को 'महाकवि' रूप में प्रस्तुत करना उनकी सफलता है। महाकवि से तात्पर्य है—'भाषा का निर्माता।[3] जैसा कि डॉ० जगदीश गुप्त ने कहा है—मुक्तिबोध महाकवि हैं क्योंकि उन्होंने अभिव्यक्ति के अनुरूप रूपकों प्रतीकों और बिम्बों की परिकल्पना करते हुए पर्याप्त सशक्त भाषा गढ़ी है। जितने अंशों में उनकी अभिव्यक्ति सफल हुई है उतने अंशों में वे महान कहलाने के हकदार हैं।[4] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने निराला और मुक्तिबोध की तुलना करते हुए मुक्तिबोध की काव्य-भाषा को 'चारुता रहित' एवं 'ऊबड़-खाबड़' कहा है तथा सुनिश्चित प्रतिमान की सृष्टि की असफलता का भी आरोप लगाया है।[5] डॉ० गुप्त के अनुसार काव्य-भाषा की दृष्टि से मुक्तिबोध महाकवि हैं

---

१. तारसप्तक—वही — पृ० ५३।
२. तारसप्तक—(मृत्यु और कवि)—मुक्तिबोध—पृ० ५६।
३. 'जो कवि भाषा का निर्माण करता है, विकास करता है वह निःसन्देह महाकवि है।' [एक साहित्यिक की डायरी—पृ० सं० ८]
४. नयी कविता—स्वरूप और समस्यायें—डॉ० जगदीश गुप्त—पृ० सं० ३०२।
५. नयी कविता—नन्ददुलारे वाजपेयी—पृ० ५३-५४।

किन्तु वाजपेयी जी की दृष्टि में 'ऊबड़-खाबड़' भाषा के प्रयोक्ता। डॉ० गुप्त ने भी 'जितने अंशों' जैसे कथन द्वारा अपनी ही स्थापना का खण्डन कर दिया जबकि यह मुक्तिबोध की असमर्थता नहीं अपितु 'कण्डीसण्ड रिप्लेक्समेंन्ट' से बचने की स्थिति है। मुक्तिबोध से सधे कलाकार की अपेक्षा करना व्यर्थ है क्योंकि 'आक्रोशी पीठिका' की रचना करने वाले वे निराला की तरह संवेदनों को ऊहापोह के कारण परिपक्व नहीं कर सके हैं। व्यक्तिगत जीवन के तनावों एवं अभावों से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने भाषागत रूढ़ियों और आदर्शों की सीमा का उल्लंघन किया है। स्वदेश और विदेश के साहित्य, दर्शन और मनोविज्ञान का व्यापक अध्ययन तथा मार्क्सवाद के प्रभाव के कारण मुक्तिबोध 'निचुड़े हुए रक्त की तलाश करते हैं। इसी तलाश में वे परिपाटीग्रस्तता का परित्याग भी करते हैं किन्तु आचार्य वाजपेयी इसे 'ऊबड़-खाबड़' प्रयोग कहते हैं। मठ और गढ़ के रूढ़ि दुर्ग को तोड़कर अभिव्यंजना के लिए मुक्तिबोध ने 'अभिव्यक्ति का खतरा' उठाया है। मानवतावाद एवं मार्क्सवाद के साथ-साथ अस्तित्ववाद एवं अतियथार्थवाद की वादग्रस्तता से उबर कर वे स्वनिर्मित काव्य-भाषा मुहावरों तथा खरीखोटी भंगिमाओं का प्रयोग करते हैं। वाजपेयी जी ने पुनः कहा है कि "यह भी सही है कि मुक्तिबोध की भाषा में बोल-चाल के मुहावरे, अजनबी समास-बद्ध संस्कृत के अप्रचलित शब्द आये हैं जिनके पढ़ने में जबान लड़खड़ा जाती है।" परन्तु इस रूप में भी बनावट से दूर, आदर्श से पृथक्, छायावादी संस्कारों के विपरीत खरीखोटी भंगिमाओं की भाषा मुक्तिबोध की अपनी है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी को छायावादी संस्कार एवं काव्य-सौन्दर्य इतना प्रिय है कि वे उसी निकष पर मुक्तिबोध की कविता को कसना चाहते हैं। डॉ० नामवर सिंह ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि 'उनमें एक रीतिबद्ध भाषा की चमक, लालित्य, प्रसन्नता आदि गुण भले ही न हों, किन्तु वह प्राणशक्ति असंदिग्ध है जो सृजनशीलता की अनिवार्य शर्त है। × × × प्राणवान काव्य-भाषा उनके प्राणवान काव्य की प्रतिध्वनि है।'[१]

मुक्तिबोध की काव्य-भाषा में प्रयोगधर्मिता की पूर्ण सजगता तथा अभिव्यक्ति के हर सम्भव प्रयास की क्षमता विद्यमान है। सर्जना का नवीन तेवर, यथार्थयुक्त सीधे-सादे चोट करने वाले सपाट कथन तथा आक्रामक मुद्रा की भंगिमा ने छायावादी रोमानी संवेदना के विपरीत रोजमर्रा की भाषा को काव्य-भाषा बनाने की प्रवृत्ति का रूप लिया है। अंधाधुंध अनुकरण एवं फतवे की शब्दावली से उनके कवि ने अपने को पूर्णतः बचाने का प्रयास किया है। उनकी भाषा उनकी जिन्दगी के अनुरूप खुली हुई किताब के पृष्ठों पर अंकित है। जब जहाँ जैसी आवश्यकता पड़ी मुक्तिबोध

१. कविता के नये प्रतिमान—डॉ० नामवर सिंह—पृ० सं० १०७।

ने अंग्रेजी, हिन्दी अथवा संस्कृत के शब्दों की परवाह किये बिना उसे भाषा का रूप प्रदान किया है। भाषा एवं शिल्प सम्बन्धी रूढ़ियों को तोड़कर मुक्तिबोध ने अपनी अलग पहचान बनायी है।

सर्जना के क्षेत्र में मुक्तिबोध का प्रवेश उस समय हुआ जबकि छायावादी संस्कार लोगों में घर कर चुके थे। इसीलिए उनकी प्रयोगधर्मिता को अवमूल्यन की दृष्टि से देखा गया। वैविध्यमय जीवन का सटीक चित्रण करने के लिए नयी काव्य-भाषा की आवश्यकता थी जिसका प्रयोग निराला ने 'कुकुरमुत्ता' में पहले किया था। मुक्तिबोध ने भी लय-छन्द-विहीन, अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों से युक्त भाषा में जिन्दगी जीने का प्रयास किया है। काव्य-भाषा में आई हुई गद्यात्मकता युगीन परिस्थितियों के कारण है। 'चीख-चिल्लाहट', आर्तवाणी संत्रास, विसंगति एवं विडम्बनाओं को अभिव्यक्ति का स्वर देने में गद्यात्मकता आ ही जाती है। इसकी सफाई रचनाकार स्वयं देता है—"मानसिक प्रतिक्रिया हमारे अन्तर में गद्यभाषा को लेकर उतरती है, कृत्रिम ललित काव्य-भाषा में नहीं। फलतः नयी कविता का पूरा विन्यास, गद्य-भाषा के अधिक निकट है।"[1] मुक्तिबोध ने अन्यत्र कहा है कि—' इसके पूरे संघर्ष में भीतरी व्यक्तित्त्व को खूब चोटें पहुँचती हैं, दिल और दिमाग में तनावों के कारण उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति बहुत ज्यादा खर्च हो जाती है। इस संघर्ष में, उसके हार्दिक स्नेह सम्बन्ध, जिनके बिना वह जी नहीं सकता, काफी तोड़े-मरोड़े गये होते हैं।"[2] यही तोड़-मरोड़, कवि को टूटे बिम्ब, खण्डित प्रतिमान एवं बिखराव की भाषा का प्रयोग करने को विवश करती है। इस स्थिति में अभिव्यक्ति की क्षमता महत्त्वपूर्ण होती है न कि परिष्कार-युक्त शब्दावली और लयात्मकता।

अनगिनत काली-काली हायफन डैशों की लीकें /
बाहर निकल पड़ी / अन्दर घुस पड़ीं भयभीत /
सब ओर बिखराव / × × × हृदय दबोचता /
यद्यपि आँगन में नलजोर मारता / जल खँखारता /[3]

'हायफन—डैश' आदि गणित में प्रयुक्त होने वाले संकेत चिह्नों के लिए अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करके मुक्तिबोध ने विशाल सर्जना-क्षेत्र का परिचय कराया है। गद्यात्मक परिणति और सपाट कथन की सम्मिलित प्रवृत्ति समीक्ष्य काव्य-भाषा पर असफलता का आरोप चरितार्थ करती है। आवेशपूर्ण कथन के समय मुक्तिबोध अंग्रेजी का पूरा वाक्य कविता में बोल जाते हैं—

---

१. नयी कविता का आत्मसंघर्ष—मुक्तिबोध—पृ० सं० ११।
२. ,, ,, ,, ,, —पृ० सं० ५०।
३. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० स० २८१।

स्क्रीनिंग करो मिस्टर गुप्ता /
क्रास एक्जामिन हिम थारोली—
× × × छिपे हुए प्रिंटिंग प्रेस को खोजो /
× × ×
इस संस्था के सेक्रेटरी को खोज निकालो—[१]

इस भंगिमा को 'नाटकीयता' के रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है। डॉ० नामवर सिंह ने नयी कविता की भाषा में प्रगीतात्मकता के अतिरिक्त नाटकीयता को सर्जना की सफलता का आधार कहा है जो अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' तथा मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' जैसी लम्बी कविताओं में है। "संदर्भ से अलग इस प्रकार की जो पंक्तियाँ सीधी सपाट और गद्यात्मक लगती है, उन्हें यदि सन्दर्भ से युक्त रूप में देखें तो उनकी काव्यात्मक-शक्ति का पता चलता है। वस्तुतः 'अंधेरे में' कविता की अर्थवत्ता उसके स्वप्न-चित्रमय वातावरण में है जो अपनी नाटकीय संरचना के द्वारा सीधे-सादे वाक्यों को भी काव्यात्मक गूँज से अनुरणित कर देता है।"[२] ऐसी स्थिति में मार्च, प्रोसेशन, ड्रेस, आर्टीलरी, बटालियन जैसे अंग्रेजी के शब्द भाषा की प्रभाव क्षमता में वृद्धि करते हैं।

मुक्तिबोध के रचनाकार की नाटकीय मुद्रा काव्य-भाषा के स्तर पर विशेष प्रभावकारी है। उनका 'तुम', 'शेव्रलेट' और 'डाज' के नीचे लेटकर तेलिया लिबास में पुर्जे सुधारता है। रेफ्रीजियेटर, विटैमिन, रेडियोग्राम की दुनियाँ से दूर मजदूर की अपनी अलग दुनियाँ तथा उसके व्यवसाय की अलग भाषा है। कविता में जब इन लघुमानवों की जिन्दगी का चित्र खींचा जाता है तो उसी के अनुरूप काव्य-भाषा का प्रयोग होता है।

इस दिल के भरे रिवाल्वर में / बेचैनी जोर मारती है, इसमें क्या शक /
क्यों ताकतवर उस मशीन की पिस्टन सी 'धक्-धक्
उद्दाम वेग से चला रही / ये लौह चक्र
मन-प्राण-बुद्धि के विक्षोभी / यह स्याह स्टीम रोलर जीवन का /[३]
+ + +
रेफ्रीजरेटरों, विटैमिनों, रेडियोग्रामों के बाहर की
गतियों की दुनियाँ में /
+ + +

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—(अँधेरे में)—मुक्तिबोध
२. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० सं० १०१।
३. ,, ,, ,, ,, पृ० सं० १०५।

मैं कनफटा हूँ हेठा हूँ
शेवरलेट डाज के नीचे मैं लेटा हूँ—१

रिवाल्वर, स्टीम रोलर आदि यंत्रों के अंग्रेजी नामों के अतिरिक्त विभिन्न मोटरकारों के नाम द्वारा मुक्तिबोध मजदूरों की जिन्दगी से निकट का सम्बन्ध स्थापित करते हैं। ऐसी काव्य-भाषा जिन्दगी की भाषा है।[२] मजदूरों की जिन्दगी के चित्रण के लिए उनके बीच प्रयुक्त होने वाले शब्द भाषा को जीवन की यथार्थता से जोड़ते हैं।

भयानक इम्तहानों के तजुर्बों से /
भरे जो दर्द वाले, ज्ञान वाले /
जी—मिलाते मन मिलाते दिल /
जगत के भव्य भावोद्दण्ड तूफानी
सुरों से सुर मिला गाते /
किन्हीं दुर्घट विकट घटनाक्रमों का एक /
पूरा चित्र स्वर संगीत प्रस्तुत कर—
व उनके ऊष्म अर्थों के धुँधलके में मगन होकर
नये आलाप लेते हैं—३

इम्तहान, 'तजुर्बा', 'दर्द', 'दिल' आदि उर्दू शब्दों के साथ ही भव्य-भावोद्दण्ड, दुर्घट-विघट-घटना जैसी अलंकृत शब्दावली में 'ध्वनि-बिम्बवती-पदक्रम-शैली' की कविता का परिचय मिलता है। तजुर्बेकार, साजिन्दे, रफ्तार, जिरह-बख्तर, जैसे अरबी, फारसी के उधार शब्द यथार्थ की भाषा की पहचान बनते हैं। 'ढपा-ढप', थपा-थप', 'भड़ा-भड़', 'खड़ा-खड़' जैसे नाद के आधार पर अर्थवत्ता की अभिव्यक्ति के शब्द भी उनकी कविता में आते हैं। 'तुम-तुम-तुम'—'तुम-तुम' 'तोम-तम्बूरे' आदि अनुरणन के शब्द मुक्तिबोध के आत्म-संघर्ष को उजागर करते हैं।

देशज शब्दों के प्रयोग तथा अपभ्रंश शब्दों के द्वारा मुक्तिबोध ने भाषा को गतिशील रूप दिया है। प्रचलित मुहावरे तथा विशेष्य विशेषणयुक्त शब्दावली द्वारा काव्य-भाषा का रूप खिचड़ी हो गया है। 'तारसप्तक' के प्रकाशन काल तक तत्सम शब्दों के साथ आई हुई अपभ्रंश शब्दावली उनकी व्यापक भाषा-दृष्टि का परिणाम

१. शून्यों से घिरी हुई पीड़ा ही सत्य है
शेष सब अवास्तव अयथार्थ मिथ्या है भ्रम है—
(चाँद का मुँह टेढ़ा है—पृ० १०५)

२. कविता के नये प्रतिमान—डॉ० नामवर सिंह—द्वितीय सं०—पृ० १४४।

३. चकमक की चिनगारियाँ—(चाँ० मुँ० टे०) मुक्तिबोध—पृ० १५३।

है। 'दरिद्दर', 'तलाव', 'समुन्दर', 'खोखा', 'स्फुरणा' आदि शब्द उनकी तारसप्तक की कविताओं में आये हैं। इसी प्रकार जिन्न, सियाह, च्यूँटी, पसरी, काँवड़े, पियाला, कुट्ठर, धूसर, पक्षिणी, गिरस्तिन, मोरी, कन्दील, ढेबरी, टेकड़ी आदि शब्दों के प्रयोग स्थान-स्थान पर परवर्ती कविता में मिलते हैं। काव्य-भाषा को जीवन की यथार्थता से जोड़ने के लिए उसे देशज प्रयोगों से युक्त करना उचित है किन्तु जितनी नवीन शब्दावली मुक्तिबोध ने अपनायी है वह कठिनाई का कारण बन जाती है।

लोक-जीवन के प्रचलित मुहावरे भी मुक्तिबोध की शैली बनकर परवर्ती रचनाकारों के लिए आदर्श बन गये हैं। चिन्ता की काली कुठरी, (काजर की कोठरी) 'अपने ही घर में मैं इस तरह नवीन', 'अनचुकाये कर्ज की खतरनाक नालिस', 'कमजोर सीने पर पहाड़ का बोझ', 'झुके काँधे पर भारी काँवड़े', 'काठ के पैर ठूँठ सा तना', 'तुम दबे-(पाँव) आ जाओ चोरी-चोरी', 'न जाने किस मास्टर की डाँट पड़ी' आदि लोकक्तियाँ जिन्दगी के प्रचलित कथन हैं। कुछ शब्दों और मुहावरों का निर्माण मुक्तिबोध ने स्वयं भी किया है जो प्रेपणीयता की दृष्टि से मालवी के निकट है। मध्य भारत की लोक-भाषा के प्रभाव के अतिरिक्त स्वनिर्मित विशेष्य विशेषण की शैली मुक्तिबोध की अपनी है। निकलती आम्रतरु मधुमंजरी की गंध, प्राण आसन्दी, हवा के झौंर, लीचड़ टायर, अधटूटी मोटर आदि शब्द एवं अर्थानुषंगों के अनुसार प्रयुक्त शब्द-समूह विशेष उल्लेखनीय है।

भुनभुनाता यह हृदय, चिन्ता गुनगुनाती असगुनी, तड़ातड़ तेज दे रगड़ा, सीती फटे कपड़े, दिल रफू करती, ललक कर ले लिया हमने आदि शब्द-समूहों के प्रयोग भी मुक्तिबोध ने किये हैं। लोग-बाग, सरगना, मारो गोली, दागोस्साले को, छाती पीटता हुआ, कसकता, रिआयत, मेरी मुरव्वत, हवाले, थपियाया, तहलका, बवाल, फिरकी आदि प्रयोग काव्य-भाषा को गतिशीलता प्रदान करते हैं। कन्हेर, बिलम, घपला, भभकता आदि शब्दों द्वारा मुक्तिबोध ने भाषा को जीवन्त बनाने का प्रयास किया है।

युद्ध, दहशत, भय, संत्रास तथा रोमांचकारी वारदातों की अभिव्यक्ति को सार्थक एवं प्रभावकारी बनाने के लिए रचनाकार द्वारा किये गये भाषायी प्रयोग पाठक को तदाकारिता प्रदान करते हैं। 'इन खौफनाक वारदातों' की अभिव्यक्ति के खतरे में गोपनीयता भंग करने की मनःस्थिति भाषा को मनोभावों से जोड़ती चलती है। आत्मसंघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व, आशंका तथा अवसादों के घनीभूत तत्त्व भाषा में उबल पड़ते हैं—

फिरंगी पुर्तगाली या कि ओलन्देज /
या अंग्रेज / दरियायी लुटेरों ने जिए औ एक /

तूफानी समुन्दर के गरजते मध्य में उठकर
पुराने रोशनी घर की अँधेरी एक मीनार /[1]

समुद्री यात्रा की लूट-पाट, तूफान तथा हवाओं की गर्जना सहकर भी अस्तित्व की रक्षा करनेवाला रचनाकार का 'तुम' अद्भुत प्रवाह एवं गतिशीलता युक्त कथन में अपनी बात कह डालता है। वर्ण्य-विषय का जितना तथ्यात्मक चित्र मुक्तिबोध अपनी भाषा के माध्यम से खींचते हैं समकालीन कविता का कोई भी रचनाकार वैसा नहीं खींच सका है।

भाषा के माध्यम से मुक्तिबोध की खोज उस चेहरे की है जो इतिहास के मलबे के नीचे दब गया है मगर मरा नहीं है। बहुत नीचे की सतह तक सुरंग के रास्ते से पहुँचने की जासूसी की तरह 'लोक जीवन' को कविता में उतारने के लिए मुक्तिबोध सन्नद्ध हैं।

—कोशिश करो / कोशिश करो / कोशिश करो /
जीने की''' '''जमीन में गड़कर भी /[2]

'एक साहित्यिक की डायरी' में इतिहास के मलबे के नीचे झाँकते सत्य की खोज की ओर मुक्तिबोध ने संकेत भी किया है। 'उन्होंने छायावादी सीमायें लाँघकर प्रगतिवाद से मार्क्सीय दर्शन ले, प्रयोगवाद के अधिकांश हथियार सँभाल और उसकी स्वतंत्रता महसूस कर स्वतंत्र कवि के रूप में संकीर्णवादों और पार्टियों से ऊपर उठकर निराला की खुली और सुथरी मानवतावादी परम्परा को बहुत आगे बढ़ाया /'[3] 'सुथरी', 'खुली', 'मानवतावादी' परम्परा के लिए खुली काव्य भाषा का प्रयोग निराला ने किया था। 'कुकुरमुत्ता' का ध्यान आते ही मुक्तिबोध भी कह उठते हैं—

अहंभाव उत्तुंग हुआ है तेरे मन में /
जैसे घूरे पर उट्ठा है /
धृष्ट—कुकुरमुत्ता उन्मत्त—[4]

'यह तेरी लघु विजय और लघु हार' द्वारा कवि पहले ही से अपनी आक्रामक प्रवृत्ति और विद्रोह का स्वर भाषा के स्तर पर मुखर करता है। मुक्तिबोध की काव्य-भाषा की असफलता पर उँगली उठानेवाले आचार्य वाजपेयी ने भी 'गद्यात्मक-कथन' को नये

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है— मुक्तिबोध पृ० १४६।
२. चाँद का मुँह टेढ़ा है— (भूमिका) में शमशेर बहादुर सिंह द्वारा उद्धृत।
३. चाँद का मुँह टेढ़ा है— (भूमिका) शमशेर बहादुर सिंह।
४ तार सप्तक—मुक्तिबोध—पृ० ५८।

युग की अर्थवत्ता की अभिव्यक्ति के लिए सार्थक कहा है।[1] भारतीय साहित्य शास्त्र की परम्परा के सहारे गद्यात्मकता को भी वाजपेयी जी ने कथन की भंगिमा के अनुसार कविता की सीमा में स्थान दिया है।

काव्य-भाषा में आई हुई लयहीनता समकालीन युग-बोध और जीवन-मूल्य के निकट है। वैज्ञानिक, तकनीकी तथा तार्किक ज्ञान-विज्ञान को जब कविता में स्थान दिया जायेगा तो निश्चय ही 'वाह्य का आभ्यंतरीकृत रूप' 'कवि का आभ्यंतर' बिखरे-खरे-सपाट चित्रों में प्रकट होगा और उसकी भाषा भी सपाट होगी। एक व्यापक भावनात्मक परिष्करण की प्रवृत्ति से परिचालित काव्य-भाषा गद्यात्मक होगी।'

अनगढ़ शब्दों के प्रयोग की काव्य-भाषा को मुक्तिबोध ने 'वास्तविक सौन्दर्यानुभूति' की प्रक्रिया कहा है। 'वास्तविक सौन्दर्यानुभूति व्यक्ति सत्ता का परिहार करती हुई गतिमान धारा बनकर अपने विविध ज्योतिष्मान तत्त्वों को अनवरत रूप से उद्घाटित करती जाती है, उस समय मनुष्य का सारा व्यक्तित्त्व विद्युन्मय होकर उसमे उस गतिमान धारा का अंग बन जाता है।[2] सैद्धान्तिक स्तर पर काव्य-व्यक्तित्व के बिलीनीकरण की प्रक्रिया को भले ही उन्होंने आदर्श रूप में स्वीकारा हो किन्तु कविता में वे इसे उतारने में असमर्थ रहे। यही कारण है कि उन्होंने कहानी तथा उपन्यास लिखने का भी प्रयास किया। अपनी अभिव्यक्ति की असमर्थता तथा 'न कहे जा सकने वाले अनुभवों' के सत्य को अपने व्यक्तित्त्व के गहरे अकेलेपन से निकाल कर कविता मे प्रकट न कर पाने की विवशता वे स्वयं स्वीकार करते हैं।[3] किशोर मन पर टाल्सटाय के प्रभाव तथा मराठी उपन्यासों के मानवतावादी दृष्टिकोण ने उनमें कहानी और उपन्यास सदृश गद्यात्मक विधाओं को लिखने की प्रेरणा दी। जीवन की दिशाओं मे चलना, अपनाना तथा त्यागना न केवल काव्य-भाषा क्षेत्र में अपितु विधागत परिवर्तन में भी देखा जा सकता है। मण्डी गुजालपुर में 'पत्रकारिता' की ओर अग्रसर होने के परिणाम स्वरूप कथातत्त्व की ओर झुकाव तथा अखबारी भाषा की प्रयोग प्रणाली कविता के रूप में आयी है। कवि की आक्रामक प्रवृत्ति तथा सर्जना के माध्यम से भावों के आवेग को व्यक्त करते समय स्वाभाविक रूप से काव्य-भाषा असामान्य एवं असंयत होती है। रघुवीर सहाय, राजकमल चौधरी, धूमिल आदि कवियों ने भी मुक्तिबोध की काव्य-भाषा से प्रभाव ग्रहण किया है।

---

१. नई कविता—नन्द दुलारे वाजपेयी — पृ० सं० ८१।
२. नयी कविता का आत्म संघर्ष मुक्तिबोध — पृ० सं० १७२)।
३. (क) तार सप्तक — (वक्तव्य) मुक्तिबोध पृ० सं० ४३।
(ख) नई कविता — नन्ददुलारे वाजपेयी पृ० ५३.५४।

सामान्य-भाषा एवं काव्य-भाषा का मुख्य अन्तर लयान्विति एवं भावाधारा की विकास क्षमता से सम्बन्धित है। आलोच्य काव्य-भाषा में लयान्विति का अभाव निर्विवाद है किन्तु अर्थगत लय एवं नाटकीयता आज की काव्य-भाषा की नूतन प्रवृत्ति है जिससे मुक्त कविता को सफल कहा जा सकता है। गिरिजाकुमार माथुर एवं जगदीश गुप्त ने छन्दात्मकता-संगीत तत्त्व को कविता के लिये अनावश्यक कहते हुए परोक्षतः सीधे सपाट कथन को काव्य कहा है। डॉ० रमाशंकर तिवारी, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी तथा शिव प्रसाद सिंह ने नयी कविता की इस प्रवृत्ति की निन्दा की है जिसका सीधा सम्बन्ध मुक्तिबोध रघुवीर सहाय एवं लक्ष्मीकान्त वर्मा की काव्य-भाषा से है। अकुलाहट, छटपटाहट, अधैर्य की मनःस्थिति में आज का रचनाकार तीखे एवं प्रभावकारी ढंग से अपनी बात कहना चाहता है जिसमें व्यंग्योक्ति विसंगति एवं विडम्बना की स्थिति विद्यमान रहती है।[1] मुक्तिबोध की काव्य-भाषा में भी विसंगति का अद्भुत-स्वनाद देखा जाता है किन्तु पाठक की साझेदारी उस संदर्भ में वैसी नहीं रहती। कवि का 'आत्मसाक्षात्कार' जब तक पाठक का भी 'आत्म साक्षात्कार' न हो जाय तब तक काव्य-भाषा सफल नहीं कही जा सकती। 'सीमित शिक्षा और संस्कार' के विपरीत काव्य सर्जना के परिवेश को व्यापक मानने वाले मुक्तिबोध की काव्य-भाषा का रूप एवं परिवेश क्यों न व्यापक हो।

मुक्तिबोध की काव्य-भाषा एवं सर्जना के क्षेत्र पर विचार करते समय कुछ ऐसे बिन्दु भी सामने आते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध नवीन भाषागत प्रयोगों से है। नयी कविता की नयी भाषा व्यंजना के प्रति निष्पक्ष दृष्टि से विचार करते हुए डॉ० देवराज ने कहा है कि "अपनी विशिष्ट जीवन चेतना को प्रकट करने के लिए इधर के कवियों ने कुछ नयी चीजें अपनायी हैं। छायावाद की अपेक्षा में— भाषा यानी पदावली मुहावरे और अन्दाज की नवीनता बोलचाल की भाषा से लय या रिद्म (Rydhm, लेने वाले अथवा उस रिद्म का अनुकरण करने वाले नये छंद व संगीतविधान और नयी चित्र सामग्री तथा अलंकार की सब चीजें उपकरण हैं।"[2]

डॉ० देवराज का आग्रह 'नवद्ध-जीवन-स्पन्दन' एवं नयी कविता के नये प्रयोगों की सफलता की ओर है। प्रौढ़ एवं स्वस्थ विचारों के लेखक ने नयी कविता के प्रति अतिरिक्त आग्रह दिखाकर नवीनताओं का स्वागत किया एवं सराहा है किन्तु काव्य-भाषा के उपकरणों में बदलाव से हम इतना नहीं बदल सके हैं कि सारा 'नया' ग्राह्य ही है। काव्य-भाषा की सफलता 'वाद' का समर्थक अथवा आन्दोलन का पक्ष-

१. सचमुच मुक्तिबोध के काव्य में व्यंग्य का स्वरूप हाहाकार सेमिलता है—नन्ददुलारेवाजपेयी—नई कविता / ५२।

२. नयी कविता—(अंक ५-६)—डॉ० देवराज की परिचर्चा, पृ० २५।

धर होकर नहीं अपितु निष्पक्ष दृष्टि से स्वीकारी अथवा नकारी जा सकती है। यदि आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी एक छोर पर हैं तो डॉ० देवराज, डॉ० जगदीश गुप्त, डॉ० नामवर सिंह दूसरी सुरक्षा पंक्ति निर्मित करने में सन्नद्ध देखे जाते हैं। सम-सामयिक जीवन को विशिष्ट मानने वाले नयी कविता के समीक्षकों का यह भी दावा है कि मुक्तिबोध की काव्य-भाषा अभिव्यक्ति के लिए पूर्णतः सक्षम है। कविता की 'नयी' प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करने में मुक्तिबोध सफल है। डॉ० नामवर सिंह ने मुक्तिबोध को कविता के आधार पर समकालीन काव्य प्रवृत्तियों की व्याख्या करते हुए अनुभूति की जटिलता और तनाव, ईमानदारी और प्रामाणिक अभूति, परिवेश और मूल्य आदि प्रतिमानों के आधार पर समीक्ष्य काव्य-भाषा को सार्थक कहा है। डॉ० अशोक वाजपेयी ने सपाटबयानी की दिशा में समकालीन कविता की उपलब्धियों की सराहना की है। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी भी संवेदना की दृष्टि से काव्य-भाषा और भाषिक-संरचना को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। मुक्तिबोध की कविता का रूप-विधान तथा शिल्प उनकी भाषा के आधार पर व्याख्यायित करते समय उपर्युक्त सवालों पर विचार करना समीचीन होगा।

काव्य-भाषा में आगत विद्रूपता, बिखराव, बिम्बों की माला, अन्दाज की नवीनता तथा बोलचाल की भाषा के अनुरूप लयात्मकता का सम्बन्ध रूप बोध से है। इसके साथ ही इतिहास-बोध का प्रश्न भी जुड़ता है। मुक्तिबोध की कविता का जो रूप हमारे समक्ष है उसमें वर्तमान जीवन का यथार्थ चित्र है। जीवन और जगत के अनुभूत सत्य को कविता का सत्य बनाने में सर्जक के सम्मुख उपस्थित संकट एवं संघर्ष की प्रक्रिया का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। 'जीवन के इस बहुत बड़े कार्निवाल में कवि उस बहुरूपिये की तरह है जो हजारों रूपों में लोगों के सामने आता है, जिसका हर मनोरंजक रूप किसी न किसी सतह पर जीवन की एक अनुभूत व्याख्या है और जिसके हर रूप के पीछे उसका एक अपना गम्भीर और असली व्यक्तित्व होता है जो इस विविधता के बुनियादी खेल को समझता है।"[१] 'मनोरंजक' शब्द भले ही मुक्तिबोध के काव्य के लिए अटपटा हो किन्तु 'गम्भीर और असली व्यक्तित्व' की अस्मिता मुक्तिबोध की काव्य-भाषा में प्रासंगिक है। संदर्भित भाषा की रूपात्मक विविधता तथा कविताओं के कथ्य के अनुसार बदलते हुए अप्रस्तुत विधान, बिम्ब एवं प्रतीक पाठक के लिए तभी ग्राह्य हो सकते हैं जब 'बुनियादी-खेल' समझ में आ जाय। कविता का 'बुनियादी-खेल' काव्य-भाषा के माध्यम से सम्पन्न हुआ है। कवि के शब्दों में—

> विराट झूठ के अनन्त छन्द सी
> भयावनी अशान्त पीत धुन्ध सी

---

१. तीसरा सप्तक —कुँवर नारायण — (वक्तव्य)

सदा अगेय / गोपनीय द्वन्द्व सी असंग जो अमूर्त स्वप्न-लालसा
प्रवेग में उठे सुतीक्ष्ण बाण पर
अलक्ष्य भार सी वृथा / जगा रही विरूप चित्र हार का
सधे हुए निजत्व की अभद्र रौद्र हार-सी /[१]

पुकारती हुई जगत की पुकार ने अगेय गोपनीय झलमलाती हुई स्वप्न की विसंगति को कविता में उतारने के लिए विवश किया है। जीवनानुभूति की गम्भीर भूमि' पर विद्यमान वास्तविकता को कल वास्तव बनाने के लिए कवि 'एक' फैन्टेसी का प्रयोग करता है किन्तु 'कल' तथा 'वर्षों' तक जब वह वास्तविकता नहीं दिखाई पड़ती तो कवि खूंखार, सिनिक, संशयवादी होकर अपनी-भाषा में बागी होने की घोषणा करता है—

''खूंखार, सिनिक संशयवादी
शायद मैं कहीं न हो जाऊँ
इसलिए, बुद्धि के हाथों पैरों की बेड़ी
जंजीरें खनकाकर तोड़ीं।''[२]

विद्रोही रचनाकार का आलाप असंगत एवं चीख-चिल्लाहट से युक्त है जिसमे कलात्मकता का छायावादी सौन्दर्य भले ही न हो किन्तु आम आदमी की समस्या भाषा के रूप में ध्वनित होती है। विचारों की वेदना एक सीमा तक दिल रफू करने का प्रयास करती है किन्तु असीम होने पर 'विश्व-चेतस्' अग्नि से जुड़कर ऊष्मा ग्रहण करती है जो 'छटपटाहट' की भाषा होती है आनन्द की नहीं।

मुक्तिबोध की काव्य-भाषा अभिव्यक्ति की ईमानदारी तथा सपाटबयानी से युक्त है। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि "जिस मात्रा में जो भावना या विचार उठा है, उसको उसी मात्रा में प्रस्तुत करना ईमानदारी है[३] किन्तु 'वस्तु-तत्व' के प्रति सही-सही मानसिक प्रतिक्रिया का होना भी आवश्यक है। सैद्धान्तिक दृष्टि से अभिव्यक्ति की ईमानदारी के साथ व्यक्तिगत ईमानदारी की जो विवेचना मुक्तिबोध ने की है, उनकी भाषा में है भी किन्तु नितान्त 'वस्तुनिष्ठता' के आधार पर काव्य-भाषा का मूल्यांकन कोरी यांत्रिक प्रक्रिया सदृश है जबकि पहले ही मनःस्थिति के अनुसार कथन की भंगिमा में परिवर्तन का उल्लेख किया जा चुका है। इसी क्रम में रचनाकार द्वारा किये जाने वाले 'फ्राड' का भी संकेत उन्होंने किया है जो कला के क्षेत्र में प्रयत्न साध्य होता है। उनकी कविताओं में 'व्यक्तिगत ईमानदारी' तथा

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—पृ० सं० ६६।
२. ,, ,, ,, ,, पृ० सं० ६८।
३. एक साहित्यिक की डायरी—मुक्तिबोध

प्रयत्न साध्य कलात्मकता विभिन्न स्थलों पर दर्शनीय है। जहाँ भी उन्हें जैसा कहने का अवसर मिला है वैसा कहा है, आवश्यकतानुसार सजाया और सँवारा भी है किन्तु पूर्णकलात्मकता की अभिव्यंजना में वे असफलता एवं अपूर्णता का बराबर अनुभव करते रहे हैं इसीलिए भाषा का विविध प्रयोग भी करते रहे है। नंगी और बेलौस भाषा के कारण कहीं-कहीं कविता 'अखबारी' बन गयी है जिसे न तो शास्त्रीय दृष्टि से सराहा जा सकता है न समीक्षात्मक दृष्टि से, हाँ 'ताजगी' और 'नयापन' भले ही चौंकाता हो।

काव्य-भाषा की समीक्षा से जुड़ा हुआ अन्य सवाल है काव्य में रूप और शिल्प का जिसमें कि काव्य-सौन्दर्य, काव्य का आस्वाद तथा उसका प्रभाव भी सम्मिलित है। अब तक उनकी काव्य-भाषा के जिन रूपों का उल्लेख किया गया उनमें परम्परा के साथ प्रयोगधर्मिता और नये युग की नयी प्रतिमा की छाया देखी जाती है। अँधेरे में चकमक की चिनगारियाँ, स्वप्न कथा, चम्बल घाटी, चाँद का मुँह टेढ़ा है, ब्रह्मराक्षस आदि लम्बी कविताओं के अतिरिक्त भूल-गलती, मुझे कदम-कदम पर, मृत्यु और कवि नूतन अहं, खोल आँखें, मेरे अन्तर, दूर तारा आदि छोटी कविताओं की भाषागत तुलना से रूप सम्बन्धी कतिपय उल्लेखनीय विशेषतायें देखी जाती हैं। काव्य-भाषा की विद्रूपता, बिखराव, गद्यात्मकता और अखबारी 'स्टेटमेन्ट' आदि दुर्बलतायें लम्बी कविताओं में प्रायः देखी जाती हैं क्योंकि इन कविताओं का व्यापक परिवेश और परिप्रेक्ष्य प्रभावान्विति एवं सघनता की सीमा में बँध नहीं पाता। रचनाकार मुक्तिबोध को यह अनुभव भी होता चलता है कि वे जिस क्षेत्र में है वह अपूर्ण है[१] और उसे पूर्णता प्रदान करने का सार्थक प्रयास वे बराबर जारी रखते हैं किन्तु अधिकांश बातें जो 'मन में धरी रह जाती हैं' उनको वाणी देना 'सम्पूर्ण आभ्यंतर का बाह्यीकरण' एक अति कठिन प्रक्रिया है। 'भागता मैं दमतोड़', 'घूम गया कई मोड़', 'ये आँसू', 'ये चिन्ता के क्षण', सदृशकथ्य उनकी गम्भीर 'जिजीविषा' के परिचायक हैं।

अपने ही शब्दों का नाद, प्रवाह और
पाता हूँ अकस्मात्
स्वयं के स्वर में
ओरांग उटांग की बौखलाती हुँकृति ध्वनियाँ
एकाएक भयभीत
पाता हूँ पसीने से सिंचित
अपना यह नग्न मन ![२]

---

१. तारसप्तक—(वक्तव्य) - मुक्तिबोध
२. चाँद का मुँह टेढ़ा है—(दिमागी गुहान्धकार का ओरांग-उटांग)

'नग्न विद्रूप', 'असत्य शक्ति के प्रतिरूप' कथन करीने से सजे हुए संस्कृत''' प्रभामय अध्ययन गृह में बहस करने के लिए घुस आते हैं'। नाटकीयता की स्वगत-कथनशैली के अनुरूप यदि इन अंशों की व्याख्या की जाय तो यह 'स्टेटमेन्ट' सार्थक-अर्थवत्ता से जुड़ता है अन्यथा एक सामान्य कथन में कवि की आपबीती दुःखमय व्यथा-कथा होकर रह जाता है। काव्य-भाषा के नवीन-सौन्दर्य को दृष्टि में रखे बिना यह कथन सम्पूर्णता को नहीं ग्रहण करता। 'जहरीले स्वार्थों की काना-फूसी' का आभास पाकर 'परिवेश का भयानक चित्र खींचने' में भाषा का रूप बिगड़ जाना स्वाभाविक है। सामान्य व्यवहार की भाषा के प्रयोग से सम्बन्धित काव्य-विषयक क्रांति का इलियट का स्वर मुक्तिबोध की भाषा में अनुगूंज ग्रहण करता है।[१] अमूर्त के सम्प्रेषण के लिए काव्य-भाषा के माध्यम से किये गये इस मूर्त-विधान की प्रक्रिया के समझ में आ जाने पर काव्य के आस्वाद के लिए भाषा के पोस्टमार्टम की आवश्यकता नहीं पड़ती। कविता के अंश में आनेवाले खण्डित बिम्ब तथा कई कड़ियों को जोड़कर बनाई गई जंजीर की दृढ़ता भी तभी जानी जा सकती है।

काव्य-भाषा में नवीनता का संश्लेष मुक्तिबोध की अपनी विशेषता है जिससे उन्होंने भाषा में प्राण-शक्ति का संचार किया है। टी० एस० इलियट की भाषा-सम्बन्धी इन स्थापनाओं के निकट लाकर मुक्तिबोध की कविता के साथ अधिक न्याय किया जा सकता है। काव्य-भाषा के विकास के साथ ही अनुभूति के विकास तथा स्तरोन्नयन की बात भी ईलियट ने उठायी है। कविता के सरल और प्रभावोत्पादक बनाने का श्रेय रूप और कला सम्बन्धी अवदानों को है। शब्दों का साहचर्य, ध्वनियों का उचित मात्रा में प्रयोग, अनगढ़ या अतिनवीन शब्दों द्वारा अर्थ की अभिव्यञ्जना, भी काव्य-भाषा के रूप को प्रभावित करती है। भावों का मूर्तन करने में बिम्ब-विधान, प्रतीक योजना तथा मिथकीय अथवा पौराणिक सन्दर्भ भी मुक्तिबोध की भाषा में देखे जाते हैं। 'सर्वतन्त्र' स्वतन्त्र, सत्-चित् बिराट पुरुष' मात्र धोखा न होकर विपरीत परिस्थितियों में 'लक्ष-मुख दानव' तथा अनुकूल परिस्थिति में 'लक्षहस्त देव-सा' प्रतीत होता है। उसकी भाषा का ज्ञान ही मुक्तिबोध की काव्य-भाषा में 'फैन्टेसी' की स्वप्न-कथा के 'वास्तव' का ज्ञान करना है।

काव्य-भाषा में लयात्मकता तथा संगीत तत्त्व का (प्रायः) अभाव भी कविता के बिखराव का कारण बन जाता है। गद्य को भी काव्य मानने की परम्परा तथा

---

१. Every revolution in poetry is a return to common speech. This is revolution which Wordsworth announced in his preface and he was right.—On Poetry and Poets—Page 31

ऋग्वेद के मंत्रों की तुकविहीन पदावली यह प्रमाणित करती है कि हमारी भाषा-सम्बन्धी-नीति बड़ी उदार रही है। मात्र कविता के वस्तुनिष्ठ परीक्षण से ही काव्य-भाषा की समीक्षा अथवा आलोचना करना अब भी पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

काव्य-भाषा के विविध आयाम और उसकी भंगिमाओं के अनुरूप मुक्तिबोध की कविता का मूल्यांकन करने के बाद अन्तिम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सवाल मुक्तिबोध की सफलता का है ? मुक्तिबोध की काव्य-भाषा अन्य कवियों की भाषा की तुलना में सर्वाधिक सशक्त एवं प्राणवान है। उसकी गम्भीरता एवं उलझन कवि के मानस एवं युगीन परिवेश का मिला-जुला प्रभाव है। अनुभूति की सघनता एवं तनाव की शब्दावली निश्चय ही जटिल होगी और उसमें प्रवाह की माँग नहीं की जा सकती। गद्यात्मक कथन 'एवं' विद्रूपताओं की जिस दुर्बलता की चर्चा नयी कविता की समीक्षा में की जाती है उसे नकारा नहीं जा सकता तथा मुक्तिबोध के सर्जक ने भी उसे नगण्य नहीं कहा है। 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' के विचार जानने से यह उद्‌घाटित होता है कि 'मुक्तिबोध' के कवि को उनके चिन्तक ने बहुत कम स्वतन्त्रता दी है फिर भी उन्होंने रचकर, सर्जना करके कविता की संवेदना और रूपात्मक परिणति को नवीन दिशा दी है।

---

८. मुक्तिबोध का काव्य-दर्शन

: एक गहरा फ़लसफ़ा तैयार....

अपूर्त सत्य की क्षुधित
अपूर्ण यत्न की तृषित
अपूर्त जीवनानुभूति—
प्राणभूति की समस्त भग्नता दिखी
कराह भर उठा प्रसार प्राण का अजब
समस्त भग्नता दिखी

+ + +

मुझे दिखी विराट शून्यता अशान्त काँपती

—चाँ० मुँ० टे० ..६७

"किसी भी कृति में लेखक की जीवन-दृष्टि अवश्य प्रकट होती है; भले ही लेखक जाने या न जाने। इसी जीवन-दृष्टि के भीतर व आस-पास जीवन-जगत सम्बन्धी तरह-तरह की धारणायें और विचार होते हैं।"[1] मुक्तिबोध की कविता में ऐसी कितनी धारणायें और विचार जीवन और जगत के द्वन्द्व में सम्मिलित होकर 'एक गहरा फलसफा' बनते हैं जिसके माध्यम से उनके 'दृष्टि विकास के संघर्ष' का परिचय मिलता है। कविता दर्शन न होकर दृष्टि की अभिव्यंजना होती है जिसमें सम्पूर्ण 'अभिव्यंज्य' प्रकट हुआ हो यह आवश्यक नहीं है किन्तु कलात्मक संवेदन' द्वारा प्रकट हुई प्रकाश रश्मि से जीवन दृष्टि का साक्षात्कार किया जा सकता है। नयी कविता का तथ्य कवि की आत्मा का अनुभूत सत्य है जिसमें 'बेचैन निजत्व' को व्यक्त करने की विवशता के अतिरिक्त 'अनुभव दीप्त मन का भव्य अनुशासन' देखा जाता है।

मुक्ति बोध की जीवन दृष्टि एवं काव्य सृष्टि एक मन की दो परिणतियाँ हैं। कविता की दृष्टि को व्याख्यायित करने के लिए उन्होंने अपनी 'डायरी' में जो टिप्पणी दी है उससे चिन्तक, द्रष्टा एवं विचारक मुक्तबोध से परिचय होता है किन्तु जीवन-दर्शन और काव्य-दर्शन का अन्तर कहीं-कहीं उनके कवि को द्रष्टा के सम्मुख असहाय एवं निष्कवच बना देता है। उनका कवि प्रायः दार्शनिक और विचारक की भाषा बोलते हुए आत्मकेन्द्रित हो जाता है किन्तु ऐसे स्थल भी कम नहीं हैं जहाँ कवि का अन्य व्यक्तित्व सजगता से अपने मोर्चे पर संघर्ष करता है। टी० एस० ईलियट के अनुसार 'हू-सफर्स' और 'which क्रियेट्स'[2] के बीच का अन्तराल होना रचना की सफलता है जबकि सृजन की पूर्णता के पूर्व सर्जक का मन 'सफर' पहले करता है और 'क्रियेट' बाद में। मुक्तिबोध की कविता में उनका भोक्तामन ही 'स्थानान्तरगामी प्रवृत्ति' से परिचालित होकर मुखर हुआ है। कलात्मक मूर्त रूप में अमूर्त दृष्टि का साक्षात्कार उनकी विचारधारा से परिचय होने पर ही सम्भव है—

'मैं' केवल 'तुम' पर जीवित हूँ
मेरी साँस किन्तु तेरा तन

---

१. नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र—मुक्तिबोध—द्वितीय सं० १९६६

२. The more perfect the artist, the more completely separate in him will be the man who suffers and the mind which creates. —The Sacred wood—p—1

मेरी आस और तेरा मन
तू है हृदय और मैं लोचन[1]

जिस अपर सत्ता को 'तुम' कहकर कवि (मैं) उससे सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, वह 'विश्वचेतस्' है। मैं —'आत्मचेतस्' उसी के सहारे 'कविता-यात्रा' करता है। 'मैं' और 'तुम' का जुड़ना और टूटना, दूर होकर भी एक दूसरे से मिला होना, कवि की दार्शनिक अवधारणा है। मुक्तिबोध की रचना-प्रक्रिया' में कविता-यात्रा में आरम्भ की सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा तथा बाद की विश्व मानव की पहचान प्रमुख है।

तार सप्तक के वक्तव्य में उन्होंने कहा है कि—दार्शनिक प्रवृत्ति जीवन और जगत के द्वन्द्व – जीवन के आंतरिक द्वन्द्व इन सबको सुलझाने की, और एक अनुभव सिद्ध व्यवस्थित तत्त्व प्रणाली अथवा जीवन दर्शन आत्मसात् कर लेने की दुर्दम प्यास मन में हमेशा रहा करती थी।[2] इसी प्रवृत्ति ने उनकी कविता को 'जीवन की गति-जीवन का स्वर' प्रदान किया है। 'अनुभव सिद्ध व्यवस्थित तत्त्व प्रणाली' को निर्मित करने में परम्परा रूप में भारतीय दर्शन की करुणा एवं दुःखवाद तथा प्रयोग रूप मे बर्गसोनीय दर्शन के व्यक्तिवाद, मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अतिरिक्त बीसवी शताब्दी के आरम्भ के मतवादों का योगदान है। योगिराज अरविन्द का नव्यवेदान्त दर्शन तथा कीर्केगार्द कामू काफ्का एवं सार्त्र का अस्तित्ववाद उनमें प्रमुख है। इन ज्ञानात्मक संवेदनों को उन्होंने जीवन-संघर्ष तथा अध्ययन से प्राप्त किया था।[3] उनमें अपार ज्ञानराशि देश एवं विदेश की चिन्तन धाराओं से आई है जो उनकी कविता में 'फैन्टेसी' रूप में कलात्मकता के साथ इस प्रकार घुल-मिल गई है कि इनका तात्त्विक परीक्षण करना कठिन है।

मुक्तिबोध का जीवन दर्शन प्रकारान्तर से नयी कविता के पुरोधा का दर्शन है जिसका प्रभाव सभी नये कवियों पर कमोवेश देखा जा सकता है। कट्टर हिन्दू परिवार के संस्कार और किशोरावस्था की रोमानियत के गहन गम्भीर द्वन्द्व ने उन्हे गम्भीर एवं कड़ियल बनाया, महादेवी के गीतों की करुणा ने उन्हें संवेदना प्रदान की, टॉलस्टाय के उपन्यासों से उनमें मानवतावाद आया तथा अंग्रेजी, फ्रेंच रूसी उपन्यासों का अध्ययन करते-करते एक स्वस्थ सचेतन सापेक्ष्य जीवन दर्शन का आगमन हुआ जिसे मानवतावादी जीवन दर्शन कहा जा सकता है। मानव-जीवन की अक्षमताओं और दुर्बलताओं को झेलकर जटिल से जटिलतर परिस्थितियों के सम्मुख जुझारू

१. तार सप्तक—पृ—६५
२. तार सप्तक—मुक्तिबोत—द्वितीय संस्करण—४२
३ ग० मा० मुक्तिबोध स० लक्ष्मण दत्त गौतम शरद चन्द्र का निबन्ध)

प्रवृत्ति लेकर संगर में उतरे सर्जक मुक्तिबोध की दृष्टि गम्भीर है। यही कारण है कि वे सामान्य पाठक से सामान्य सतह पर नहीं जुड़ पाते किन्तु गहराई में नीचे पेंचीदी घुमावदार, फिसलन युक्त सीढ़ियों पर चलकर जब उनके आत्मानुशासन के तहखाने में प्रवेश किया जाय तो वहाँ सारी विडम्बनायें स्वाभाविक लगने लगती हैं। उनके 'रहस्यमय लोक'-मन से साक्षात्कार कर पथ ढूँढ़ने वाले बेचैन राही का सहयात्री बनना उनकी डिसिप्लिन (साधना, को समझना है जिससे उनकी कविता का सत्य समझा जा सकता है। निम्न पंक्तियों में काव्य-पुरुष की 'नाश देवता' की वन्दना द्रष्टव्य है—

हे रहस्यमय ध्वंस महा प्रभु, जो जीवन के तेज सनातन
तेरे अग्नि कणों से जीवन तीक्ष्ण बाण से नूतन सर्जन
हम घुटने पर नाश देवता बैठ तुझे करते हैं वन्दन,
मेरे सिर पर एक पैर रख नाप तीन जग तू असीम बन।[1]

इन पंक्तियों के काव्य नायक की 'चिन्ता' 'कामायनी' के मनु से मिलती-जुलती है जो महाकाल के सम्मुख नतमस्तक होकर उसे 'विराट्'-विश्वदेव' कहता है। रहस्य का यह रूप नयी कविता में डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव को भले ही रहस्य न लगे[2] किन्तु इसमें आयी हुई शब्द और नादगत चेतना (भी) रहस्यवाद की परवर्ती प्रयोग दृष्टि है जो 'पुरानी परम्परा से गृहीत है।

मुक्ति बोध के काव्य दर्शन के लिए उनके विचारों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। कलात्मक सृजन के क्षण की आरम्भिक अवस्था में 'तीव्र-अनुभव क्षण' तथा 'इस अनुभव का कसकते दुखते मूलों से पृथक हो जाने के साथ कलाकार के मन में आई हुई फैन्टेसी' को समझने के लिए[4] हम 'प्रसाद' की सर्जना के सम्बन्ध में उनके विचारों पर ध्यान दें तो उनकी काव्य दृष्टि और भी स्पष्ट हो जायगी। 'प्रसाद जी, एक अन्वेषक के रूप में, अपने ही उलझे मनोभावों के वाह्य संदर्भों को खोजते हुए जीवन जगत के उलझाव का अध्ययन करते, चिन्तन द्वारा वाह्य विश्लेषण और आत्म विश्लेषण करते। जीवन-जगत का अध्ययन करने वाले अन्तर्मुख प्रसाद जी के मन पर अपना खुद का बोझ था। × × × अत्यधिक अन्तर्मुखता तथा उस अन्तर्मुख लोक में विलासितापूर्ण गहन शृंगारिकता, और इससे एकदम विरुद्ध और विपरीत, आर्ष सांस्कृतिक अद्वैतवादी दर्शन, और उससे अनुप्राणित जीवन मूल्य थे। × × ×

---

१. तार सप्तक—(द्वितीय संस्करण) —पृ० सं०—६२
२. कविता का नया परिप्रेक्ष्य—डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव—पृ० सं० — ३६
३. तार सप्तक (वक्तव्य)—पृ० — ४३
४. एक साहित्यिक की डायरी —मुक्ति बोध

प्रसाद जी का जीवन चिन्तन उनके अपने ठोस अनुभवों पर आधारित है। X X फलतः प्रसाद जी की बुद्धि विश्लेषण प्रधान और कल्पना संश्लेषण प्रधान होती चली गई।[१] अनुभवों द्वारा मुक्तिबोध के मन में ज्ञान व्यवस्था का निर्माण हुआ जो मूलभूत दार्शनिक व्यवस्था के रूप में उनकी कविता में विद्यमान है। डॉ० रामविलास शर्मा ने भी मुक्तिबोध के जीवन दर्शन तथा प्रसाद के जीवन दर्शन की तुलना करते हुए उनकी काव्य चेतना में प्रसाद के तादात्म्य स्थापन की विशद व्याख्या की है।[२] तीव्र अनुभव क्षण के रूप में मुक्तिबोध की सर्जना पर प्रसाद की दार्शनिकता, महादेवी के रहस्यवाद निराला की प्रगतिशीलता तथा पन्त की सौन्दर्य चेतना का प्रभाव है।

अन्तर्मन के संस्कार तथा वाह्य जगत की परिस्थितियों के संघर्ष ने उन्हें संक्रान्ति की मनः स्थिति प्रदान की है। जीवन और जगत की समस्याओं से आक्रान्त उनका रचनाकार काल्पनिक जगत में प्रवेश करता है किन्तु इनकी कल्पना में भी खोज प्रक्रिया द्वन्द्व के एक पक्ष रूप में सतत क्रियाशील रहती है। गुत्थियों को सुलझाने के लिए मुक्तिबोध चिन्तन और मनन का सहारा लेते हैं। समस्याओं की गहराई में पैठने के लिए जिस पाथेय की आवश्यकता होती है वह है--स्वानुभूत जीवन की कल्पना। संस्कार अध्ययन रुचि बोध तथा आंतरिक ग्रहणशीलता भी इसी की सहगामी क्रियायें हैं। 'अनुभव दीप्त मानव-ब्रह्म की संवेदना' उन्हें जीवन के संघर्ष में मिली है—

हमें था चाहिए कुछ वह / कि जो गम्भीर ज्योतिः शास्त्र रच डाले।
नया दिक्काल थियोरम बन / प्रकट हो भव्य सामान्यीकरण।
मनका / कि जो गहरी व्याख्या / अनाख्या वास्तविकताओं,
जगत की प्रक्रियाओं की।[३]

जिस ग्रहण द्वारा उन्होंने नया दिक्काल रचने, नवीन थियोरम बनाने और नवीन ज्योतिष शास्त्र रचने की इच्छा की वे सारे ज्ञान उन्हें जीवन से मिले हैं। उनकी विकसित जीवन दृष्टि वास्तविक आत्म चेतना की सक्रियता के परिणाम स्वरूप काव्य प्रतिभा रूप में आई है। उनकी कलागत चेतना में न केवल 'थ्योरम' एवं सिद्धान्त अपितु 'मेटाफिजिक्स', रसायन शास्त्र तथा भौतिक विज्ञान के सूत्रों के भी संकेत मिलते हैं। यह सत्य है कि कविता बौद्धिक चेतना, वैज्ञानिक सिद्धान्त, दार्शनिक तर्क तथा मनोविज्ञान से भिन्न होती है किन्तु मुक्तिबोध के व्याख्यात्, व्यवस्था बद्ध, बौद्धिक एवं प्रांजल दर्शन में ये सारे सिद्धान्त जीवन और जगत की खोज के रत्नरूप में आये हैं।

---

१. नयी कविता का आत्म संघर्ष (मुक्तिबोध)—पृ० (७५-७६-७७)
२. नयी कविता और अस्तित्ववाद—राम विलास शर्मा—१७०-१७१
३. चाँद का मुंह टेढ़ा है—मुक्तिबोध (नक्षत्र खण्ड)—पृ० १३६

पृथ्वी के रत्न विवर में निकली हुई।
बलवती जलधारा नवनवीन मणि समूह बहाती लिए आब,
और उस स्थिति में, रत्न मण्डल की तीव्र दीप्ति
आग लगाय लहरों में।[१]

'एक स्वप्न कथा' 'चकमक की चिनगारियाँ' 'नक्षत्र खण्ड' आदि कविताओं के अनेक रूपक और अप्रस्तुत विधानों में उनकी सैद्धान्तिक प्रतिपत्ति व्याख्यायित हुई है। उनके कुशल शिल्पी ने एक दिन में महारत नही हासिल की है। उसका जन्म एक लम्बे जीवनानुभव एवं ज्ञान विज्ञान के मनन एवं ग्रहण की प्रक्रिया से हुआ है। 'गगन चुम्बी' अट्टालिका के मूल में स्थित ईंट की गिट्टी रोड़ा तथा पत्थर का टुकड़ा सीमेंट एवं रेत का जमाव नहीं दिखाई पड़ता अपितु दृष्टि जाती है उसके मेहराबों गुम्बदों और कटानो पर। ठीक इसी प्रकार मुक्तिबोध के शिल्पी की कला पर सब की दृष्टि गई है किन्तु इसके प्रच्छन्न दार्शनिक को कम लोग देख पाते हैं।

संदर्भित काव्य दर्शन के अनुशीलन के साथ संवेदनाओं और भावनाओं पर भी दृष्टि जाती है। केवल जीवन और जगत के संघर्ष से ही उनका व्यक्तित्व नहीं निर्मित हुआ है अपितु उसके निर्माण में सामान्य घटनाओं और न कही जाने वाली क्रियाओं का भी योगदान है। 'संवेदनायें, भावनायें, बोध शक्ति परस्पर सहकार करके उसे (कवि को) निराले जगत में ले जाती हैं। वह निराला जगत कल्पना का जगत है फिर भी वास्तविक जगत की प्रतिक्रियाओं से बना है।'[२] उनकी डायरी, निबन्ध वक्तव्य तथा कविताओं में प्रक्षिप्त कथ्य पूर्णतः चरितार्थ हुए हों यह आवश्यक नहीं है किन्तु काव्य-दर्शन की बारीकियों को जानने तथा उनकी कविता-यात्रा के साथ विकासमान दृष्टि को समझने के लिए उनकी कविता की इतिहास दृष्टि का भी सहारा लेना पड़ता है। उनका 'संवेदनात्मक ज्ञान' जिस प्रक्रिया से 'ज्ञानात्मक संवेदन' बनता है उसकी जानकारी केवल काव्य कृति द्वारा कठिन है। काव्य-दर्शन के अधिकांश सूत्र समीक्षा कृतियों में हैं किन्तु बहुत सी ऐसी उलझनें भी हैं जिनका हल खोजना एक कठिन प्रक्रिया से होकर गुजरना है। प्रसाद की कामायनी तथा सन्त ज्ञानेश्वर की ज्ञानेश्वरी के रूप की व्याख्या में की गई स्थापना इस संदर्भ में उल्लेख्य है जिसका सम्बन्ध किसी तरह 'अँधेरे में' या लम्बी कविताओं से जोड़ा जा सकता है। 'काव्य रूप मे थीसिस लिखना बहुत बड़ी कला है। सन्त ज्ञानेश्वर की ज्ञानेश्वरी ऐसा ही एक

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—१७८
२. गजानन माधव मुक्तिबोध सं०—(लक्ष्मण दत्त गौतम)—समीक्षा दृष्टि—नरेन्द्र मोहन—पृ० ७७

थीसिस है—विस्तृत निबन्ध है। उसमें बौद्धिक दार्शनिक भाव विश्लेषित होकर बारीक से बारीक तत्वों में विघटित हो जाते हैं।'[1]

मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ भी इसी प्रकार की थीसिस हो सकती हैं। छोटी कविताओं को उन्होंने या तो अधूरी कहा है अथवा अपूर्ण किन्तु उनमें मिलने वाले संकेत कभी-कभी लम्बी कविताओं के समझने में सहायक होते हैं। बौद्धिक और दार्शनिक भावों के विश्लेषण की उनकी एक अलग शैली है जिसे प्राप्त करने में उन्हे लम्बा समय लगा है।

गहन परिचित अपरिचय की / काट पीली घास /
सतही जानकारी का भयानक / काट बंजर पन /
लगे हम खोदने दो ओर से / वह टेकड़ी भूरी, /
बनाये गहन अन्तर्पथ / अन्तस्थल गुहा में तब /
मिले ये दीप्त / सौ सौ रत्न जीवन के /
गहन गम्भीर सुविचारित / सरल ये सत्य ये मन के /[2]

'तार सप्तक' के द्वितीय संस्करण में सम्पादक अज्ञेय ने कहा है कि 'तब के राहों के अन्वेषी अब संदर्भ हो गये, बोधिसत्वों का अभ्युदय बाई चांस अथवा 'परचांस' नहीं रहा'। अज्ञेय की इस स्थापना की पुष्टि मुक्तिबोध ने भी की है। इसी संस्करण में संकलित 'एक आत्मवक्तव्य' शीर्षक कविता इसका उदाहरण हैजो 'भाव प्रकृतियों के खयाल से उनका सर्वाङ्गीण प्रतिनिधित्व करती है।'[3]

अभी तक / सिर में जो तड़फाता रहा ब्रह्माण्ड, / लड़खड़ाती दुनियाँ का भूरा मानचित्र / चमकता है दर्द भरे अँधेरे में वह / क्रमागत काण्ड /

× × × ×

पूरे नहीं हो सके हैं मानवीय योग, / हर एक के पास अपने-अपने गुप्त रोग / (परेशान चिन्तकों की दार्शनिक खीझ) / उजली उजली सफेदी में / कोखों की शर्म; / (अध बने समाधानों) भ्रूणों का अँधेरे में क्रमागत जन्म[4] / जीवन और जगत की वेदना एवं तड़फन को अपनी निजी संवेदना बना कर 'अधबने' समाधान रूप में प्रस्तुत करना उनकी बेचैनी का परिचय देता है। ब्रह्मराक्षस' द्वारा वेद मन्त्रों तथा स्तोत्रों का उच्चारण एवं मार्क्स, एङ्गेल्स, रसेल, टायनबी, हाइडेगर, स्पेंगलर, सार्त्र और गाँधी

---

१. नयी कविता का आत्म संघर्ष—मुक्तिबोध पृ० सं०—८३
२. नक्षत्र खण्ड (चाँ० मु० टे०) पृ०—१३६
३. तार सप्तक (द्वितीय संस्करण) पृ० ७५-७६
४. तार सप्तक (द्वितीय संस्करण) पृ० ७७-७८

के सिद्धान्तों का प्रतिपादन अनायास नहीं है। इन विचारकों से मुक्तिबोध ने जीवन-दर्शन के तत्व ग्रहण किये हैं। 'विश्व-यात्रा में चट्टानों के बीच झुकती सँवलाई साँझ के अंधेरे में राह की खोज के लिये उन्होंने अपने मनकी अतल गहराई में डुबकी लगा कर रत्न और मणियाँ प्राप्त की हैं। 'एक स्वप्न कथा' का ज्ञानी पूर्वज अंधकार जल तल का स्पर्श कर एक 'तेजस्वी शिला खण्ड' प्राप्त करता है। ज्ञानी पूर्वज पूर्व संस्कार हैं तथा तेजस्वी शिला खण्ड नवीन चेतना-गहन अनुमानिता।'[1] कवि का अनुमान है कि सम्भवतः यह तेजस्वी शिलाखण्ड उसका नहीं समूचे ब्रह्मांड की केन्द्र-क्रियाओं का तेजस्वी अंश है। 'ऐसा ज्ञानमणि मरने से मिलता है' जिसे प्राप्त करने के लिए ही उनका मन 'ब्रह्मराक्षस' का शिष्य अथवा उपासक हो जाता है।

कविता यात्रा में व्याप्त क्रमिक मृत्यु दृष्टि विकास की सूचक हैं किन्तु इस मरने और खपने में भी कई तरह की भ्रान्तियाँ तथा मत और मतान्तर हैं। अब तक सर्वाधिक सशक्त पक्ष मुक्तिबोध के मार्क्सवादी होने का है जिसकी पुष्टि तार सप्तक के वक्तव्य तथा पुनश्च के 'अर्थ' के अभाव से जूझने की स्थिति से होता है[2] किन्तु मार्क्स-दर्शन से पैदा हुई वैचारिक जकड़ ढीली होने का संकेत भी उन्होंने किया है। 'सर्वाश्लेषी दर्शन की मीनार' न खड़ी कर पाने की उनकी विवशता आन्तरिक विनष्ट शान्ति थी किन्तु आरम्भ से 'स्वतन्त्र क्रियमाण जीवन शक्ति' से बना हुआ व्यक्तिवाद का कवच उनके अस्तित्व का रक्षक बना रहा। 'गुप्त अशान्ति' को दूर करने के लिए किसी एक पथ के ही राही वे नहीं बन सके।

अनुभव ग्रहण करने से सर्जन की अभिव्यक्ति तक होने वाले 'फांक' भी इस संदर्भ में ध्यातव्य हैं। मात्र मार्क्सवाद की मूर्त विचारधारा ही मुक्तिबोध की पथ-दर्शिका रही हो यह आवश्यक नहीं है। किसी 'वाद' अथवा विचारधारा की संकुचित सीमा में मुक्तिबोध को बाँधना समीचीन नहीं है। शमशेर बहादुर सिंह के शब्दों में—"मुक्तिबोध हमेशा एक विशाल विस्तृत कैन्वास लेता है, जो समतल नहीं होता, जो सामाजिक जीवन के धर्म-क्षेत्र और व्यक्ति चेतना की रंग भूमि को निरन्तर जोड़ते हुए समय के कई काल क्षणों को प्रायः एक साथ आथामित करता है।"[3] अद्भुत संकेतों, अनेक जिज्ञासाओं तथा असाधारण रहस्यों के योग की उनकी बहु आयामी दृष्टि के पहचानने का सिलसिला जारी है। मानवतावादी रोमानियत' तथा 'समाज-

---

१. एक स्वप्न कथा (चाँद का मुँह टेढ़ा है)—पृ०सं० १७५

२. क्रमशः मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर होता गया। अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण मुझे प्राप्त हुआ।

—तार सप्तक (वक्तव्य) मुक्तिबोध

३. चाँद का मुँह टेढ़ा है (एक विलक्षण प्रतिभा)—पृ०सं०—२१

वादी आधार' के लिये क्रमशः 'विधायक कल्पना' एवं 'जीवनानुभव तत्व' के योग से निजबद्धता के परिहार की प्रक्रिया उल्लेखनीय है।" "संवेदनात्मक उद्देश्यों द्वारा परिचालित विधायक कल्पना और उन्ही के द्वारा परिचालित तथा उनके अपने अनुसार संकलित जीवनानुभव तत्व इन दोनों के योग से मनस्पटल पर उद्दीप्त बिम्बों में मन यदि तन्मय होकर, अपनी निजबद्ध स्थिति खोचलें तो वैसी दशा में बिम्ब रूपों में उपस्थित वे जीवनानुभव (कवि के) प्रतिनिधि हो उठते हैं।[1] 'जीवनानुभूति' एवं 'सौन्दर्यानुभूति' के इस मिश्रण को कला रूप में देखकर यह निर्णय करना कठिन है कि 'जीवनानुभूति' महत्वपूर्ण है अथवा सौन्दर्यानुभूति या दोनों अनुभूतियों के अतिरिक्त कोई अन्यमतवाद। डॉ० नामवर सिंह ने मुक्तिबोध की कविता के वैचारिक पक्ष के मूल में 'जीवनानुभव और संघर्ष के द्वन्द्वात्मक रूप को' विशिष्ट कह कर उनकी मार्क्सवादी दृष्टि का परिचय दिया है। डॉ० सिंह की स्थापना के अतिरिक्त डॉ० केदार नाथ सिंह की दृष्टि में कला का संघर्ष मुक्तिबोध के लिए अस्तित्व का संघर्ष है। वी० डी० एन० साही तथा श्रीकान्त वर्मा ने भी न केवल केदार नाथ सिंह का पक्ष लिया है अपितु मुक्तिबोध की दृष्टि की ही पुनर्व्याख्या की है। उनके कवि द्वारा दिया गया संकेत ही यदि पूर्ण मान लिया जाय तो काव्य-दर्शन का निर्णय करना कठिन हो जायगा।

'कविता के नये प्रतिमान' के केन्द्र मे मुख्य रूप से मुक्तिबोध की कविता है और इस कृति की स्थापनाओं में क्रियमाण हैं डॉ० नामवर सिंह की मार्क्सवादी चेतना।[2] डॉ० सिंह की स्थापनाओं का आधार निश्चय ही सशक्त है तथा उनकी प्रतिभा सम्पन्न समीक्षा के बाद सहसा सोचने और मुक्तिबोध के जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में कुछ अतिरिक्त लिखने की आवश्यकता भी नहीं रह जाती। इनकी स्थापनाओं में मुख्य रूप से 'आत्मसंघर्ष', 'वर्ग-चेतना', 'स्वप्न-कथा', 'फेन्टेसी', 'अनुभूति की जटिलता और तनाव' आदि का सहारा लिया गया है। मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष इस बात का प्रमाण है कि उन्हें ज्ञान की तलाश थी जो सतत् विकासमान हो। "मार्क्सवाद पूर्ण ज्ञान का दावा नहीं करता, इस बात का एहसास मुक्तिबोध को उन लोगों से कहीं ज्यादा था, जो तोतारटन्त इस वाक्य को दुहराते रहने के बावजूद व्यवहार में मार्क्सवाद के लिये ही पूर्ण ज्ञान का दावा नहीं करते, बल्कि मार्क्सवाद के बारे में अपने पूर्ण ज्ञान का भी दावा करते हैं। मार्क्सवाद पूर्ण ज्ञान का दावा भले न करे, मार्क्सवादी तो कर ही सकता है और ऐसी हालत में जबकि मुक्तिबोध ने अपनी कृतियों में अपने आपको मार्क्सवादी न कहा हो "[3] आरम्भ में डॉ० सिंह ने 'अँधेरे

१. नयी कविता का आत्मसंघर्ष—मुक्तिबोध पृ०स०— ३९
२. कविता के नये प्रतिमान—(भूमिका)—प्रथम संस्करण
३. कविता के नये प्रतिमान— नामवर सिंह— द्वितीय सं० २२९।

में' को आधार बनाकर, जो कुछ कहा था बाद में वही मुक्तिबोध के काव्य-दर्शन का सूत्र बन गया। "निःसंदेह इस कविता का मूल कथ्य है अस्मिता की खोज; किन्तु कुछ अन्य व्यक्तिवादी कवियों की तरह इस खोज में किसी प्रकार की आध्यात्मिकता या रहस्यवाद नहीं, बल्कि गली-सड़क की गतिविधि, राजनीतिक परिस्थिति और अनेक मानव चरित्रों की आत्मा के इतिहास का वास्तविक परिवेश है।"[1] 'आइडेन्टिटी' या 'अस्मिता की खोज' आध्यात्मिकता और रहस्यवाद का निषेध नहीं करती और निषेध है तो केवल वादवादिता का। 'मानव चरित्रों की आत्मा' का इतिहास जानने के लिए या परिवेश की वास्तविकता की जानकारी के लिए मार्क्स-वादी चेतना का प्रतिमानीकरण कवि के व्यापक जीवन-दर्शन को लघु निकष पर कसने का आग्रह है साथ ही स्थापना में आचार्यत्व की ध्वन्यात्मकता। डॉ० सिंह द्वारा उद्धृत 'परम अभिव्यक्ति की खोज' से सम्बन्धित पंक्तियों का उद्धरण देना विवादित भूमि में प्रवेश करना है किन्तु बिना कहे भी बात अधूरी रह जायगी।

> झाँक-झाँक कर देखता हूँ हर एक चेहरा
> प्रत्येक गतिविधि, / प्रत्येक चरित्र, /
> व हर एक आत्मा का इतिहास,
> हर एक देश व राजनैतिक परिस्थिति
> प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श,
> विवेक-प्रक्रिया, क्रियागत परिणति ॥[2]

कवि की मनसा प्रत्येक गतिविधि व चरित्र को देखने की है। वह हर एक आत्मा के इतिहास पर दृष्टिपात करता है। प्रत्येक देश की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के प्रकाश में मानवीय-स्वानुभूत आदर्श, 'विवेक-प्रक्रिया' तथा 'क्रियागत परिणति' में वह इस आशा से प्रवेश करना चाहता है कि उसे 'परम अभिव्यक्ति अनिवार / आत्मसम्भवा!' मिल सकेगी। कवि की खोज से सम्बन्धित पठार पहाड़ समुन्दर के व्यापक परिप्रेक्ष्य को मात्र .मार्क्सवाद के दायरे में सीमित कर देना मुक्तिबोध की साधना को सीमित करना है। यह सत्य है कि मुक्तिबोध का गम्भीर झुकाव मार्क्सवाद के प्रति है किन्तु 'केवल मार्क्सवाद' कहना, दूसरों की स्थापना को 'तोतारटन्त शब्दावली की संज्ञा देना' मार्क्सवाद के अधूरे ज्ञान को चुनौती देना अथवा अपने ज्ञान की पूर्णता के दावे से इस गम्भीर प्रश्न को फूंककर उड़ाया नहीं जा सकता है। इन पंक्तियों के लेखक की विनम्र धारणा यह है कि मार्क्सवाद के 'अधूरे ज्ञान' अथवा 'ज्ञान की पूर्णता' को मुक्तिबोध का दर्शन मान लेने

---

१. कविता के नये प्रतिमान —नामवर सिंह,, सं० २११।
२. चाँद का मुँह टेढ़ा है—(अँधेरे में)—मुक्तिबोध सं० २१०।

से समस्या का समाधान नहीं मिलता और न ही आग्रह और आवेश की शब्दावली के बाद सोचने कहने का सिलसिला ही टूटता है। 'अँधेरे में' से निकल कर संदर्भित चर्चा मुक्तिबोध के समूचे काव्य—बल्कि साहित्य तक फैल जाने पर इस विषय पर पुनर्विचार की आवश्यकता का अनुभव डॉ० सिंह भी स्वयं करते हैं किन्तु 'अस्तित्ववाद', 'नव-रहस्यवाद' एवं 'मनोविश्लेपणवाद' की मान्यताओं को भी उन्हें आंशिक रूप से मुक्तिबोध के दर्शन में स्वीकार करना चाहिए।

मुक्तिबोध की काव्यदृष्टि की व्याख्या के क्रम में दूसरी प्रचलित एवं बहुचर्चित स्थापना डॉ० रामविलास शर्मा की है। 'मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष और उनकी कविता' शीर्षक निबन्ध[२] में उन्होंने न केवल मुक्तिबोध की काव्य-दृष्टि की व्याख्या की है अपितु डॉ० नामवर सिंह के विचारों की प्रत्यालोचना भी की है। 'नयी कविता और मुक्तिबोध का पुनर्मूल्यांकन' शीर्षक निबन्ध के माध्यम से डॉ० शर्मा ने डॉ० सिंह के 'अंधेरे में-पुनश्च' के लक्ष्य को झेला है और अपनी स्थापना और भी प्रामाणिक ढंग से पुष्ट की है। 'स्वाधीनता आन्दोलन', 'छायावाद', 'जयशंकर प्रसाद का कृतित्व', 'अस्तित्ववाद की छाया', 'व्यक्तित्व का रूपान्तरण', 'रहस्यवाद का आलोक' आदि शीर्षकों के सहारे मुक्तिबोध की कविता की समीक्षा करते हुए डॉ० शर्मा 'अवचेतन की भूमिका', 'योग' और 'गुरु के योगदान' तथा असमान्य मनःस्थिति की भी जाँच परख करते हैं। इनकी स्थापना है कि मुक्तिबोध मार्क्सवाद की सीमाओं का अतिक्रमण कर अस्तित्ववाद से छाया तथा रहस्यवाद से आलोक ग्रहण करने के साथ ही अवचेतन की दमित वासना का उद्घाटन कविता में करते हैं।[३]

"मुक्तिबोध की बड़ी इच्छा थी कि ऐसा जीवन-दर्शन मिले जिससे समाज ही नहीं विश्व के सृजन-प्रलय के रहस्य भी एक साथ उद्भाषित हो उठें। मार्क्सवाद पूर्ण ज्ञान का दावा नहीं करता। मुक्तिबोध उस ज्ञान से उकता उठे थे, जो सतत् विकासमान हो। विकासमान होगा तो ज्ञान अपूर्ण भी होगा। उन्हें चाहिये था पूर्ण ज्ञान; ऐसा ज्ञान रहस्यवाद ही दे सकता था।[४] मध्यमवर्गीय व्यक्ति द्वारा अस्मिता की खोज सम्बन्धी डॉ० सिंह की स्थापना का खण्डन करते हुए डॉ० शर्मा कहते हैं कि— 'अस्मिता की खोज का अर्थ वर्ग-संघर्ष है, ऐसा प्रतीत नहीं होता। 'अस्मिता की खोज' के लिए 'व्यक्तित्व विभाजन' तथा 'आत्म-निर्वासन' से शर्मा जी का विरोध है।

१. कविता के नये प्रतिमान— (अंधेरे में—पुनश्च)
२. धर्मयुग—(२१ एवं २८ दिसम्बर १९६९) तथा नयी कविता और अस्तित्ववाद में संकलित—(संस्करण १९७८)
३. नयी कविता और अस्तित्ववाद—रामविलास शर्मा—(२१६—२२१)
४. वही — ,, ,, १२२

'खुंख्वार-सिनिक संशयवादी' काव्यनायक की अभिव्यक्ति कविता में भावावेश का रूप लेती है किन्तु इसमें प्रतिक्रिया होती है क्रिया नहीं। मुक्तिबोध ने तारसप्तक में लिखा है—

उसके पथ पर पहरा देते ईसा महान वे स्नेहवान
छाया बनकर फिरते रहते वे शुद्ध-बुद्ध सम्बुद्ध प्राण !!
यह नहीं कि करता गया पुण्य, उसका अन्तर था सरल वन्य
तम में घुसकर चक्कर खाकर वह करता गया अबाध पाप।
अपनी अक्षमता में लिपटी यह मुक्ति हो गई स्वयं शाप।[१]

महान ईसा, सम्बुद्ध-प्राण बुद्ध आदि से सम्बद्ध होने पर भी केवल पुण्य ही नहीं काव्यपुरुष ने 'अबाध-पाप' भी किये हैं। इस अपराध बोध में रहस्यवाद की आध्यात्मिक ग्लानि की प्रतिक्रिया तथा अस्तित्ववादी चेतना दर्शनीय है।

बीसवीं शताब्दी की चिन्तनधाराओं में अस्तित्ववाद प्रमुख है। डॉ० शर्मा के अनुसार मुक्तिबोध की कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि निर्मित करने में इस वाद का उल्लेखनीय योगदान है। संदर्भित जीवन-दृष्टि के विकास में गाँधीवाद तथा स्वतन्त्रता के बाद की नेहरू की पंचशील सम्बन्धी धारणा का योगदान डॉ० नामवर सिंह एवं डॉ० रामविलास शर्मा भी स्वीकार करते हैं। मुक्तिबोध की समीक्षा दृष्टि के सहारे डॉ० शर्मा ने उनकी काव्य-दृष्टि को परखने का सार्थक प्रयास किया है। पन्त, प्रसाद, शमशेर आदि रचनाकारों की कविता की समीक्षा में मुक्तिबोध ने जिस दृष्टि का परिचय दिया है उसमें समीक्षक मुक्तिबोध में कवि मुक्तिबोध की धारणा संश्लिष्ट है। डॉ० नामवर सिंह मुक्तिबोध के जीवनानुभव के आधार पर उनकी कविता की वस्तुवादी समीक्षा पर बल देते हैं जबकि डॉ० शर्मा 'वस्तु' के साथ रूप और कला पर भी दृष्टि डालते हैं। डॉ० सिंह एवं डॉ० शर्मा के वैचारिक टकराव के मुद्दे भी स्पष्ट हैं जिनसे मुक्तिबोध की समग्रचेतना प्रकाश में आयी है। 'अपनी काट की कविता' अथवा 'अपने फ्रेम में फिट होने वाली कविता' से उबर कर समीक्षक व्यापक दृष्टि का परिचय दें ऐसा मुक्तिबोध का सुझाव है किन्तु 'नयी कविता' की दार्शनिक पृष्ठभूमि की दुर्बलता का एहसास उन्हें है।[२] प्रयोगवाद और नयी कविता के आरम्भ में ही समीक्षकों द्वारा होने वाले प्रहार इस पृष्ठभूमि को समझने के लिए नहीं अपितु नकारने के लिए किए गये। 'एक विशेष प्रकार की काव्याभिरुचि' को अपनाने के

---

१. तारसप्तक—(मेरे अन्तर)—पृ० ५४

२. छायावादियों और प्रगतिवादियों की भाँति कोई दार्शनिक विचारधारा उसके पास नहीं है। यह बात मैं नयी कविता के बारे में कह रहा हूँ।
—नयी कविता का आत्म-संघर्ष—मुक्तिबोध—पृ० १३

आग्रह के कारण नयी कविता,—विशेषकर मुक्तिबोध और अज्ञेय की कविता की जितनी चर्चा आधुनिक समीक्षा में की गई उतना ही विवाद बढ़ता गया और अन्त में तीसरे सप्तक की भूमिका में सम्पादक अज्ञेय को यह कहना पड़ा कि अब ऐसा समय आ गया है जब नये कवियों को परस्पर समीक्षा करनी चाहिए। डॉ० सिंह एवं डॉ० शर्मा की अपनी-अपनी दृष्टि में समझौतावाद का विरोध, जीवन का स्वर, जीवनानुभूति तथा नवीन सौन्दर्याभिरुचि मुक्तिबोध की कविता में है। डॉ० शर्मा मुक्तिबोध के कथन में प्रेमचन्द का भी प्रभाव देखते हैं जबकि यह दृष्टि प्रेमचन्द को भी टालस्टॉय से मिली है। बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक तक (स्वतन्त्रता के उपरान्त) राजनैतिक भावावेश तथा ऐतिहासिक गतिविधियों को कविता में विशेष महत्त्व दिया जाने लगा—

> जिन्दगी के झिलमिलाते इन पठारों पर /
> हमेशा तिलमिलाते कष्ट में हमने /
> अनेकों रास्तों पर घोर श्रम करके /
> कुएँ खोदे / हृदय के स्वच्छ पानी में /
> कि चटियल भूमि तोड़ी और भीतर से निकाला शुद्ध-ताजा जल।[१]

मुक्तिबोध की यह आत्मस्वीकृति कबीर का स्मरण कराती है। जिन्दगी के पठार की सख्त चट्टानें तोड़कर नीचे से शुद्ध-ताजा-पेय जल प्राप्त करना मुक्तिबोध की साधना है जबकि कबीर का साधक मन स्वीकार करता है—'आकाशे मुख औंधा कुआँ पाताले पनिहारि, ताका जल कोई हंसा पीवै बिरला आदि बिचारि।' 'मैमन्ता मन मारने के लिए नान्हा करि कै पीस' की क्रिया अपनी इच्छाओं के मारने गलाने व जलाने से तुलनीय है जिसके द्वारा मुक्तिबोध दृष्टि के पथ पर अग्रसर होते हैं।'[२] वृक्ष की भद्रता और शिष्टता के नियम··· अनुभव ने स्वयं के श्याम कांधे पर बोझ का रूप लिया है। मुक्तिबोध का कवि इस बोझ को उतारना चाहता है किन्तु आवेग-त्वरित-काल-यात्रा में बोझ से मुक्ति मिलना कठिन है।

'अनुभव दीप्त मानव ब्रह्म की संवेदना' से गहरा फलसफा तैयार कर कवि ने उसे प्रकाश रश्मि की तरह दूसरों के लिए छोड़ा है। "अज्ञेय की तुलना में नये कवि तथा युवा पीढ़ी के रचनाकार मुक्तिबोध से तदाकार स्थापित करने में सफल होते हैं। जलकर भी दीप्तिमान हुआ मुक्तिबोध का मैं (अहं) विभिन्न संघतियों एवं परमाणुओं के समवाय से निर्मित हुआ है। काव्य-भाषा की गद्यात्मकता एवं अटपटेपन की विद्रूपता का कारण उनकी जीवन-दृष्टि है जो सबसे विरोध व्यक्त करती तथा किसी

---

१. नक्षत्र खण्ड—मुक्तिबोध—(चाँ० मुँ० टे०—१३७)

२. फुलवा भार न लेइ सकै, कहै सखिन सों रोय।
ज्यों-ज्यों भीजै कामरी, त्यों-त्यों भारी होय॥ —कबीर

से समझौता न करने को विवश करती है। आज की समस्या से आक्रान्त मानव को अज्ञेय ने यौनवर्जनाओं का पुञ्ज कहकर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद के प्रति अपना रुझान व्यक्त की है किन्तु मुक्तिबोध का मानव सतत् संघर्षशील 'विनत प्रणत आत्मस्थ' 'लघुमानव' है। जीवन के दुर्गम पथ पर चलते-चलते लहूलुहान पैर वाले इस आम आदमी को मात्र यौन-भावना का पुञ्ज नहीं कहा जा सकता।

समकालीन चिन्तनधारा में मिश्रित अणुवाद, शून्यवाद, अनीश्वरवाद मानव को एक आनुवंशिक प्राणी के रूप में देखता है।[1] अन्य प्राणियों के बाद मानव का विकास होने के कारण इसमें पशुता के सभी लक्षण एवं बर्बरतायें भी हैं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया से ढलने वाला आज का कवि कविता में आदमी की भूमिका ग्रहण करता है। मुक्तिबोध का कार्निवाल इतना विराट है कि इसमें बहुरूपिया बनकर कला का प्रदर्शन करते समय उसके असली रूप की पहचान करना उनके जीवन और जगत की व्याख्या को समझना है। मुक्तिबोध की कविता का मानव उन्हीं की कद-काठी का सामान्य व्यक्ति है किन्तु इतना निर्बल नहीं है कि प्रभात होते ही तारों की तरह विलीन हो जाय तथा इतना सक्षम भी नहीं है कि सारी पृथ्वी पर अकेले ही शासन करे।

अर्थखोजी उद्दाम प्राण की खोज सतत चलती है। अश्लेषा, मघा, पूर्वा, उत्तरा, हस्त आदि नक्षत्र समूहों के माध्यम से कवि ने अपने अर्जित ज्ञान का संकेत दिया है जिसमें यह ध्वनित है कि आज का लघुमानव अपनी जिज्ञासा के सम्मुख निरस्त्र होकर भी इसी लोक में रहने के लिए विवश है। भारतीय फलित एवं गणित ज्योतिष के ये संकेत भाग्यवादी मानव की दुर्बलता पर प्रहार करने तथा उसकी जड़ता को तोड़ने के लिये है। ज्योतिष एवं खगोल शास्त्र के ज्ञान को अपूर्ण मानकर नये ज्ञान की प्रतिष्ठा, नवीन विज्ञान सम्मत मानवतावादी दर्शन की अभिव्यक्ति सुविचारित जीवन दृष्टि का परिणाम है।

अन्तर आपद-ग्रस्ता आत्मा / नमकीन धूल के गरम-गरम अनिवार बवण्डर-सी घूमी / फिर छितर गई या बिखर गई / जीवन के रजधूसर पद पर / आँखें बन्द कर वह बैठ गई।[2]

मस्तिष्क तंतुओं में घनीभूत वेदना यथार्थवादी जीवन की वेदना है जिसमें

---

१. मात्र अनस्तित्व का इतना बड़ा अस्तित्व।
ऐसे घुप्प अँधेरे का इतना तेज उजाला
लोग बाग / अनाकार ब्रह्म के सीमाहीन शून्य के /
बुलबुले में यात्रा करते हुए / (चाँद का मुँह टेढ़ा है)

२ चाँद का मुंह टेढ़ा है मुक्तिबोध—पृ० १७०

जीवन को निकट से पहचानने की दृष्टि विद्यमान है। इस जीवन रस को 'जीने की लेने की उतावली / वह भी यह सोच / कि जाने कौन वेश में कहाँ कितना 'सत्य' मिले / "खोज में 'सत्य' और सत्य में 'तथ्य' सुविचारित—सत्य' की खोज जीवन की नवीन व्याख्या है जो मुक्तिबोध के दर्शन का आधार है। अंधेरा, तनाव, स्याह, खुरदुरा लोक, संघर्ष तथा छटपटाहट इसी जीवन से मिली है। मुक्तिबोध की कविता का जगत इसी जीवन का पर्याय है जिसमें हॉरर, मिचलाई और दुर्गन्ध के अतिरिक्त 'मार्शल ला' सैनिक टुकड़ियों के मार्च, हत्या, आक्रमण, पोस्टमार्टम, विद्यमान है। नग्न चित्रों की बेलौस भाषा में आया हुआ मुक्तिबोध का जीवन अति भयानक है।

गोल स्याह खुरदुरा
बहुत बड़ा सिफर एक लेटा है खामोश
मानो वह कोई बहुत बड़ा शीश हो /
कोई शिला पुरुष हो /
विलक्षण सत्त्व वह / गहन निजत्व वह /[१]

"दुनियाँ की पाषाणीभूत चेतना से सामंजस्यों के ... की सीमा में संतुलनात्मक स्थिति की स्थापना" अतिकठिन प्रक्रिया है किन्तु यही दुनियाँ कविता की पृष्ठभूमि में है। भयानक सत्य को कहकर 'स्वयं प्रसूत' बात द्वारा खतरा मोल लेना अवश्यम्भावी घटना है। डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय कला की रचना प्रक्रिया को अजूबे की रचना न मानकर उसमें जगत और जीवन के विविध आयाम देखते हैं। आरम्भ से ही मुक्तिबोध की प्रवृत्ति के साथ जुड़ा हुआ 'बद्धमूल-अन्तर्द्वन्द्व' इसी जगत से आया है।

परम आश्चर्य !! / उस गुमनाम खड्डे के अँधेरे में /
खुले हैं लाल-पीले-चमकते नक्शे,
खुली जुग्राफिया - हिस्ट्री, /
खुले हैं फलसफे के वर्क बहुतेरे /
कि जिनकी पंक्तियों में से / उमड़ उठते /[२]

क्षुब्ध पृथ्वी की चमक से निकले प्रकाश से ही 'जुग्राफिया', 'हिस्ट्री', 'फलस्फा' बनता है जिसका निर्माता मानव है। आसमानी फासले पर गुजरते हुए चाँद ने भी इस गहन अँधेरे को दूर से देखा है। एक नीला लिफाफा फेंक कर मानव से सहानुभूति व्यक्त करना आज की सामाजिक औपचारिकता है किन्तु दूसरों के दुःख का सहयात्री न बनना आज की भयानक त्रासदी है। आज का जीवन और जगत ऐसी

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है—मुक्तिबोध—२२७
२. वही (चकमक की चिनगारियाँ) मुक्तिबोध १४४

अनेक विषमतायें झेल रहा है। 'अनलवर्षी' तारों की रश्मियों का प्रकाश झेलना अति कठिन है। जीवन के इस चित्र में शून्यवाद के अतिरिक्त आशा-निराशा, आस्था-अनास्था, अंधकार-प्रकाश, ज्ञान-अज्ञान का गहन द्वन्द्व सर्वत्र देखा जाता है।

यह सही है कि चिलचिला रहे फासले,
तेज दुपहरी भूरी / सब ओर गरम धार-सा रेंगता चला /
काल बाँका तिरछा;

पर, हाथ तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ /
फैलेगी बरगद छाँह वहीं / गहरी-गहरी सपनीली-सी —
जिसमें खुलकर सामने दिखेगी उरस्-स्पृशा।[१]

आज के जीवन का यह सटीक चित्र कवि की दृष्टि से परिचय कराता है। 'मात्र अनस्तित्व के इतने बड़े' अस्तित्व को जगत का रूप मानना मन की ज्ञानात्मक क्रिया है। 'प्रतिभाओं का सार', 'स्फुलिंगों का समूह', 'पुञ्जीभूत होकर', 'सबके मन का अग्निव्यूह बना है', जिसकी पहचान सभी को नहीं है। अज्ञान की स्थिति में यही 'गोल शिफर' बड़ा-सा शून्य दिखाई पड़ता है किन्तु ज्ञान प्राप्त होते ही यही ब्रह्माण्ड लगने लगता है जिसमें तारों का प्रकाश भी देखा जाता है।

संदर्भित जीवन दर्शन के व्यापक कार्निवाल में अस्तित्ववाद की अस्मिता डॉ० शर्मा की दृष्टि मे ही नही अपितु मुक्तिबोध की 'नयीकविता' की नयी दृष्टि जानने की रेखा है। जीवन-दृष्टि में आई हुई विचारधारायें, अपराधबोध, भूल गलती की प्रवृत्ति तथा पश्चाताप की भावना 'कीर्कगार्द' की विचारधारा से मेल खाती है। कीर्कगार्द का कहना है कि, "केवल व्यक्ति सत्य है; उसकी उलझनें, तथ्यों की छानबीन से या तथ्यों के बारे मे हमारे सोचने-विचारने के जो नियम है उनसे, दूर नहीं होतीं। मनुष्य के मन मे जो संघर्ष और द्वन्द्व फूटते हैं, जो वेदना वह सहता है, उसी से वह निर्णयो तक पहुँचता है।[२] कीर्कगार्द ईश्वर में भी विश्वास व्यक्त करते हैं। मुक्तिबोध का काव्य दर्शन भी 'मानव' एवं जीवन-सम्बन्धी विचारों की दृष्टि से कीर्कगार्द के निकट है। व्यक्ति की उलझनें, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व तथा भय और संत्रास की परिणति का चित्रण संदर्भित कविता में प्रायः मिलता है —

(भय) विराट उन दृश्यों को / कि ऐसा ही एक देव भयानक आकार का /
अनन्त चिन्ता से ग्रस्त हो / विद्रोही समीक्षण-सर्वेक्षण करता है।[३]

× × ×

---

१. चाँद का मुँह टेढ़ा है ———(६)
२. अस्तित्ववाद और नयी कविता में डॉ० रामविलास शर्मा द्वारा उद्धृत—पृ० ९२
३. चाँ० मुँ० टे०

(अंतर्संघर्ष) जीवन की सच्चाई के स्तर, / सही बात के चौड़े पत्थर
तीव्र वेदना में कैसे गड़गड़ा रहे थे, / इन ज्वालामुखियों के भीतर [१]

(संत्रास) नगर से भयानक धुआँ उठ रहा है,
कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गई,
सड़कों पर मरा हुआ फैला है सुनसान
हवाओं में अदृश्य ज्वाला की गर्मी—[२]

इसी प्रकार अभावग्रस्त 'जिन्दगी की कोख में जन्मा नया इस्पात', मृत्यु, दैन्य, अरमान, जलन, पीड़ा आदि के अनेक दृश्य मुक्तिबोध की कविता में हैं। न कहे जा सकने वाले अनुभवों के ढेर की त्रासदी कविता की चेतना में अस्तित्ववाद के रूप में व्याख्यायित की जा सकती है। अन्य अस्तित्ववादी विचारकों में सार्त्र का नाम लिया जाता है जो मानवीयता के अर्जन में विश्वास करता है। ईश्वरविहीन संसार में मनुष्य अपनी मानवीयता स्वयं बनाता है। मनुष्य का 'आत्मगत ज्ञान ही मूल्यनिर्धारण का आधार है। पैतृक संस्कार, सामाजिक परिस्थिति श्रमिकों के प्रति सहानुभूति आदि भौतिकवाद के विरुद्ध की गई स्थापनाएँ अस्तित्ववाद से आई हैं। अपनी क्षमता अनुसार कर्ममय जीवन में प्रवेश करना उसकी नियति है। [illegible] भी स्वीकार करते हैं। उनका 'मानवतावादी दर्शन' तथा 'कल नहीं आज के [illegible] पर विश्वास' इस नवीन चेतना के निकट है। 'एक स्वप्न कथा', [illegible]', इस चौड़े ऊँचे टीले पर, अंतःकरण का आयतन, अँधेरे में' आदि कविताओं में सार्त्र की अस्तित्ववादी चेतना से प्रभावित अंश देखे जा सकते हैं :

समकालीन हिन्दी कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि निर्मित करने में गांधी के अतिरिक्त योगिराज अरविन्द का भी योगदान है। अरविन्द दर्शन का सर्वाधिक प्रभाव पन्त की कविता पर देखा जाता है किन्तु जड़ से चेतन का विकास तथा 'आरोहण' की स्थिति, आत्मा के जड़ रूप से आनन्द, चित् और सत् का अभ्युदय मुक्तिबोध की कविता में भी खोजने पर मिल जाता है। 'आत्म ग्रस्तता' तथा मन की 'अन्तर्मुख दशाओं की विशद व्याख्या के लिए कबीर जायसी आदि रहस्यवादियों की विचारधारा के अतिरिक्त अरविन्द की चेतना की भी सहायता ली जा सकती है। निम्न पंक्तियों में आई हुई मुक्तिबोध की चेतना की व्याख्या अरविन्द दर्शन के सहारे की जा सकती है—

(मुझे भ्रम होता है कि) प्रत्येक पत्थर में / चमकता हीरा है

४. कल जो हमने चर्चा की थी— (चाँ० मुँ० टे०)
५. चाँद का मुह टेढ़ा है—(अँधेरे में)

हर एक छाती में आत्मा अधीरा है / प्रत्येक सुस्मित में विमला सदानीरा है। ......[१]

× × × ×

मैं ज्यों-ज्यों उत्तर के मुख पर
उद्विग्न दृष्टि की किरनें केन्द्रित करता हूँ
उत्तर का मुँह / पहले बादल, / फिर बादल में मानव मुखरेखा उर्जस्वल
भव्या कृति, स्वेदायित, / रक्तांकित मुख मण्डल /[२]
झिल-मिल सत्य-बिम्बित रत्न-प्रसार की
व ऐसी संगठित सीढ़ी व्यवस्था / वहाँ पर भव्य दीप स्तम्भ तक पहुँचे ।[३]

इसी प्रकार 'मुझे पुकारती हुई पुकार' 'जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे' 'शून्य' तथा तार सप्तक में संकलित 'आत्मा के मित्र मेरे', 'मेरे अन्तर' 'नूतन अहं' आदि कविताओं में अरविन्द का प्रभाव देखा जा सकता है। डॉ० शर्मा ने इन अंशों में नवीन 'रहस्यवाद' का प्रभाव भी देखा है। मुक्तिबोध की कविता में अनेक ऐसी अनुभूतियाँ हैं जिन्हें हम भारतीय दर्शन के नव्य वेदान्त द्वारा व्याख्यायित कर सकते हैं।

अनुशीलनगत कविता में आई हुई आभ्यंतरीकृत-जीवन दृष्टि सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप मे देखी जा सकती है। 'कदम-कदम पर मिलने वाले चौराहों' स्वप्न कथाओं और सहचर मित्रों के संसर्ग से मुक्तिबोध के किशोर मन ने बहुत कुछ सीखा था। एक साहित्यिक की डायरी में निरूपित काल्पनिक नामों की सत्यता पर न जाकर उनके सहारे की गई व्याख्याओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'केशव' ने उन्हें ज्ञान दिया, किसी ने मनोविश्लेषण का रहस्य बताया तथा मित्र की पत्नी से उन्होंने सौन्दर्य एवं प्रेम का पाठ पढ़ा। स्वदेश और विदेश की जिन चिन्तनधाराओं का उल्लेख पहले किया गया इनके अतिरिक्त भी बहुत-सी दार्शनिक मान्यताओं की खोज मुक्तिबोध के काव्य में की जा सकती है। यहाँ पुनः हम अपनी स्थापना दुहराना चाहते हैं कि कविता दर्शन नहीं अपितु दार्शनिक मान्यताओं से ग्रहण किये गये जीवन मूल्यों का समवाय होती है। अलंकार, अप्रस्तुत विधान, प्रतीक और बिम्बों के सहारे परिकल्पित काव्य-जगत में ऐसे अनेक भाव चित्र एवं काल्पनिक दृश्य निरूपित होते हैं जिनका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सम्बन्ध 'काव्य व्यक्तित्व' से होता है। काव्य-व्यक्तित्व के प्रक्षेप में उसकी अनुभूतियां विभिन्न रंग और रेखाओं के सहारे

१. मुझे कदम कदम पर—चाँ० का मुं० टे०
२. मेरे सहचर मित्र (चां मु० टे०) ६४
३. नक्षत्र खण्ड ,,

(अंतसंघर्ष) जीवन की सच्चाई के स्तर, / सही बात के चौड़े पत्थर
तीव्र वेदना में कैसे गड़गड़ा रहे थे, / इन ज्वालामुखियों के भीतर /[१]
(संत्रास) नगर से भयानक धुआँ उठ रहा है,
कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गई,
सड़कों पर मरा हुआ फैला है सुनसान
हवाओं में अदृश्य ज्वाला की गर्मी—[२]

इसी प्रकार अभावग्रस्त 'जिन्दगी की कोख में जन्मा नया इस्पात', मृत्यु, दैन्य, अरमान, जलन, पीड़ा आदि के अनेक दृश्य मुक्तिबोध की कविता में है। न कहे जा सकने वाले अनुभवों के ढेर की त्रासदी कविता की चेतना में अस्तित्ववाद के रूप में व्याख्यायित की जा सकती है। अन्य अस्तित्ववादी विचारकों में सार्त्र का नाम लिया जाता है जो मानवीयता के अर्जन में विश्वास करता हैं। ईश्वरविहीन संसार में मनुष्य अपनी मानवीयता स्वयं बनाता है। मनुष्य का आत्मगत ज्ञान ही मूल्यनिर्धारण का आधार है। पैतृक संस्कार, सामाजिक परिस्थिति श्रमिकों के प्रति सहानुभूति आदि भौतिकवाद के विरुद्ध की गई स्थापनायें अस्तित्ववाद से आई है। अपनी क्षमता अनुसार कर्ममय जीवन में प्रवेश करना उसकी नियति है जिसे मुक्तिबोध भी स्वीकार करते हैं। उनका 'मानवतावादी दर्शन' तथा 'कर्म नहीं कर्म के फल पर विश्वास' इस नवीन चेतना के निकट है। 'एक स्वप्न कथा, चकमक चिनगारियाँ, इस चौड़े ऊँचे टीले पर, अंत:करण का आयतन, अँधेरे में' आदि कविताओं मे सार्त्र की अस्तित्ववादी चेतना से प्रभावित अंश देखे जा सकते हैं।

समकालीन हिन्दी कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि निर्मित करने में गांधी के अतिरिक्त योगिराज अरविन्द का भी योगदान है। अरविन्द दर्शन का सर्वाधिक प्रभाव पन्त की कविता पर देखा जाता है किन्तु जड़ से चेतन का विकास तथा 'आरोहण' की स्थिति, आत्मा के जड़ रूप से आनन्द, चित् और सत् का अभ्युदय मुक्तिबोध की कविता में भी खोजने पर मिल जाता है। 'आत्म ग्रस्तता' तथा मन की 'अन्तर्मुख दशाओं की विशद व्याख्या के लिए कबीर जायसी आदि रहस्यवादियों की विचारधारा के अतिरिक्त अरविन्द की चेतना की भी सहायता ली जा सकती है। निम्न पंक्तियों में आई हुई मुक्तिबोध की चेतना की व्याख्या अरविन्द दर्शन के सहारे की जा सकती है—

(मुझे भ्रम होता है कि) प्रत्येक पत्थर में / चमकता हीरा है

---

४. कल जो हमने चर्चा की थी— (चाँ० मुँ० टे०)

५. चाँद का मुह टेढ़ा है—(अँधेरे में)

हर एक छाती में आत्मा अधीरा है / प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा
है। ......[1]

× × × ×

मैं ज्यों-ज्यों उत्तर के मुख पर
उद्विग्न दृष्टि की किरने केन्द्रित करता हूँ
उत्तर का मुँह / पहले बादल, / फिर बादल में मानव मुख रेखा अस्पष्ट
भव्या कृति, स्वेदायित, / रक्तांकित मुख मण्डल /[2]
झिल-मिल सत्य-बिम्बित रत्न-प्रसार की
व ऐसी संगठित सीढ़ी व्यवस्या / वहाँ पर भव्य दीप स्तम्भ तक पहुँचे।[3]

इसी प्रकार 'मुझे पुकारती हुई पुकार' 'जब प्रश्न चिन्ह बौखला उठे' 'शून्य' तथा तार सप्तक में संकलित 'आत्मा के मित्र मेरे', 'मेरे अन्तर' 'नूतन अहं' आदि कविताओं में अरविन्द का प्रभाव देखा जा सकता है। डॉ० शर्मा ने इन अंशों में नवीन 'रहस्यवाद' का प्रभाव भी देखा है। मुक्तिबोध की कविता में अनेक ऐसी अनुभूतियाँ हैं जिन्हें हम भारतीय दर्शन के नव्य वेदान्त द्वारा व्याख्यायित कर सकते है।

अनुशीलनगत कविता में आई हुई आभ्यंतरीकृत-जीवन दृष्टि सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में देखी जा सकती है। 'कदम-कदम पर मिलने वाले चौराहों' स्वप्न कथाओं और सहचर मित्रों के संसर्ग से मुक्तिबोध के किशोर मन ने बहुत कुछ सीखा था। एक साहित्यिक की डायरी मे निरूपित काल्पनिक नामों की सत्यता पर न जाकर उनके सहारे की गई व्याख्याओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'केशव' ने उन्हें ज्ञान दिया, किसी ने मनोविश्लेषण का रहस्य बताया तथा मित्र की पत्नी से उन्होंने सौन्दर्य एवं प्रेम का पाठ पढ़ा। स्वदेश और विदेश की जिन चिन्तनधाराओं का उल्लेख पहले किया गया इनके अतिरिक्त भी बहुत-सी दार्शनिक मान्यताओं की खोज मुक्तिबोध के काव्य में की जा सकती है। यहाँ पुनः हम अपनी स्थापना दुहराना चाहते हैं कि कविता दर्शन नही अपितु दार्शनिक मान्यताओं से ग्रहण किये गये जीवन मूल्यों का समवाय होती है। अलंकार, अप्रस्तुत विधान, प्रतीक और बिम्बों के सहारे परिकल्पित काव्य-जगत मे ऐसे अनेक भाव चित्र एवं काल्पनिक दृश्य निरूपित होते हैं जिनका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सम्बन्ध 'काव्य व्यक्तित्व' से होता है। काव्य-व्यक्तित्व के प्रक्षेप में उसकी अनुभूतियाँ विभिन्न रंग और रेखाओं के सहारे

१. मुझे कदम कदम पर—चाँ० का मुँ० टे०
२. मेरे सहचर मित्र (चां मु० टे०) ९४
३. नक्षत्र खण्ड ,,

अभिव्यक्ति पाती हैं जिनको निर्मित करने, रंगने, काटने-छाटने, ढालने तथा रूपाकार प्रदान करने में कवि के संचित अनुभव, ज्ञान एवं संवेदनों का योगदान होता है। मुक्तिबोध के काव्य में आई हुई दर्शन की उपर्युक्त दृश्यावलियों तथा ज्ञान-विज्ञान की रश्मियों का प्रकाश साहित्य काव्य-दर्शन, मनोविज्ञान भौतिक विज्ञान, तथा रसायन शास्त्र के अतिरिक्त इतिहास, राजनीतिशास्त्र भूगोल खगोल से छनकर आया है। मुक्तिबोध के काव्य-दर्शन को हम उनके जीवन दर्शन का पर्याय कह सकते हैं। उसमें आई हुई चिन्तनधाराओं को वाद और मतवाद के सहारे समझना और उनका अनुशीलन करना समीचीन है किन्तु उसी सीमा तक जब तक कविता का सौन्दर्य बना रहे और कवि की मनसा भी रक्षित हो। इस दृष्टि से मुक्तिबोध का जीवन दर्शन सही अर्थ में मानवतावादी दर्शन है जिसे हम 'बोध मुक्त' कह सकते हैं, जो सभी बोध और ज्ञान विज्ञान से परे है।

———

९. आत्मसंघर्ष की कविता और उसकी सम्भावनाएँ

'कहीं भी खतम कविता नहीं होती : '

मैं उनका ही होता, जिनसे मैंने रूप-भाव पाये हैं।
वे मेरे ही हिये बँधे हैं जो मर्यादायें लाये हैं।
मेरे शब्द, भाव उनके हैं,
मेरे पैर और पथ मेरा,
मेरा अन्त और अथ मेरा,
ऐसे किन्तु चाव उनके हैं।
मैं ऊँचा होता चलता हूँ
उनके ओछेपन से गिर-गिर;
उनके छिछलेपन से खुद खुद
मैं गहरा होता चलता हूँ—

तारसप्तक : 'मुक्तिबोध'

विभिन्न प्रतिमानों के निकष पर प्रयोगवाद और नयी कविता की परख करते समय गजानन माधव मुक्तिबोध का कृतित्व प्रतिमानीकरण के लिए एक चुनौती बनता है। उनकी बहुआयामी रचनायें व्यापक जग का निर्माण करती हैं जिसमें कहीं निविड़ अँधेरा है तो कहीं हायफन-डैश से चिन्ता के गणित अंकों वाली काली रात या स्याह समुन्दर तथा छायादार बरगद। लाल-लाल अजीब-सी मशाल तथा नीली-हरी तीव्र ज्वाला की किरणों के प्रकाश में कहीं पेड़ झूमते देखे जाते हैं; तो कहीं गर्भिणी गिरस्तिनियाँ भार ढोती हैं। कहीं मजदूर तथा लोहार काले लोहे को आग में तपाकर विभिन्न यंत्रों का आकार प्रदान करते हैं, तो कहीं कर्फ्यू की खौफनाक स्थिति रहती है। 'विषयों की कमी नहीं' के प्रस्तोता ने अपनी वाणी में 'महाकाव्य पीड़ा' की उपस्थिति बतायी है। कविता के तत्त्व के लिए संघर्ष सर्जना के पूर्व किये जाने वाले संघर्षों में से एक है जो कदाचित् पूरी सर्जना पर छाया है। पहाड़, पठार, मैदान, खोह, गुफा, आवर्त आदि ऊँचे-नीचे ऊबड़-खाबड़ स्थलों की यात्रा करते समय कवि 'ललक कर' जिन रत्नकणों और मणियों को सँजोता है उसमें 'रेडियो-ऐक्टिव' की प्रकाश किरणें हैं। बंजर की चटियल भूमि तोड़कर राह बनाने वाले रचनाकार ने कभी-कभी अति गहरे पैठने का प्रयास किया है, जहाँ पहुँचने का साहस बिरले ही करते हैं। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, नकेनवाद, साठोत्तरी कविता तथा अकविता, अ-अकविता, एण्टी पोयेट्री, बीटनिक पोयेट्री तथा युयुत्सावादी कविताओं के समानान्तर चलने वाली 'आवेग-त्वरित् कालयात्रा' में आत्मसंघर्ष के साथ-साथ सृजनात्मक संघर्ष झेलकर मुक्तिबोध समकालीन कविता के पुरोधा बन गये हैं। कविता-यात्रा के दौरान किये गये अनुभव, भ्रान्ति, आवेग, एवं उत्साह को वाणी देने में उन्हें विभिन्न शैलियों का प्रयोग करना पड़ा है। वर्तमान युग के मतवादों और सिद्धान्तों से बहुत कुछ ग्रहण करने पर भी मुक्तिबोध ने अपनी काव्य-भाषा, नवीन शिल्पविधि, मौलिक काव्य-रूप एवं नयी प्रतिमा का आकार गढ़ा है।

काव्य कला को सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रतिफल मानने वाले सर्जक ने सृजन के संघर्ष को प्रयोगवाद और नयी कविता में मुख्य रूप से झेला है। स्वतन्त्रता के पूर्व एवं पश्चात् के भारत और विश्व की सांस्कृतिक परिस्थितियों की पृष्ठ-भूमि में गांधी, वर्ग सॉ, मार्क्स, अरविन्द, नेहरू आदि महापुरुषों से अनेक रंग एवं विचार प्राप्त कर उन्होंने नये भारत का चित्र निर्मित करने में सफलता प्राप्त की है। आत्मसंघर्ष की कविता में विद्यमान सांस्कृतिक संघर्ष तद्युगीन समाज की देन है। स्वतन्त्रता संग्राम के समय में ही गांधी जी की सत्य अहिंसा सदाचार की नीति पर गरमदल' के कार्यकर्ताओं द्वारा व्यक्त किया गया संदेह आपसी फूट और विभिन्न

राजनीतिक पार्टियों के उद्भव का कारण बना। मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी आदि के गठन के साथ ही सुभाष की 'करो या मरो' नीति ने पुरानी पीढ़ी के सम्मुख नयी पीढ़ी के विद्रोह का रूप लिया। द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के बाद सारे संसार में एक नवचेतना का उद्भव हुआ किन्तु इसके साथ ही साम्राज्यवादी शक्तियों ने व्यापारिक समझौते, सांस्कृतिक समझौते तथा आर्थिक सहयोग जैसे जाल में नवीन स्वतन्त्र राष्ट्रों को फँसाना चाहा। इन पूँजीवादी शक्तियों को प्रगतिशीलता अपने विरुद्ध लगी जिससे वे इसे समाप्त करने की सोचने लगे। वामपंथी एवं दक्षिणपंथी विचारधारा के मूल में इसी प्रकार का अन्तर्संघर्ष था। 'लीग आफ दि नेशन्स', संयुक्त राष्ट्रसंघ, यूनाइटेड कामनवेल्थ' सदृश संगठन विभिन्न देशों की निकटता के साथ ही दुर्बल एवं नवजात राष्ट्रों के बंधन के कारण बने। भारत एवं विश्व के इन मतभेदों ने आत्मसंघर्ष की कविता में सांस्कृतिक एवं वैचारिक संघर्ष की भूमिका निर्मित की। पार्टियों एवं संगठनों के नाम पर बढ़ते हुए जातिवाद, धर्मवाद, भाषावाद तथा उत्तर-दक्षिणवादों के अतिरिक्त उच्च वर्ग-निम्न वर्ग, उच्च मध्यम वर्ग-निम्न मध्यम वर्ग एवं शिक्षित-अशिक्षित नामक नये धड़े उभरे जो स्वतन्त्रता के पूर्व की सांस्कृतिक एकता को कमजोर करने लगे। हिन्दू-मुस्लिम दंगे, कश्मीर का युद्ध आदि ऐसी घटनायें थीं जो नव स्वतन्त्र भारत के बिखराव तथा खोखलेपन का एक्सरे प्रस्तुत करती हैं। इन्हीं सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक संघर्षों के 'अंधेरे और उजाले के भयानक द्वन्द्व की सारी व्यथा जी कर' मुक्तिबोध ने 'गुथन-उलझाव' के 'नक्शे' बनाना शुरू किया जिसमें भयंकर बातें भी 'स्वयं प्रसूत' होकर 'गद्यात्मक परिणति की कविता' बनी। 'काले सागर का पश्चिमी किनारे से जरूर कुछ नाता है' की घोषणा अथवा अपने घर में भी विदेशी प्रभाव से अजनबी बनना आत्मसंघर्ष का प्रतिफल है जिसकी प्रेरणा समाज से मिली है।

पुरानी पीढ़ी की अड़ियल मान्यताओं एवं कड़ियल रूढ़ियों को तोड़ने की प्रतिक्रिया में मुक्तिबोध ने आरम्भ में अपनायी गई किशोरावस्था की रोमानी संवेदना का परित्याग कर समय से पहले ही निर्वासित, विद्रोही, एकान्तप्रिय एवं क्रान्ति-द्रष्टा का पथ अपनाया। 'प्रतीकों और बिम्बों के असंवृत रूप' में विद्यमान रचनाकार की जिन्दगी अणुशक्ति के पुंजीभूत होने की तरह 'एकोऽहं बहुस्यामि' की चिन्तनधारा बनी। 'रचने वाली बुद्धि और सोचने वाली मनीषा' के बीच का अन्तर कम करने के लिए 'आत्मचेतस्' का 'विश्वचेतस्' से तदाकार स्थापित करने में मुक्तिबोध ने नवीन चिन्तन पद्धति अपनायी। स्वतन्त्रता के बाद भारत में उठने वाली समस्याओं से मुक्ति चाहकर उन्होंने ने अफसरशाही तथा राजनीति पर प्रथम बार प्रश्न-वाचक लगाया। एक ओर प्रदेश एवं देश की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ तो

दूसरी ओर अनेक बुराइयों का जन्म भी इन्हीं परिस्थितियों में हुआ। कल तक कांग्रेसी कार्य-कर्ता किन्तु (स्वतन्त्रता १५ अगस्त ४७) आज के उभरते हुए तीसरे वर्ग के प्रति निम्न मध्यमवर्गीय व्यक्ति में उत्पन्न प्रतिक्रिया, अवसाद, हॉरर तथा सन्देह आत्मसंघर्ष का कारण बना। स्वतन्त्र भारत में अवसरवादी सुविधा जीवियों की बढ़ती संख्या से मुक्तिबोध स्वयं चिन्तित थे किन्तु 'चीख चिल्लाहट' एवं नग्नता प्रदर्शन में वे संकोच और लज्जा का अनुभव करते थे। 'क्या करूँ ? किससे कहूँ ? कहाँ जाऊँ ? दिल्ली या उज्जैन' पंक्तियों में यही विवशता प्रकट होती है। जमींदार-तालुकेदारों के अन्त के बाद मंत्रियों एवं गवर्नरों की बढ़ती हुई संख्या ने नवीन बुर्जुआ समाज का रूप लिया, जो मनोवैज्ञानिक संघर्ष की निराशा का पक्ष है। हताशा और दैन्य का संघर्ष, इसी से मिलता-जुलता है। पार्टी के कार्य-कर्ता के त्यागमय जीवन का परित्याग कर देश एवं प्रदेश की राजधानियों में एकत्र होने वाली मंत्रियों सांसदों एवं विधायकों की भीड़ देश के लिए भार बन गई। मुक्तिबोध की कविता में विद्यमान हीनता, अपराध बोध, प्रतिक्रिया, ग्लानि एवं क्रान्ति का एक कारण स्वतन्त्रता के बाद की अवसरवादिता है।

आत्मसंघर्ष की कविता की साहित्यिक विरासत भी पर्याप्त समृद्ध रही है। बाह्य दृष्टि से मुक्तिबोध छायावादी प्रवृत्ति के विरोधी, प्रगतिवाद की यांत्रिकता एवं भौतिकवाद के निन्दक तथा प्रयोगवाद की नग्नता के विरोधी थे किन्तु उनकी कविता के ताने-बाने में प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी टॉलस्टॉय एवं गोर्की की प्रेरणायें हैं। छायावादोत्तर युग की समस्त प्रतिभाओं से मुक्तिबोध के काव्य-व्यक्तित्व ने 'संवेदनात्मक ज्ञान' अर्जित किया है। इसमें 'प्रेमचन्द' एवं 'दिनकर' भी आते हैं। विभिन्न साहित्यिक मतवादों एवं प्रभावों से मुक्तिबोध की कविता में 'विद्रोहात्मक फैन्टेसी' की 'फैन्टास्टिक' अर्थवत्ता आई है जो उन्हें अपने से दूर ले जाती है।

प्रयोगवाद और नयी कविता की प्रवृत्ति मुख्यतः छायावाद-प्रगतिवाद से पृथक् लगती है किन्तु मुक्तिबोध एक ऐसे सर्जक हैं जिन्होंने प्रसाद की दार्शनिक चेतना, पन्त का सौन्दर्य-बोध तथा महादेवी के दुःखवाद को परम्परा एवं संस्कार रूप में ग्रहण किया है। 'पुरानी परम्परा न छूटने की विवशता' तथा नये युग की नवीन समस्याओं का दबाव 'मात्र अनस्तित्व का इतना बड़ा अस्तित्व' बन जाता है। कामायनी के मनु की चिन्ता तथा प्रसाद की 'विराट्' की अवधारणा ने मुक्तिबोध की 'अधूरी और सतही जिन्दगी में 'दुर्घटविकट घटनाक्रमों' में भव्यभावोद्दण्ड यादि के तूफानों का रूप लिया है। दार्शनिक स्तर पर छायावाद की वैष्णवी आस्था के विरुद्ध मार्क्सवाद अस्तित्ववाद एवं मनोविश्लेषणवाद की धारा ने वैचारिक नवीनता का रूप लिया जिसका समन्वय आलोच्य कविता में देखा जाता है। प्रसाद की महान् रचना कामायनी के नायक मनु की पूर्व जीवन की विलासिता तथा प्रलय के बाद के नये

जीवन में श्रद्धा के आगमन एवं इड़ा के प्रभाव से उत्पन्न बौद्धिक संघर्ष से मुक्तिबोध ने आत्मिक स्तर पर प्रेरणा ग्रहण की है। विलासिता और दैन्य के संघर्ष को झेलकर प्रसाद ने आत्मसंघर्ष की चेतना की लीक बनायी जिसे मुक्तिबोध ने व्यापक किया।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की नकारात्मकता का विरोध करते हुए मुक्तिबोध ने निराला की प्रगतिशीलता तथा महादेवी के वेदना और दुःखवाद की यथार्थवादी वास्तविक जमीन पर मानवतावाद की आधार शिला रखी। सम्पूर्ण नवल का पक्षधर रचनाकार प्रेमचन्द के उपन्यासों में आये हुए आदर्शोन्मुख यथार्थवाद एवं सर्वहारा के प्रति सहानुभूति से भी प्रभावित है। दिनकर की छायावादोत्तर युग की गीतात्मक अनुभूति तथा रसवन्ती एवं उर्वशी की रागात्मिका वृत्ति के साथ बच्चन, सुमन, अंचल नरेन्द्र शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन शमशेर वीरेन्द्र कुमार जैन आदि गीतकारों की रोमानी संवेदना मुक्तिबोध की आरम्भिक कविताओं में देखी जाती है किन्तु आदिकाल के सरहपा भक्तिकाल के कबीर तथा छायावाद के निराला की तरह मुक्तिबोध की राह सबसे भिन्न है।

पूँजीवादी सभ्यता के मठ और दुर्ग को तोड़कर 'दुर्गम पहाड़ों और पठारों के उस पार' स्थित क्रान्ति के अरुण कमल को प्राप्त करने के लिए मुक्तिबोध ने अभि-व्यक्ति का खतरा मोल लिया है। उन्हें ब्रह्मराक्षस बनकर बावड़ी की फिसलन युक्त सीढ़ियों पर गहराई में बैठने की चिन्ता नहीं है यदि इससे मानवता की मैल धुल सके। ईसामसीह, तिलक, गाँधी, टॉलस्टाय आदि के प्रति श्रद्धावनत कवि को परवर्ती गांधी-वादियों से चिढ़ है जो उनके नाम को भुना रहे हैं। 'सूखी ठठरियों एवं लम्बी सूखी जाँघों के लँगोटीधारी इकहरे दुबले हिन्दुस्तान' में गांधी का दर्शन करने वाले कभी भ्रमवश मुक्तिबोध को गांधीवाद का विरोधी मान बैठते हैं किन्तु 'अँधेरे में' का काव्य-नायक बापू द्वारा दिये गये शिशु (राष्ट्र) को अपने कंधे पर बिठाकर उसे ले चलता है उसके चिल्लाने पर भय के साथ प्रसन्न भी होता है, क्योंकि वह (कवि) जो न कर सका उसे यह बालक कर रहा है।

मुक्तिबोध की कविता यात्रा का आरम्भ प्रगति-प्रयोगवाद एवं रोमानी गीतों की संश्लिष्ट अवस्था में होता है। छायावाद युग की रोमानी संवेदना एवं शृंगारिक चेष्टा के साथ लघुमानव की प्रतिष्ठा के रूप में जिस 'नवता' का प्रादुर्भाव हुआ मुक्तिबोध उसके प्रथम प्रयोक्ता थे। कवि ने अपने को 'इत्यादि जनों का मैं भाग' कहकर अनुभूत सत्य को नयी कविता का सत्य बनाया। निम्न मध्यमवर्गीय व्यक्तियों की दुःखद जिन्दगी को कविता की जिन्दगी बनाकर प्रस्तुत करने का खतरा ही अभि-व्यक्ति का खतरा है। 'कण्डीसण्ड रिफ्लेक्समेन्ट से जूझने तथा स्थानान्तर गामी प्रवृत्ति

के पक्षधर कवि ने काव्य-व्यक्तित्व को विभिन्न भूमिकाओं में प्रस्तुत करते हुए कई मोड़ लिये हैं जिनमें जीवन की गति, जीवन का स्वर मुखरित होता है।

आत्मिक एवं दैहिक जगत की तदाकारिता में ग्रहण और खोज की चेष्टा करते हुए अन्वेषक ने प्राप्त रत्न-खण्डों एवं मणि-समूहों को सूर्य और चन्द्रमा के किरणीले आलोक में पहचान कर भी 'इन्हें देने', 'उन्हें देने में' खर्च कर दिया। सर्व-भूत हितरत कवि अपने जीवन का सर्वस्व कविता के लिये लुटाकर मृत्यु से निकटता स्थापित करने पर भी अपने को मृत नहीं मानता क्योंकि उसमें अपूर्व अमरता की चेतना तथा उद्दाम जिजीविषा है। 'अनिवार आत्मसम्भवा' की खोज में कवि दस मोड़ दौड़ता है तथा कई मोड़ घूमता है। काले गुलाब, स्याह सिवन्ती, सँवलाये कमल के अँधेरे में भी आलोक की किरण का अन्वेषी कवि बराबर आशान्वित है कि यह 'कॅन्टेसी' कभी वास्तव होगी। आत्मसम्भवा की इस खोज में दीप्त दृग, भव्य ललाट, आजानु भुज वाला महापुरुष अवसर-अनवसर प्रकट होकर रक्तालोक स्नात मूर्ति द्वारा उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। कविता में व्यंजित अपूर्ण सत्य एवं अपूर्व जीवनानुभूति का समन्वय प्राण-भूत चेतना है जिसमें अर्द्ध के सहारे सम्पूर्ण को प्राप्त करने की लालसा है।

आत्मसंघर्ष की कविता जीवन जीने तथा विषम परिस्थितियों में भी अस्तित्व के प्रति किये जाने वाले संघर्ष की व्यथा कथा है। 'फँसे गये' का प्रयोग आलोच्य जीवन और जगत के लिए इस आशय से नहीं किया जाता है कि उसमें असहायता ही है अपितु इसमे जीवन के क्षण-क्षण को अणुवत उद्दीप्त करने का आवेश भी है। दिनन प्रतीक्षातुर चिन्ताग्रस्त काव्य नायक कर्मरत मजदूरों—सेंटरलैट डाज के नीचे लेटे हुए भिस्तिरियों (कारीगर) के साथ रहकर भी अपने को कनफटा एवं हेठा नहीं अनुभव करता। 'एक अभूतपूर्व विद्रोही' के आत्मवक्तव्य में निरुपित जिन्दगी की हारों और असफलताओं में कवि का संस्कार मुखर हुआ है जो 'बाह्य ईश्वर' को मृत मानकर भी 'निज ईश्वर' में श्रद्धा व्यक्त करता है। छायावादी युग के उपेक्षित कवि निराला द्वारा उच्च कुल में उत्पन्न होने पर कुलीनता की निन्दा उनकी 'विद्रोह-चेतना' है इसी प्रकार मुक्तिबोध भी जीवन के अभावों से प्राप्त उपेक्षा एवं एकान्तिक स्वभाव से कविता में विद्रोह का स्वर भरते हैं। 'जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि' से जूझने के लिये मुक्तिबोध कटिबद्ध हैं जिसके कारण बीस वर्षों की कविता यात्रा के बाद वे राहों के अन्वेषी से 'बोधि सत्त्व' हो गये।

आलोच्य कविता में विद्यमान अंधे मोड़, कटानयुक्त अँधेरे रास्ते, तंग गलिय दम घोटूँ वातावरण तथा वीरान सुनसान चौराहों पर विद्यमान छाया 'घनीभूत पी का प्रसार है शेष सब अवास्तव अयथार्थ एवं मिथ्या है।' कविता के सत्य को मुि

बोध ने जीवन के सत्य से भिन्न कहा है। कविता का सत्य तथ्यात्मक होता है जबकि जीवन का सत्य ऋत् होता है। एक कालजयी कृतिकार के कृतित्व में झाँकता हुआ विराट् व्यक्तित्व संघर्ष से लहू-लुहान, व्रणाहत एवं श्रान्त है। विकृताकृतिबिम्बा कविताओं का श्रष्टा 'काव्यात्मन् फणिधरों' का धारक है, जिनकी लहरों से जिन्दगी में उतरे हुए जहर का आभास होता है। संघर्षरत कवि की जिन्दगी की पहचान के लिये कभी 'मारा गया बधिकों के हाथ' के कलाकार को भी देखना पड़ता है जिसमे क्रियमाण शक्ति तथा न कर सकने का अन्तर्संघर्ष है।

'एक साहित्यिक की डायरी', 'नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' तथा 'आत्म-संघर्ष की कविता' और अन्य निबन्ध में स्थित मुक्तिबोध की समीक्षा दृष्टि उनकी कविता-यात्रा के दौरान ग्रहीत अनुभवों का समवाय है जिनमें उनका समीक्षक स्वयं अपना व्याख्याता बनता है। दहशत-संत्रास, खौफ, घृणा और स्नेह, अकेलेपन और साथियों से टूटने और जुड़ने का क्रम उनकी कविता के 'आत्मिक इतिहास' एवं 'मनोमय भूगोल' को जानने का सूत्र है। समकालीन कविता के तत्त्व और रूप में से मुक्तिबोध 'तत्त्व' को महत्त्व देते हैं। इस तत्त्व में जीवन-तत्त्व संश्लिष्ट है। केवल भावना अथवा कल्पना के जगत में उनके कवि से तदाकार करना एकांगी है इसी प्रकार 'यथार्थ के एकाकीपन' अथवा 'प्रयोग के नाम पर यथार्थसंगत कल्पनाओं और धारणाओं को अस्वीकार करना' उनके कवि का लक्ष्य नहीं है। बदलते हुए जमाने के संघर्षमय वात्याचक्रों के वातावरण में अनेक भावधाराओं की टकराहट के बीच संघर्ष-शील मुक्तिबोध ने स्नेह और मैत्री, बाधा और विजय, अनुत्साह और निराशा, उत्साह और विश्वास को निकट से देखा ही नहीं है अपितु उस जीवन में उनकी महत्त्वपूर्ण साझेदारी रही है। 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' और 'व्यक्तित्व की सम्पूर्ण मानवीय गरिमा' के पक्षधर होकर मुक्तिबोध ने अपने काव्य-पुरुष को जीवन और जगत की उलझनों से आबद्ध देखा है। 'साम्यमूलक शोषण विहीन मानवोचित गुणों से युक्त' लघुमानव का परिवेश प्रेमचन्द के होरी, सूरदास और घीसू-माधव का परिवेश है जिसमें वे जीवित हैं। यह व्यथा कथा नत-हीन, नष्ट मृत, अस्तित्वविहीन प्राणी की कथा नहीं है। उसमें एक अस्मिता विद्रोह की चिनगारी की तरह विद्यमान है, साथ ही हार का एहसास, विनय की शक्ति और बदले की भावना भी। अनगिनत कष्ट एवं असीम समस्याओं को झेलकर की गई लघुमानव की जय-यात्रा मुक्तिबोध की कविता-यात्रा है। इन 'संवेदन ज्ञानात्मक' तत्त्वों का अनुशीलन करने पर ही मुक्तिबोध की कविता की मूल संवेदना से साक्षात्कार सम्भव है।

हम हैं गुजर गये जमाने के चेहरे' की अभिव्यक्ति में कवि की अतीतोन्मुख दृष्टि तथा रोमानी संवेदना का परिचय मिलता है। 'हट जा भाग जा', भाभता में

दमतोड़ घूम गया ''कई मोड़ '''में नवीन संघर्ष की स्वीकृति ध्वनित होती है। 'व्यक्ति-मन' एवं आत्म-मन को जोड़ने वाला कविमन आत्मचिन्तन एवं विश्वचिन्तन से ग्रहीत संवेदना को आस्था एवं आदर्श-भावना के कलात्मक रूप में व्यक्त करता है, यही उनकी कविता-यात्रा का प्रस्थान बिन्दु है। दूसरा बिन्दु संघर्ष एवं भयानक खौफनाक वातावरण में है जिसमें कुण्ठा, हॉरर, सन्त्रास एवं घुटन की 'फैन्टेसी' है। इन दोनों बिन्दुओं के बीच फैली हुई कविता में मुक्तिबोध का कवि शिल्प एवं रूप के विभिन्न प्रक्षेपों की तरह विद्यमान है जिसकी बहुआयामी छाया सूक्ष्म से स्थूल होती देखी जाती है। वाद मतवाद अथवा सिद्धान्त की एक दिशा होती है किन्तु क्षितिज की कोई दिशा नहीं होती। मुक्तिबोध की कविता का व्यापक क्षितिज आवर्त्तों, गतिशील वात्याचक्रों एवं तूफानी बवण्डरों से युक्त है जिसमें गतिशीलता के साथ दिशाहीनता भी है। यही वाक्यूम एक बड़ा—बहुत बड़ा सिफर है जिसका कोई ओर-छोर नहीं है। समीक्ष्य क्षितिज के घेरे में स्थित आकाश मण्डल कवि का 'रहस्य-लोक' है जिसमें नेबुला, इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, प्रोटानों के अतिरिक्त धूल एवं वाष्पकण भी हैं। इस आकाश मण्डल के असंख्य नक्षत्रों एवं तारक समूहों की गति-यति दिशा एवं प्रकाश किरणों की दूरी नापने का क्रम बराबर चल रहा है। डॉ० नामवर सिंह, डॉ० राम विलास शर्मा, डॉ० रमेश कुन्तल मेघ एवं इन्द्रनाथ मदान ने सतत खोज करके काव्य क्षितिज के सम्बन्ध में कुछ स्थापनायें की हैं।

अनुभव सिद्ध कवि वे आत्मानुशासन में सिद्ध हस्त कवि की साधना (Vision) का अभाव होने पर भी इसमें समकालीन भारत की भाग्य लिपि पढ़ने की वह विद्या है जिसे हम आधुनिक संदर्भ में ज्योतिष कह सकते है। 'फलित ज्योतिष' के आधार पर हम मुक्तिबोध के काव्य तत्व की जानकारी कर सकते हैं तथा 'चिन्ता के गणित अंक' द्वारा राष्ट्र के निम्न मध्यम वर्गीय नागरिकों के भाग्य का गणित ज्योतिष जान सकते हैं। 'हमें था चाहिए कुछ वह', 'अपनी मुक्ति के रास्ते-अकेले नहीं मिलते', आदि कथन 'अद्भुत अरुप शून्य' के नक्षत्रों का ज्ञान कराने में समर्थ हैं।

समीक्ष्य कविता मे अग्निधर्मी, क्रान्तिधर्मी 'गहरी विवेक चेतना' के कारण शृंगारिक चेष्टा तथा रोमानियत का अभाव हो गया है किन्तु संस्कृतिबोध, इतिहास-बोध, जीवन मूल्य एवं नये कला मूल्यों की प्रतिष्ठा अनुपम है। नये साहित्य का नयापन तथा समकालीन कविता की सीमायें और सम्भावनायें प्रकारान्तर से 'आत्म-संघर्ष की कविता' की सीमायें और सम्भावनायें हैं। विगत सन्दर्भों में अनेक बार यह स्थापना की गई है कि मुक्तिबोध की कविता ने द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् के भारत एवं विश्व की समस्याओं की विभिन्न परिणतियाँ विद्यमान है। जिसमें अधुनातन परिवेश के अन्य पहलू भी हैं जिन पर लोगों की दृष्टि कम जाती है। स्वतन्त्रता

स्वतन्त्रता के बाद पनपने वाली संकीर्ण दृष्टि, अवसरवाद, सुविधा परस्ती तथा व्यक्तिगत स्वार्थों की प्रवृत्तियों ने समस्त सिद्धान्तों को खोखला कर दिया है अतः तिलक की (प्रतिमा की) नाक से खून की धारा निकलती है, गाँधी का चश्मा मजाक का कारण बनता है, कलाकार की कनपटी गोली से छेदी हुई लगती है तथा 'टॉलस्टॉय' काव्य पुरुष को नंगा देख लेते हैं।

डॉ० रामविलास शर्मा के इस कथन से सहमत हुआ जा सकता है कि मुक्तिबोध दूसरे गाँधी अथवा कविता में जयशंकर प्रसाद नहीं बनना चाहते हैं किन्तु छायावादोत्तर युग की कविता की व्यापकता का श्रेय मुक्तिबोध को ही है। डॉ० विद्या निवास मिश्र उन्हें आने वाले बीस वर्षों का कवि कहते हैं। अकविता, साठोत्तरी कविता अ-अकविता, नूतन कविता, सनातन सूर्योदयी कविता 'युयुत्सावादी कविता तथा अन्य परवर्ती प्रवृत्तियों के अंकुर एक साथ मुक्तिबोध की कविता में खोजने पर मिल सकते हैं। 'यंग-एन्ग्रीमेन' की विद्रोही पीढ़ी की पृष्ठभूमि मुक्तिबोध ने ही निर्मित की है। प्रयोगवाद की खरी आलोचना तथा नयी कविता की जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि का परित्याग करने का साहस करके उन्होंने कारयित्री एवं भावयित्री धारायों को नयी दिशा दी है। 'भद्र जनोचित भाषा तथा सार्थक शब्दावलियों में' उन्होंने ध्वंस द्वारा मौन भंग करने का सार्थक प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में कहीं भी शालीनता भंग नहीं हुई है। सामान्य जन की चीख चिल्लाहट से 'आक्रोशी पीठिका' का निर्माण करने में मुक्तिबोध के सपनों का भारत बिखराव और विसंगतियों को समेटता है। 'सूखी जाँघ और उभरी हड्डियों' के चित्र अथवा 'लकड़ी के रावण' में स्वतन्त्रता के बाद के भारत का दयनीय बिम्ब है। पंडित जवाहरलाल नेहरू डॉ० राम मनोहर लोहिया आचार्य बिनोवा भावे तथा जयप्रकाश नारायण की समृद्ध भारत की कल्पना मुक्तिबोध की 'फैन्टेसी' में देखी जा सकती है जो कल वास्तव होगी। रघुबीर सहाय की 'आत्म हत्या के विरुद्ध' तथा धूमिल की 'संसद से सड़क तक' में एक बार जोर से चिल्लाने' की कल्पना के पूर्व कोशिश करो-कोशिश करो-कोशिश करो ......'जमीन में गड़ कर भी जीने की' में देखी जाती है।

मुक्तिबोध की सर्जना में यद्यपि १९३० से १९६४ तक के भारतीय समाज का चित्र मिलता है किन्तु साढ़े तीन दशक के संक्रान्ति युगीन जीवन मूल्यों की सीमा में अधुनातन भारत आ जाता है। संक्रान्ति काल में नये स्वर का आलाप पुरानी लीक तोड़ता तथा नये रचनाकारों को मार्ग दिखाता है। श्रीकान्त वर्मा, श्रीराम वर्मा, राज कमल चौधरी, अजित कुमार, नन्द किशोर आचार्य आदि कवियों की दिशा मुक्तिबोध की है। उनकी जीवन दृष्टि अनारोपित है जिसमें समसामयिक समाज एवं

राष्ट्र की समस्त विसंगतियों का तनाव विद्यमान है। आत्म संघर्ष की आलोच्य कविता का तेवर बाजारू अभिव्यक्ति के कोरे फतवों से बचकर परिवर्तन, क्रान्ति एवं नवीनताओं का संवाहक बनता है।

स्वतन्त्रता के बाद की पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा 'जो है उसे बेहतर चाहिए और जो बेहतर है वह मैं हो नहीं सकता' में निर्धनों तक सुविधा न पहुँचने की बिडम्बना मुखर हुई है। मुक्तिबोध की कविता में विद्यमान तनाव तथा परिवर्तमान मूल्यो से संघर्ष करते हुए आम आदमी की आम जिन्दगी का तनाव समान है। 'पूँजीवादी मन' के न बदल पाने की असहायता तथा 'अकेलेपन' की निराशा को झेलने में नया कवि अकेला पड़ता है। विज्ञान, टेक्नालोजी, अर्थ-विज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शन, शिक्षा, एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में इतने विकास के बाद भी दीनता एवं निरक्षरता का स्थायित्व समकालीन कविता के लिये चुनौती रह गया है जिसे स्वीकार करना कवि का दायित्व बोध है। सार्थक कविता की सार्थक जमीन की खोज के आरम्भ में ही मुक्तिबोधी कविता की जमीन दिखाई पड़ती है। आज जब विश्व अंतरिक्ष युग में प्रवेश कर चुका है तब भी वास्तविक जमीन की अपनी अस्मिता बनी हुई है। 'गहरी विवेक चेतना' को कविता की चेतना बनाना भी उनकी कविता का लक्ष्य है जिसे परवर्ती कवियों को प्राप्त करना है। विश्व संस्कृति और सभ्यता के 'दाय' एवं 'देय' की सचेष्टता की शुरुआत नयी कविता की उपलब्धि है जिसमें मुक्तिबोध की भूमिका महत्वपूर्ण है।

समकालीन हिन्दी समीक्षा सर्जना की स्वतन्त्र विधा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है जिसकी आरम्भिक पहल मुक्तिबोध की समीक्षा कृतियों में देखी जाती है। 'नयी कविता का आत्म संघर्ष' कवि रूप में झेलने के बाद सार्थक एवं तटस्थ समीक्षा की आवश्यकता का अनुभव अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन डॉ० राम विलास शर्मा आदि कर रहे थे। इस आवश्यकता की मुखर अनुभूति मुक्तिबोध के निबन्धो मे देखी जाती है। 'कविता की सर्जना के समय उठने वाली समस्याओं की ईमानदार अनुभूति' और 'समीक्षक की साझेदारी का मध्यम मार्ग उनका निजी मार्ग है। मुक्तिबोध का कवि अधिक महत्वपूर्ण है अथवा समीक्षक ? यह भी एक विचारणीय विषय हो सकता है। 'तार सप्तक' के बाद 'दूसरा सप्तक' तथा 'नयी कविता' के प्रकाशन काल १९५४-५५ से ही यह अनुभव किया जा रहा था कि 'नयी कविता के अवरोध को दूर करने के लिए तटस्थ समीक्षा दृष्टि की आवश्यकता है जो कविता अथवा सर्जना को प्रशस्त कर सकती है। समीक्षा क्षेत्र में मुक्तिबोध का पदार्पण इस आवश्यकता की पूर्ति करता है। श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, डॉ० नामवर सिंह, डॉ० राम बिलास शर्मा, डॉ० इन्द्र नाथ मदान, डॉ० जगदीश गुप्त डॉ० केदार नाथ सिंह आदि ने नयी समीक्षा के आन्दोलन को आगे बढ़ाकर नयी कविता के प्रतिमानीकरण

साथ साथ इसे एक मुकम्मल' जमीन दी है। एक साहित्यिक की डायरी के ललित निबंध तथा 'नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र की स्थापनायें शाश्वत एवं अक्षुण्ण हैं। मुक्तिबोध के गहन गम्भीर चिन्तन से परवर्ती समीक्षा को नयी दिशायें मिली है नयी कविता का नवीन सौन्दर्यबोध तथा पुराने प्रतिमानो की तुलना में 'नयी कविता के प्रतिमान' की 'खोज और ग्रहण प्रक्रिया का आरम्भ मुक्तिबोध ने किया जिसे डा० नामवर सिंह, नागेश्वर लाल, विजय देव नारायण साही ने आगे बढ़ाया है।

आत्मसंघर्ष की कविता की सीमाओं और सम्भावनाओं के क्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि आलोच्य कविता में विद्रूपता, नग्नता, अतियथार्थवाद (सुरियलिज्म) अनगढ़पन, चीख-चिल्लाहट, छन्द विहीनता आदि ऐसे रूप और शिल्प के नकारात्मक पक्ष हैं जिनके कारण समीक्षकों द्वारा आक्षेप और आरोप लगाये गये हैं। मुक्तिबोध की कविता और दृष्टि स्थापना में अन्तर्विरोध भी देखा जाता है। प्रतीको की आवृत्ति, रूपको का अनावश्यक विस्तार, उलझनें तथा टूटे बिम्ब, उनकी कविता के दोष हैं। भाव दबा डालने की आदत' तथा आवेश और आवेग' 'मस्ती' और 'नशा' जैसे विरोधी तत्व एवं विचार उनके कवि और समीक्षक को अलग करते हैं। 'फैन्टेसी' की संरचना बिना आवेश के सम्भव नहीं है। इतने अन्तर्विरोधों के बाद भी प्रगतिशीलता, प्रयोगवादिता, जीवन-संघर्ष, यथार्थ की वास्तविक अनुभूति, 'कटुतिक्त अनुभवों की विषम प्रतीति और तज्जन्य गहरे तीव्र आवेश' को अभिव्यक्ति का स्वर प्रदान करने में मुक्तिबोध अद्वितीय हैं। इस क्षेत्र में वे अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर, भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा से भी आगे हैं। इतनी सशक्त भाषा की दो टूक शब्दावली आवश्यकतानुसार चोट करने तोड़ने वाली भंगिमा, व्यक्ति स्वातंत्र्य और मानव-मुक्ति की ऐसी उद्दाम लालसा आज के किसी कवि में नहीं है।

'लोक जीवन के जासूस' 'रॉबर' खतरनाक अभिव्यक्ति के पुरोधा, 'छायावादोत्तर कविता के निराला', 'अव्यक्त अनिवार आत्म सम्भवा के अन्वेषी' 'नागात्मक कविताओं के स्रष्टा', आदि विशेषणों और संज्ञाओं से विभूषित मुक्तिबोध स्वयं ही संज्ञा हैं और विशेषण भी। वाल्ट ह्विटमैन, मायकोवस्की, ब्रेख्त, पिकासो, आई० ए० रिचर्ड्स आदि की शिल्प विधि से भी उनकी शिल्प विधि की तुलना की गई है। इन तुलनाओं और स्थापनाओं के साथ यह भी ध्यातव्य है कि भारतीय जन-जीवन की अभाव ग्रस्तता, साधन हीनता, निर्धनता एवं पिछड़े पन के जीवन में 'खुंखार सिनिक संशयवादी' कवि की पीड़ा ही उसकी कविता की मुख्य वस्तु है।

परिशिष्ट

आत्मसम्भवा की खोज : अँधेरे में

चिन्ता हो गयी, कविता को पढ़ते ही,
उसमें से अँधेरे का भभकारा उमड़ा,
तिलमिला आत्मा
प्रतिक्रिया करती हुई
चित्रमयी अजन्ता की गुहा जैसी होती गयी।
और, फिर पीड़ायें वे इतनी बढ़ीं
मेरी हर बुद्धाकृति
बेचैनी में
घूमने-भटकने लगी चिन्तारत
चक्कर लगाने लगी
प्रांगणों,
अँधियारे दालानों में !

(चम्बल की घाटी में—मुक्तिबोध)

छायावादोत्तर युग की 'महाकाव्यात्मक कविता'—'अँधेरे में' निराला की 'राम की शक्ति पूजा' के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। रूप एवं शिल्प, अर्थवत्ता, जीवन मूल्य, काव्य बिम्ब और सपाटबयानी अनुभूति की जटिलता और तनाव आदि की दृष्टि से संदर्भित कविता का नामोल्लेख बार-बार किया जाता है। श्री शमशेर बहादुर सिंह ने 'अँधेरे में' को देश के आधुनिक जन-इतिहास का दस्तावेज कहा है।[1] श्री कान्त वर्मा ने कविता का नायक भारत को मानकर, इसमें व्याप्त बेचैनी, टूटन और व्यग्रता को आज के भारत की व्यग्रता तथा डॉ० नामवर सिंह ने इसे परम अभिव्यक्ति की खोज के धरातल पर अस्मिता की खोज कहा है।[2] श्री प्रभाकर माचवे इसे 'पद्य में गोएर्निका' कहते हैं तथा डॉ० राम विलास शर्मा, डॉ० जगदीश गुप्त, डॉ० इन्द्रनाथ मदान तथा डॉ० रमेश कुन्तल मेघ आदि ने मुक्तिबोध की कविता के मूल्यांकन के क्रम में आलोच्य कविता को विशेष महत्त्व दिया है। श्री अशोक वाजपेयी डॉ० जगदीश कुमार, डॉ० कृष्णमुरारि मिश्र ने भी विभिन्न सन्दर्भ और दृष्टियों से इसे रेखांकित किया है।

'आशंका के दीप—'अँधेरे में' से नाम परिवर्तन के बाद चाँद का मुँह टेढ़ा है संकलन में आई हुई अन्तिम तथा सर्वाधिक लम्बी कविता—'अँधेरे में' न केवल उक्त संकलन की अन्तिम कविता है अपितु मुक्तिबोध की कविता-यात्रा की चरम उपलब्धि है जिसकी 'हर एक वाणी में महाकाव्य पीड़ा' का कथन चरितार्थ होता है। इस कविता की सर्जना स्वतन्त्रता के बाद १९६०-६१ में हुई है जिसमें अधुनातन भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का व्यापक परिवेश है। कविता का कथ्य एक स्वप्न कथा है जो नाटकीय दृश्यों से युक्त होकर तिलिस्मी और जादुई बिम्बों को भी समेटती है।

कविता का आरम्भ काव्य नायक की सघन अनुभूति के मानसिक साक्षात्कार के परिणामस्वरूप स्वगत कथन से होता है—

> 'जिन्दगी के ··/ कमरों में अँधेरे / लगाता है चक्कर /
> कोई एक लगातार /'

जिज्ञासा रहस्य एवं कुतूहल की अनुभूति काव्यनायक के आत्मसंघर्ष का आधार ग्रहण करके भय, संत्रास एवं अन्तर्द्वन्द्व से युक्त होती है जब उसे 'सुनाई जो देता है

---

१. चाँ० मुँ० टे० (एक विलक्षण प्रतिभा,—२७

२. कविता के नये प्रतिमान २११

३. चाँ० मुँ० टे० की भूमिका में शमशेर बहादुर सिंह द्वार दी गई सूचना।